॥ ओ३म् ॥

हिन्दू-पाद-पादशाही

लेखक

देशभक्त, विनायक दामोदर सावरकर

अनुवादक

पल्टूसिंह अध्यापक

प्रथमावृत्ति २०००]   सन् १९२६   [मूल्य १।॥)

पुस्तक मिलनेका पता
पलटूसिंह
आर्य-समाज
रंगून
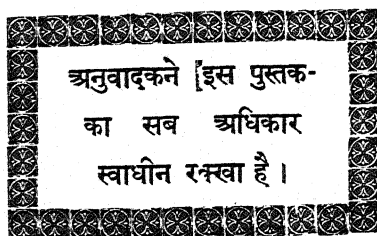
गंगाप्रसाद भोतीका
वणिक् प्रेस
१, सरकार लेन,
कलकत्ता।

भूमिका

जिन्हें हिन्दू अपने हृदय-मंदिरकी मूर्ति मानते हैं, जिनकी असाधारण वीरता, अद्भुत रणकौशल और अप्रमेय देश-प्रेमपर, उन्हें गर्व है, जिन्होंने जननी-जन्म-भूमिके वक्षस्थलको विधर्मी विदेशियोंके कठोर पदाघातद्वारा कुचलनेसे बचाया था, खेद ! उन्हीं प्रताप-मार्तण्ड महाराष्ट्र-केशरी शिवाजी और उनके अनु-यायी वीरपुंगव मरहठोंका सच्चा इतिहास हमारे सामने नहीं है। विदेशी इतिहासकारोंने उनके सद्गुणोंपर परदा डालनेका पक्षपात किया है। वर्तमान इतिहासोंमें सत्यताकी हिंसा कर उनकी देदीप्यमान उज्ज्वल कीर्त्तिको अंधकारमें रखनेकी चेष्टा की गयी है। कितने ही इतिहासकारोंने तो उन्हें 'डाकू', 'पहाड़ी चूहा,' आदिकी उपाधियांतक दे डालनेका दुःसाहस कर अपनी कूटनीतिका परिचय दिया है। उनका ऐसा करना निष्प्रयोजन नहीं, इसके भीतर राजनीतिका गूढ़ रहस्य भरा है। अपनी इस कृतिसे इन्होंने भावी हिन्दू-सन्तानोंके हृदयसे आत्मगौरवके ऊंचे आदर्शको सदाके लिये विदा कर देनेकी प्रबल चेष्टा की है। विजेता अपने विजित देशके राष्ट्रीय साहित्य और प्राचीन इतिहासोंको अस्तव्यस्तकर साम्राज्यकी नींव सदाके लिये स्थिर करना चाहते हैं। रोमने सिलेशिया और इंगलैंडने आयर-लैंडके साथ इसी नीतिसे काम लिया था।

महामना मेक्समूलरने कहा है,—

A nation, that forgets the glory of its past, loses the mainstay of its national character. When Germany was in the depth of political degradation, she turned back upon her ancient literature and drew hope for the future from the study of the past.

—Maxmuler.

"जो राष्ट्र अपनी प्राचीन कीर्तिको भुला देता है, वह अपने राष्ट्रीय गुणोंकी विशेषताको खो बैठता है। जब जर्मनी राजनीतिक क्षेत्रमें बहुत गिर गया था, उसने अपना ध्यान अपने प्राचीन साहित्यकी ओर लगाया और अपने प्राचीन इतिहासोंके अध्ययनसे भविष्यके लिये आशाका सूत्र बांध लिया।" इस कथनसे ऊपरकी बात और भी स्पष्ट हो जाती है। जो देश अपने प्राचीन इतिहासोंको खो बैठता है, वह अपने आपको भूल जाता है और इतिहासके भूल जानेसे राष्ट्र अपनी जननी-जन्म-भूमिके अभिमानको भी खो बैठता है। इस प्रकार राष्ट्र मातापिता हीन होकर अनाथकी तरह गुलामीकी सुदृढ़ शृंखलामें बंध जाता है।

सन्तोषकी बात है कि, देशभक्त विनायक दामोदर सावरकरने अंगरेजीमें "हिन्दू-पाद्-पादशाही" नामक पुस्तक हालमें लिखकर राष्ट्रीय साहित्यकी एक बहुत बड़ी सेवा की है। इसमें घटनाओंका संग्रह बड़े अन्वेषणसे किया गया है। इसके पढ़नेसे पता चलता है कि मरहठोंका संगठन महाराज शिवाजीके पीछे लुटेरोंका दल नहीं बन गया था, बल्कि अन्ततक धार्मिक रक्षा और राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना ही इस

आन्दोलनका एकमात्र उद्देश था। प्रान्त और सम्प्रदाय भेदों-से बिखरी हुई हिन्दुओंकी शक्तिको एकत्रित कर समस्त भारतमें हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करना ही इनका लक्ष्य रहा है। इनके इस पवित्र और उच्चतम ध्येयमें बाधा उपस्थित होनेपर ही विवश होकर इन्हें हिन्दुओंके विरुद्ध कभी २ अस्त्र ग्रहण करना पड़ा था। इनकी शासन-पद्धति और राज-व्यवस्थाको देखते हुए मानना पड़ता है कि इन्हें लुटेरा कहना संसारको धोका देना है। इनकी जल और स्थल सेनाओंके सामने मुसलमानों और पुर्तगीजोंको ही नहीं सिर झुकाना पड़ा है, प्रत्युत अंगरेजोंको भी अनेक बार इनका लोहा मानना पड़ा है। नाना फड़नवीसके समय १८०८ ई० में सारा भारत मरहठोंके शासनाधीन हो गया था।

प्रस्तुत पुस्तक "हिन्दू-पाद-पादशाही"का हिन्दी अनुवाद है। इसके अनुवादक ठाकुर पलटूसिंहजीका सदुद्योग स्तुत्य है। इसकी भाषा विशुद्ध और परिमार्जित न होनेपर भी हिन्दी-संसार आपका आभारी है। पाठकोंको कृपया मुहावरे और व्याकरणकी त्रुटियोंकी ओर ध्यान न देना चाहिये, क्योंकि अनुवादकका यह प्रथम प्रयास है।

हरिवदन शर्म्मा

रंगून

६-१२-२६-ई०

नम्र निवेदन

प्रस्तुत प्रयास अंग्रेजीमें लिखित 'हिन्दू-पाद्-पाद्शाही' पुस्तकका अनुवाद है। भाषा, भाव और ऐतिहासिक महत्वके विचारसे अंग्रेजीमें इस पुस्तकका कौनसा स्थान है, यह इसके लेखकके नामसे ही जाना जा सकता है। प्रत्येक हिन्दूको इस पुस्तकके पढ़नेकी कितनी आवश्यकता है—यह भी आप इसीसे विचार सकते हैं कि मैं बिना किसी विद्या-वैभवके ही, अनेक दोषपूर्ण होनेपर भी इस पुस्तकके साथ आपके सामने उपस्थित होनेका साहस करता हूं।

यदि प्रेमी पाठक इन दोनोंके लिये क्षमा करते हुए मुझे उत्साहित करेंगे तो आशा है कि दूसरी बार मरहठा इतिहासका पहला भाग भी इसमें सम्मिलित कर दिया जायगा।

मेरे परम मित्र ठाकुर रामयतनसिंहजी तथा पंडित भोलारायजी शर्म्माने मुझको इस पुस्तकके लिखनेमें विशेष सहायता दी है जिसके लिये मैं इन महाशयोंको हृदयसे धन्यवाद देता हूं।

अनुवादक,
आर्य-समाज
रंगून।

विषय-सूची

—:❀:—

पूर्वार्द्ध

उत्तरार्द्ध

सिंहावलोकन

हिन्दू-पाद-पादशाही

पूर्वार्द्ध

पहिला अध्याय

नवीन युग

सन् १६२७ ई० में महाराज शिवाजीका जन्म हुआ। यह समय भारतीय ऐतिहासिक नवयुगका आरम्भकाल समझा जाता है। महमूदगज़नवीके आक्रमणसे लेकर इस समयतक विधर्म्मियों-की जितनी चढ़ाइयां हुईं, सभीमें लगातार ये ही विजयी होते रहे। हिमालयसे लेकर कुमारी अन्तरीपतक, जहांकहीं हिन्दू-मुसल-मान मुठभेड़ हुई, वहां हार हिन्दुओंकी ही रही। धर्म और देश-की मान-रक्षाके लिए सहस्रों वीरात्मा हिन्दुओंने मातृभूमिकी बलिवेदीपर आत्म-विसर्जन कर दिया, किन्तु विदेशियोंके सम्मुख विजयने कभी इनका साथ न दिया। बार बारकी पराजयसे ये धन-जन खोकर हतोत्साह हो गये थे। जीवनकी मात्रा इनमें नाममात्र शेष रह गयी थी। इस समय जान पड़ता था, कि भारत एक प्रकार यवनोंकी विजय-लहरमें डूब-सा गया है।

कोई भी हिन्दू इस लहरसे सिर उठानेका साहस नहीं कर सकता था। उस समय सारे हिन्दवासियोंके हृदयमें रात-दिन अपनी जातिके बुरे दिनका आतंक समा रहा था अर्थात् उन्हें सर्वदा अपने दुर्भाग्यकी ही चिन्ता रहती थी। वे नित्य दाहिरके दुर्भाग्य, जैपालके युद्ध, अनंगपालके साहस, पृथ्वीराजकी पराजय, कालिञ्जर, सिकरी, देवगिरि, तिल्लीकोटादिके बुरे दिनोंका ही स्मरण किया करते थे।

ऐसे बुरे दिनोंमें शिवाजी जैसे महान आत्माका जन्म ग्रहण करना मानों भारतवर्षमें नये युगका उपस्थित होना है। इन्होंने मुसलमानोंकी विजय-लहरमें डूबते हुए भारतको बचा लिया। पहले पहल इन्होंने ही अपना सिर उठाया और मातृ-भाषामें सम्बोधन कर कहा, "बस, अब तुम्हारा अन्त हुआ, इससे आगे तुम नहीं बढ़ सकती।" जबसे शिवाजीने भारतके राजनैतिक क्षेत्रमें पदार्पण किया, तबसे हिमालयसे लेकर सागरपर्यन्त जितनी लड़ाइयां हिन्दू-मुसलमानोंके बीच हुईं, सबमें हिन्दू विजयी हुए। स्पष्ट होता है, कि भारतके भाग्यने पलटा खाया। जो बुरे दिन हिन्दुओंको देखने पड़े थे वे विधर्मियोंके सामने क्रमशः आते गये। शिवाजीका पहिले ही आक्रमणमें शत्रुओंको पराजित कर अपने बाहुबलसे विजयलक्ष्मीका आलिंगन करना ही उसका एकमात्र कारण है। इस विजय-लहरने स हिन्दके हिन्दुओंमें एक नवीन जीवन डाल दिया। देशमें एक अपूर्व शक्ति उत्पन्न हो गयी, जो क्रमशः बढ़ती हुई इस योग्य हो

गई कि सैकड़ों वर्षतक लगातार शत्रुओंपर विजय पाती रही और हिन्दू-धर्म-ध्वजा उन्नतिके ऊंचे-से-ऊंचे शिखरपर पहुंचकर लहराती रही। उस समय हिन्दुओंका हृदय साहससे पूर्ण हो गया था। उनके हृदयमें नयी-नयी उमंगें लहर मार रही थीं। अपने एक वीर नेताकी अध्यक्षतामें वे दूने उत्साहसे अपनी जान हथेलीपर रखकर काम करते हुए रणक्षेत्रमें मुसलमानोंकी दूनी-चौगुनी सेनापर भी विजय प्राप्त करते थे, जिससे साफ़ प्रगट होता था, कि ईश्वर हिन्दुओंके अनुकूल है और विधर्म्मियोंको घृणाकी दृष्टिसे देखने लगा है।

इस हिन्दू राजनैतिक क्षेत्रके सहसा परिवर्तित होनेका मूल-कारण पूज्यपाद सद्ज्ञानी रामदासजी तथा शिवाजी जैसे महान् आत्माओंका हिन्दूजातिके सामने उनकी जातीयताके उच्च आदर्शको युक्तिपूर्वक रखना था। दूसरे, मरहठा सैनिकोंको नवीन युद्ध-कला सिखाकर नवीन अस्त्रशस्त्रका प्रयोग करना था। तीसरे, मरहठोंका धर्म और उद्देश हिन्दूजातिकी जातीयता-पर वलिदान होनेके लिये एक श्रेष्ठ गुरु था। जिस शिक्षाको प्राप्त कर महात्मा गुरु गोविन्दसिंह, बन्धु बहादुर, चित्रशाल, बाजीराव, नानासाहब, भाऊजी, मल्हारराव, परशुराम पंत तथा रणजीतसिंह प्रभृति मरहठे, राजपूत और सिक्ख सेनापतियोंने समय-समयपर, संघातके घेरे और पवनक्षेत्रकी रक्षाके समय अपनी असीम वीरता द्वारा मुसलमानोंपर विजय-पर-विजय प्राप्त करके उनके रणक्षेत्रमें दांत खट्टे कर दिये।

मरहठोंने वास्तवमें अपनी लड़ाईके नये और विचित्र ढङ्गसे मुसलमानोंको दङ्ग कर दिया, जिसका सामना करनेमें वे सब प्रकार असमर्थ थे और इस प्रकार मुसलमानोंपर अपनी वीरता-से विजय प्राप्तकर हिन्दुओंके भालको पुनः विजयतिलकसे सुशोभित कर दिया। इतना ही नहीं, आगे चलकर हमलोग देखेंगे कि उनके उच्च ध्येयने मरहठोंको पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रयत्नशील बनाया, उन्हें उत्साहित किया, उनकी बिखरी शक्तियोंको एक-त्रित कर एक पारिवारिक कार्य बना दिया; जिससे वे अनुभव करने लगे कि हमलोगोंका मनोरथ न तो व्यक्तिगत है और न केवल प्रान्तिक है, वरन् एक धार्मिक कार्य है जो साधुसे लेकर एक सिपाहीतकका मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिये।

इसी मनोरथ और उत्साहने मरहठोंको दिल्लीके फाटकतक ही नहीं, वरन् दक्खिनमें समुद्रके किनारेतक पहुंचा दिया। जिनका लक्ष्य ही भारतमें एक विशाल हिन्दूसाम्राज्य एवं हिन्दू-पाद-पादशाही स्थापित करना था, उनके किये हुए अमा-नुषिक कार्य्योंकी कथासे वीर-रसका एक महत्वपूर्ण इतिहास बन गया, जिसे आर्य्योंकी प्रत्येक ललनायें अपनी सन्तानोंको उन गीतोंकी जगह सुना सकती हैं जो कुछ काल पहले हमें हमारे अधःपतनकी दशा एवं हमारे धर्म-ह्रास होनेके कारण तथा हमारे ऊपर शत्रुओंके विजय पानेकी याद दिलाती थीं।

शिवाजीके समकालीन इतिहासकारोंका कथन है कि ज्यों-ज्यों शिवाजीकी अवस्था बढ़ती गई, त्यों-त्यों हिन्दूजातिकी

परतन्त्रता अनुभव कर वे विशेष दुःखित होते गये और उनका हृदय यह देखकर विदीर्ण होने लगा कि किस प्रकार मुसलमानोंके पैरों तले हिन्दू-देवालय कुचले जा रहे हैं तथा हिन्दुओंका प्राचीन गौरव मिटाया जा रहा है।

उनकी वीर-माता जीजाबाईने बालपनहीमें उनका हृदय हिन्दूजातिके गौरव तथा नरपुङ्गव श्रीराम, कृष्ण, अर्जुन, भीम, अभिमन्यु तथा सत्य हरिश्चन्द्रकी सत्कीर्त्तियोंसे भर दिया था, जिससे उनके हृदयके आकाशमें उसी प्रकारकी आशा तथा अभिलाषाके बादल मडरा रहे थे।

प्रत्येक आस्तिक हिन्दूके मुखसे जिनका देवी-देवताओंके प्रति विश्वास था, जिनके पूर्वज देवताओंसे प्रत्यक्ष बात कर चुके थे, जिनके हृदयमें कृष्णभगवानकी गीताका उपदेश अटल था, इस परम्परागत कथाने (अर्थात् समयानुकूल धर्मका रक्षक कोई अवश्य उत्पन्न होगा) शिवाजीको विश्वास दिलाया कि यह मेरा ही घर है जिसको ऐसे पुरुषके आविर्भाव होनेका सौभाग्य मिला है। क्या यह सम्भव था कि ये सभी भविष्यत्वाणियां श्रीमान् शिवाजीके आगमनको सूचित कर रही थीं? क्या वह ईश्वरकी ओरसे अपने देश और जातिका एकमात्र नेता चुना जायगा? चाहे जो हो, पर एक बात तो अवश्य ध्यान देने योग्य है कि उनका कार्य्यक्षेत्र सबोंके सामने प्रत्यक्ष है, जिसको देखकर सभी उनकी भावीका अनुमान कर सकते हैं।

महाराज शिवाजी अपने जीवनको उन गुलामोंकी भांति कलङ्कित तथा हास्यास्पद बनाना नहीं चाहते थे, जिन्होंने जीवनके अनित्य सुखके लिये अपनी पवित्र आत्माको विदेशियोंके हाथ बेचकर अपने धर्ममन्दिरोंको उनके हाथों तुड़वाया और जातीयताके विशाल राष्ट्रका सत्यानास कराया था। वरन् वे अपने जीवनको उनके प्रतिकूल कार्य्योंसे अर्थात् अपने देवमंदिरों और पूर्वजोंके महान गौरवकी रक्षाके लिये भयानक-से-भयानक कठिनाइयोंका सामना करनेके लिये कटिबद्ध रहते थे और समय पड़नेपर जान देनेके लिये उद्यत रहते थे, जिससे यह स्पष्ट था कि यदि उनकी विजय हुई और रणक्षेत्रमें जीते-जागते रहे तो अवश्य हिन्दूजातिके लिये विक्रमादित्य तथा शिलादित्यकी भांति अकण्टक राज्य स्थापित करेंगे जो उनकी संतानके स्वप्न-सुखको पूर्ण करेगा और धार्मिक महर्षियोंकी अभिलषित प्रार्थनाओंका पूरा करनेवाला होगा।
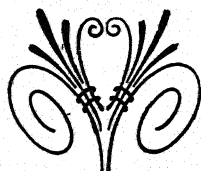
दूसरा अध्याय
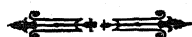
हिन्दवी स्वराज्य

शिवाजीका पत्र

सन् १६४५ ईस्वीमें किसी स्वदेशी व्यक्तिने बीजापुर-राज्यसे राजाके प्रति अविश्वासी होनेके कारण शिवाजीकी घोर निन्दा की थी, जिसके उत्तरमें शिवाजीने लिखा था कि धर्मपर किसी राजाका अधिकार नहीं है। धर्म ईश्वरीय है। इस बातपर आप उदार भावसे एक बार पुनः विचार करें। क्या आपने अपने संरक्षक दादाजी तथा मित्रमण्डलके साथ सह्याद्रि पर्वतके शिखरपर ईश्वरको साक्षी देकर यह शपथ न की थी, कि हिन्दुस्तानमें एक हिन्दूराज्य अर्थात् हिन्दू-पाद-पादशाही स्थापित करनेके लिये हमलोग प्राणपणसे अंततक लड़ेंगे? इस समय परमात्मा हमलोगोंके अनुकूल हैं और हमलोग अवश्य कृतकार्य होंगे। शिवाजीकी पवित्र लेखनीसे लिखे हुए "हिन्दवी स्वराज्य"-के शब्दोंने इस धार्मिक आन्दोलनके ध्येयको भलीभांति प्रकट कर दिया, जैसा प्रगट अन्य कोई वस्तु नहीं कर सकती है, जिसने महाराष्ट्रके नेताओंके जीवन और कार्यको सैकड़ों वर्षतक डांवाडोल कर दिया और सुखकी नींद सोने न दिया।

मरहठोंका यह आन्दोलन प्रारम्भिक कालसे ही व्यक्तिगत तथा प्रान्तिक आन्दोलन न था, वरन् यह हिन्दके सारे हिन्दुओंके धर्म तथा स्वत्वकी रक्षा करने और भारतवर्षसे विधर्म्मियोंका नामोनिशान मिटाकर एक दृढ़ सुविशाल स्वतन्त्र हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करनेके लिये किया गया था। इस देश-भक्तिका भाव केवल शिवाजीहीके हृदयमें भरा न था, वरन् उनके सारे मित्रमंडल तथा महाराष्ट्रवासियोंके हृदयमें भी किसी-न-किसी अंशमें अवश्य पाया जाता था और उनके हृदय-को उतनाही उत्साहित कर रहा था जितना शिवाजीके मनको भड़काया था; जिससे उस समय शिवाजीका स्वागत प्रत्येक स्थानमें, जहां वे पधारते थे, एक प्रसिद्ध देशोद्धारकके रूपमें श्रद्धापूर्वक किया जाता था।

कुछ लोग अब भी मुसलमानोंका साथ दे रहे थे और उनके पक्षपाती बने हुए थे, क्योंकि उनके हृदयमें मुसल-मानोंकी धाक इस प्रकार जम गई थी कि वे विचारते थे कि इस बादशाहीके सामने मरहठोंका आन्दोलन सफल न हो सकेगा और कुछ लोग तो शिवाजी जैसे नवयुवक नेताकी अध्यक्षतामें काम करना अपनी अप्रतिष्ठा समझते थे, और कुछ ऐसे भी स्वार्थी लोग विद्यमान थे, जिन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थपूर्तिके लिये यवन-राज्यका चिरस्थायी रहना ही परमावश्यक समझ रक्खा था।

शिवाजी महाराज उस समय न केवल महाराष्ट्रवासियोंके लिये ही प्रमुख थे, वरन् सारे दक्षिण और उत्तरीय भारतवर्षके

हिन्दुओंके मनोरथ पूर्ण करनेवाले शूरवीर अगुआ समझे जाते थे। उनके प्रति लोगोंका दृढ़ विश्वास था कि एक दिन ऐसा आयेगा कि यही महावीर हिन्दू-जातिके स्वतन्त्र करनेके यशके भागी बनेंगे। उस समयका इतिहास और साहित्य ऐसी बहुत-सी घटनाओंसे भरा पड़ा है, जिनके पढ़नेसे यह ज्ञात होता है कि लोग महात्मा रामदासजी तथा उनके वंशजोंकी कीर्तिको अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिकी दृष्टिसे देखते थे और हिन्दुओंके सारे प्रान्त और नगरके लोग मरहठोंका क्षत्रछायामें जानेके लिये लालायित थे, तथा उस शुभ दिनकी प्रतीक्षा कर रहे थे, कि मुसलमानोंके झंडेकी जगह महाराष्ट्रकी पवित्र गेरुआ विजय-ध्वजा उड़ती हुई दिखाई दे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण "सौमूर-निवासी" हिन्दुओंका शिवाजीके नाम भेजा हुआ हृदयविदारक पत्र है, जिसमें उन लोगोंने धर्मान्ध अन्यायी यवनोंके शासनका रोमाञ्चकारी मानचित्र खींचकर दिखाया था कि हमलोग विधर्मियोंके राज्यसे अत्यन्त पीड़ित हैं, हमारा धर्म उनके पैरोंतले कुचला जा रहा है, हमारी प्रतिष्ठा वे मिट्टीमें मिला रहे हैं। इसलिये हे हिन्दू-धर्मके रक्षक, दुष्टोंको दमन करनेवाले, विदेशी राज्यको धूलमें मिलानेवाले, शिवाजी महाराज! आइये, शीघ्र आइये; हमलोग इस समय सेनापति यूसुफकी दयाके अधीन हैं। हमारा धन, जन इसीके हाथमें है। इसने हमें हमारे ही घरोंमें कैदी बना लिया है। द्वारपर कठिन पहरा बिठा दिया है। हमारा अन्न-जल रोककर भूखों मारनेका प्रयत्न

कर रहा है। इसको मालूम हो गया है कि हमलोग आपसे सहानुभूति रखते हैं और आपके बुलानेके लिये षड्यंत्र रच रहे हैं। इसलिये हम दीन हिन्दुओंपर दयाकर, रातको दिन समझें और जितना शीघ्र हो सके आकर हमें कालके गालसे छुड़ानेकी कृपा करें। महाराष्ट्रकी सीमाके बाहरवाले हिन्दुओंके आर्त्तनादने शिवाजीके हृदयपर कैसा प्रभाव डाला, यह लिखना व्यर्थ है, क्योंकि जिनके जीवनका एकमात्र उद्देश ही हिन्दू-धर्मकी रक्षा करना था, ऐसे अवसरपर कैसे विलम्ब कर सकते थे। शीघ्र मरहठोंका प्रसिद्ध सेनापति "हम्मीरराव" अपनी सेना लेकर जा पहुंचा और बीजापुरकी यवनसेनाको भलीभांति पराजित कर हिन्दुओंको मुसलमान अन्याइयोंके चङ्गुलसे छुड़ाकर उस प्रान्तको म्लेच्छशासनसे मुक्त कर दिया।

पूना और सूपाकी छोटी जागीरोंका उचित प्रबन्धकर अपने बारह मोवेलों (जिलों) को पूर्णरूपसे संगठित कर लगभग १६ वर्षकी अवस्थामें शिवाजीने अपने कुछ चुने-चुनाये वीरोंकी सहायतासे उस प्रान्तके तोराना और दूसरे दूसरे प्रसिद्ध किलोंपर अचानक चढ़ाई करके, बड़ी वीरता और निपुणताके साथ लड़कर उन्हें ले लिया और बीजापुरके सेनापति बहादुर अफ़जलखांकी सेनापर भली प्रकार विजय पाकर मुगलोंका भी खुल्लमखुल्ला सामना किया।

शिवाजी अपनी चतुराईसे कभी परोक्ष होते और कभी अचानक शत्रुओंपर चढ़ जाते थे। इस प्रकार अनेक मुग़ल-

सेनापतियोंका दमन कर उन्हें लड़ाईमें सब प्रकार नीचा दिखाकर पीछे हटाते रहे, जिससे शत्रुओंके दिलमें एक प्रकारका भय समा गया। यहांतक कि शाहंशाह औरङ्गजेबने भी भयभीत हो सम्प्रति युद्ध बन्द करनेमें ही अपनी बुद्धिमानी समझी और अपने अजय शत्रु शिवाजीको प्रलोभनादि द्वारा जालमें फंसानेके लिये निश्चय किया। परन्तु शिवाजी औरंगजेबके कपटजालमें कब आनेवाले थे? उन्होंने शत्रुके कपटजालको ताड़ लिया और उसकी आशाको सब प्रकार निराशामें पलट दिया अर्थात् आगरेके कैदखानेसे छल कर निकल भागा और सकुशल रहगार पहुंच मुगलोंसे घोर लड़ाई छेड़ दी। सिंह-नादके दुर्गको पुनः घेर लिया। मुसलमानोंके सेनापतियोंको जहांकहीं पाया पराजित किया। अन्तमें हिन्दूधर्म और सभ्य-ताके अनुकूल राज्याभिषेक कर एक हिन्दू-क्षत्रपति बन जानेका विचार निश्चय किया।

चूंकि विजयनगरके पतनके पश्चात् किसी भी हिन्दू-राजाको यह साहस न हुआ कि वह स्वतन्त्र-क्षत्रपतिके मुकुटसे अपने सिरको पुनः सुशोभित करे, इसलिये शिवाजीके नवीन राज्या-भिषेकने मुसलमानोंके हृदयसे मुसलमानी शक्तिकी धाकको हटाकर निर्मूल कर दिया, जिससे इसके पीछे होनेवाली किसी भी लड़ाईमें मुसलमान हिन्दुओंका सामना न कर सके।

उपरोक्त घटनायें स्वयम् उनके कार्य्यकर्त्ताओंके लिये आश्चर्यजनक थीं; क्योंकि उस समयके सबसे प्रतिष्ठित,

हिन्दू-धर्मके पथप्रदर्शक पूज्यपाद स्वामी रामदासजी बड़ी प्रसन्नता तथा गौरवके साथ एक स्वप्नके सम्बन्धमें लोगोंसे कहते हैं, "कि जो कुछ मैंने स्वप्नावस्थामें देखा था उसकी पूर्ति पहले ही हो गई है। जिस स्वप्नको मैंने अन्धकारपूर्ण रात्रिमें देखा था वह अक्षरशः सत्य निकला, अर्थात् भारतकी निद्रा भङ्ग हुई, लोग अपने आपको पहचानने लगे और ईश्वरने उनपर अत्याचार करनेवाले अन्याइयोंको सब प्रकार नीचा दिखाया। जब ऐसे ईश्वरके पक्षपाती, पवित्र भाग्यशाली देशको मुगल-अधिराज औरङ्गजेब घृणाकी दृष्टिसे देखता है तो यह निश्चय है कि इसका भावी फल यह होगा कि जो लोग सिंहासनपर विराजते हैं वे पदच्युत किये जायंगे और जो किसी समय राज्यसिंहासनसे उतारे गये थे पुनः सुशोभित किये जायंगे। मनुष्योंका श्रेय, शब्दोंकी अपेक्षा उनके कर्त्तव्योंसे भलीभांति विदित होता है। सचमुच भारतवर्ष एक पवित्र पुण्यक्षेत्र है, अब इसके धर्मकी रक्षा राजधर्मसे होगी। अब राक्षसी-शक्तिद्वारा देशका पावन जल अपवित्र नहीं होता रहेगा और एक बार पुनः इस पुण्य-भूपर मुझे यज्ञादि पूजन कार्य करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा। यह धर्मयुद्ध परमात्माके नामपर आरम्भ किया गया है, इस उद्देशको ध्यानमें रखते हुए जब महाराज शिवाजी एक स्वतंत्रराज्यके स्थापित करनेमें फलीभूत हुए तो उन्होंने इस ईश्वरदत्त राज्यको अपने आत्मिक तथा राजनैतिक पथप्रदर्शक गुरु स्वामी रामदासजीके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक भेंटरूप अर्पण

किया। किन्तु स्वामीजीने भी उसी ध्येयको स्मरण कर उक्त राज्य अपने सुयोग्य शिष्य शिवाजीको मनुष्य-जातिके उपकार तथा ईश्वरीय धर्मकी रक्षाहेतु प्रसादरूपमें निछावर किया।

महाराज शिवाजीसे लेकर बाजीरावतकके कर्मवीर मरहठोंके प्रति सारे भारतवर्षके हिन्दुओंकी जैसी श्रद्धा थी और उनके किये कर्मोंपर जितना अपना गौरव समझते थे वह "क्षत्र-प्रकाश" नामक वीररसपूर्ण ग्रन्थके पढ़नेसे स्पष्ट विदित हो जाता है, जिसका लेखक एक बुन्देलखण्डवासी हिन्दू था तथा राज-कवि "भूषण" ने भी महाराज शिवाजीकी वीरताका वर्णन जिस ओजस्विनी कवितामें किया है उससे साफ प्रकट होता है कि उपरोक्त कविगण महाराष्ट्रके रहनेवाले न होकर भी कैसी भक्ति उनके चरणोंमें रखते थे। इतना ही नहीं, भूषण कवि तो महाराज शिवाजीके कर्त्तव्योंको भावपूर्ण कवितामें गाकर घूम-घूमकर हिन्दूजातिको जगाते फिरते थे और उनके हृदयोंमें शिवाजीके प्रति यह भाव उत्पन्न करते थे कि महाराज शिवाजी हिन्दूधर्मके रक्षक हैं, जिससे उनके पवित्र कर्त्तव्योंको सारे भारतवासी बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। स्थानाभावसे केवल एक-आध पंक्ति उदाहरणार्थ लेखनीबद्ध करता हूं:—

काशीकी कला जाती, मथुरा मसीद होती।
शिवाजी न होते, तो सुनति होती सबकी॥
राखी हिन्दवानी हिन्दवानकी तिलक राखी।
स्मृति और पुराण राख्यो वेद-विधि सुनिके॥

सखा रजपूती राजधानी राख्यो राजनकी ।
धरामें धर्म राख्यो, राख्यो गुण गुणीमें ॥
"भूषण" सुकवि जीति हय मरहट्टनकी ।
देश-देश कीरति बखानी औ सुनो मैं ॥
शाहीके सपूत शिवराज शमसेर तेरी ।
दिल्ली दल दाविके दिवाल राखी दुनिमें ॥

इस प्रकार "भूषण" कविने मरहठोंकी कीर्तिको वीररसभरी कवितामें सह्याद्रि पर्वतकी चोटीसे लेकर सारे भारतवर्षके हिन्दुओंके हृदयमें भर दिया, जिससे उनका हृदय उत्साहसे उछलने लगा और वे अनुभव करने लगे कि जिस अभिप्रायसे मरहठे लड़कर प्राण निछावर कर रहे हैं उसका अस्तित्व केवल भारतको विदेशियोंके शासनसे मोक्ष करनेहीका है ।

तीसरा अध्याय

शिवाजीके उत्तराधिकारी

सन् १६८० ईस्वीमें महाराज शिवाजीका और १६८१ ई० में महात्मा रामदासजीका देहान्त हो गया। यद्यपि इन लोगोंने अपने जीवनकालमें "हिन्दू-पाद-पादशाही"के लिये घोर परिश्रम करके एक अंशमें बड़ी भारी सफलता प्राप्त की थी, तथापि अब भी उसका बहुत अंश शेष पड़ा हुआ था। ऐसे अवसरपर उन लोगोंकी मृत्यु इस आन्दोलनके लिये बड़ी ही हानिकारक थी। जो हो, "ईश्वरेच्छा गरीयसी !!"

यद्यपि इन महापुरुषोंके सांसारिक जीवनका अन्त हो गया तथापि इन्होंने जिस आन्दोलनको सारे भारतमें व्याप्त किया था उसका अन्त किसी भी अंशमें न होने पाया; क्योंकि इस आन्दोलनका आधार किसी व्यक्तिविशेषके जीवनपर निर्धारित न था, वरन् इसकी जड़ एक विशेष जातीय जीवनके गर्भमें गड़ी थी। यह मरहठोंकी जातीयताका एक अद्भुत् चमत्कार है, जिसे हम उन व्यक्तियोंके चित्तपर अङ्कित करनेका प्रयत्न कर रहे हैं, जो महाराष्ट्र प्रान्तकी सीमासे दूर रहनेवाले हैं। महाराज शिवाजी तथा उनके पूज्य गुरु स्वामी रामदासजीके जीवनचरितको प्रायः सारे भारतवासी कुछ-न-कुछ अवश्य जानते हैं, पर

महाराष्ट्रके इतिहासके पिछले अङ्कोंसे सभी पूर्णतया अनभिज्ञ हैं और यदि किसी अंशमें कुछ जानते भी हैं तो उसे निराधार तथा डांवाडोल समझते हैं। साधारणतः भारतवर्षके इतिहास पढ़नेवाले यही अनुभव करते हैं कि शिवाजी तथा रामदास केवल एक मरहठा देश-भक्त हुए हैं, जिनका अभिप्राय भारतमें "हिन्दू-पाद-पादशाही" स्थापित करनेका था, जिन्होंने हिन्दुत्वके लिये अपनी बड़ी शूरता, वीरता तथा अपूर्व साहसका परिचय दिया था। इतना ही नहीं, जहांपर इन लोगोंका यह अनुमान करना था कि वास्तवमें महाराज शिवाजीके समयमें महाराष्ट्रका इतिहास केवल प्रारम्भ हुआ है, वहांपर लोग यह समझ बैठे हैं, कि इन्हीं महापुरुषोंके साथ इस आन्दोलनकी इतिश्री हो गई और उनके पश्चात् जो कुछ हुआ वह एक अशान्तिका समय था या स्वार्थांध लोग लुटेरोंका दल बनाकर इधर-उधर लोगोंपर आक्रमण करते हुए देशका सत्यानास कर रहे थे। इस विचारको हृदयमें स्थान देना लोगोंकी निरी अनभिज्ञता एवं भूल है, जो इस पुस्तकके आद्योपान्त पढ़नेसे उन्हें विदित हो जायगी और अपनी इस बड़ी भूलपर पश्चात्ताप करना पड़ेगा। वास्तवमें शिवाजी तथा रामदासकी बड़ाई इस बातसे जान पड़ती है कि जिस आन्दोलनके वे लोग जन्मदाता हुए और जिसको लेकर वे उठे वह उनकी मृत्युके पश्चात् केवल जीता ही नहीं रहा, वरन् उसे महाराष्ट्रके सुयोग्य देशभक्तों और सहस्रों शूरवीर सैनिकोंने देशपर प्राण निछावर कर आगे बढ़ाया और हिन्दू-पाद-पाद-

शाही स्थापित करनेके लिये बलपूर्वक जान हथेलीपर रख लड़ाई की और अच्छी सफलता भी प्राप्त की।

यदि ऐसे अवसरपर शिवाजी-महाराज जीवित रहते तो उन्हें भी देखकर चकित होना पड़ता, क्योंकि जिस समय शिवाजीका राज्याभिषेक हुआ था उस समय उनके अधिकारमें एक प्रान्त भी न था, तिसपर भी उस समय यह एक बड़े गौरवकी बात समझी गई थी। यदि ध्यानपूर्वक विचारद्वारा देखा जाय तो वास्तविक गौरव महाराष्ट्रका तब स्थित हुआ जबकि महाराज शिवाजीके उत्तराधिकारी रघुवा तथा दादाजीके आधिपत्यमें महाराष्ट्रके शूरवीरोंने पञ्जाबकी राजधानी लाहौरमें धूमधामसे प्रवेश किया और उनके बहादुर घोड़े उछलते-कूदते अपनी टापोंसे धूल उड़ाते, विजय प्राप्त करते, सिन्धके किनारेतक पहुंचे अर्थात् एक महादेशको अपनी क्षत्रछायामें कर लिया।

शिवाजीके देहान्तके समय मुगल बादशाह औरङ्गजेब जीवित था। उसके हृदयमें हिन्दुओंके प्रति घृणाके भाव भी वर्त्तमान थे, जिनका सत्यानास करनेके लिये शिवाजीने आजन्म सुखकी नींद न ली थी और जिनकी उत्कट इच्छा महाराजके साथ स्वर्गगामी हुई, किन्तु वे शिवाजीके उत्तराधिकारी महाराष्ट्रके शूरवीर ही थे, जिन्होंने अपने पूर्वजोंपर किये गये विधर्मियोंके अत्याचारोंका बदला व्याजसहित शत्रुओंसे लिया और औरङ्गजेबको उसके हिन्दुओंके प्रति घृणाके भावोंसहित अहमदनगरकी कब्रमें दफ़न किया तथा हिन्दू-धर्मको कालके गालसे छुड़ाया।

यह बात सबके ध्यान देने योग्य है कि यदि ऐसा न हुआ होता तो जो राजका बीज रैगादमें शिवाजीके हाथ बोया गया था वह कभी भी एक विशाल वृक्षरूपी राज्यके स्वरूपमें दिखाई न देता, वरन् निरर्थक भूलकी धूलमें नष्टभ्रष्ट हो जाता और कभी पुष्पित और फलित न हो सकता। शिवाजी महाराजने तो केवल रैगादपर राज्य किया, पर उनके उत्तराधिकारियोंके लिये भारतकी प्राचीन राजधानी दिल्लीपर राज्य करनेके दिन सन्निकट थे। यह कहना अत्युक्ति-पूर्ण न होगा कि यदि धानजी, सन्ताजी, बालाजी, बाजीराव, नानासाहब, भाऊ, मल्हारराव, दत्ताजी, माधवराव, परशुराम पन्त और बापूजी जैसे महान व्यक्ति क्रमशः समयानुकूल अपना सिर न उठाते और रणक्षेत्रमें अपना कौशल न दिखाते तथा देश और धर्मके लिये बलिदान न होते तो महाराज शिवाजीका मनोरथ अधूरा ही पड़ा रहता और जो कुछ उन्होंने अपने जीवनमें सफलता प्राप्त की थी वह जनसमाजमें वैसीही साधारण हो जाती जैसी कि पतवार्द्धन या बुन्देलाराज्य स्थापित करनेवाले नेताओंकी हुई और हमें हिन्दू-इतिहासमें शिवाजीको ऐसे अनुपम प्रतिष्ठा और गौरव-पूर्ण पद्पर आरूढ़ देखनेका अवसर न मिलता।

शिवाजीके एक अपूर्व शक्तिशाली पुरुष होनेका मुख्य कारण यह था कि उनके सजातीय आजन्म उनका साथ देते रहे, उनके साथ सर्वदा सहानुभूति रखते आये और जिस कार्य-को शिवाजी लेकर कार्य्यक्षेत्रमें उतरे, उसको सफल बनानेके

लिये -तनमनसे प्रयत्न करते रहे तथा उनकी प्रबल आशा और इच्छाको समयानुकूल प्राणपणसे पूर्ण करते रहे। इस प्रकार हमें आगे चलकर यह अवश्य मानना पड़ेगा कि महाराष्ट्रका इतिहास शिवाजीके मृत्युकालसे प्रारम्भ हुआ। शिवाजीने अपने जीवनकालमें एक छोटेसे सूबेकी नींव डाली थी,पर उसक विशाल राज्यमें परिवर्तन करनेका काम उनके उत्तराधिकारियों-का था, जिसकी पूर्ति महाराजके परलोकवासी होनेके पश्चात् हुई या यों कहना श्रेयस्कर होगा कि महाराष्ट्रके वीररसके इति-हासका आरम्भ उस समय हुआ जिस समय शिवाजीकी संग-ठित बड़ी सेना तितर-बितर हो गई।

चौथा अध्याय

संभाजीका धर्मार्थ बलिदान
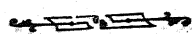
धर्मके लिये मरो (रामदास)

औरङ्गजेब बादशाहका अनुमान महाराष्ट्रधर्मके सम्बन्धमें, जिसने हिन्दूजातिके पुनरुत्थानके आन्दोलनरूप एक नवीन शक्ति हिन्दुओंमें भर दी थी, जो कुछ था अक्षरशः असत्य निकला, क्योंकि उसने विचार किया था कि ऐसे अनेकों आन्दोलन जिस प्रकार उनके नेताओंकी मृत्युके पश्चात् असफल हुए, उसी प्रकार इस आन्दोलनका भी शिवाजीके देहान्तके पश्चात् उनके वीर-पर अयोग्य-पुत्र संभाजीके शासनकालमें अन्त हो जायगा। इसलिये औरङ्गजेबने ऐसे सुअवसरको हाथसे न जाने देनेका विचार स्थिर किया और अपने विशाल राज्यके,जो बंगालसे काबुलतक फैला हुआ था, सर्व सैनिकोंके साथ संगठित रूपमें दक्खिनपर धावा किया। कदाचित् शिवाजीको भी अपने जीवनकालमें कभी ऐसी संगठित मुसलमानोंकी सेनाका सामना न करना पड़ा होगा।

औरङ्गजेबका उपरोक्त अनुमान किसी अंशमें सत्य था,क्योंकि मुगल-राज्यकी भलीभांति संगठित शक्ति, मरहठोंके ऐसे असंगठित दस गुने राज्यको अनायास सत्यानास कर सकती थी। इस प्रकार मरहठोंके लिये एक अयोग्य तथा बेकार सरदारकी क्षत्रछायामें मुगलोंकी असाधारण शक्तिका सामना करने-

का बुरा दिन उपस्थित हुआ। संभाजी अयोग्य ही नहीं, वरन् दुष्टप्रकृति, शराबी और आचरणभ्रष्ट पुरुष था।

उपरोक्त अवगुणोंके होते हुए भी संभाजीने अपने मरण-काल... सी निर्भीकता दिखाई, वह उसके सारे अवगुणोंको मिटाकर उसे शिवाजीका एक सुपुत्र तथा हिन्दू-आन्दोलनका एक महान व्यक्ति प्रमाणित करती है; क्योंकि जिस समय वह औरङ्गजेबके दरबारमें एक विवश कैदीके रूपमें खड़ा था और विधर्मी उसे मुसलमान हो जानेके लिये विवश कर रहे थे, कदाचित् उस जैसे बुरी प्रकृतिवाले पुरुष मृत्युके भयसे तथा दुष्टोंके लोभ या यातनासे अपने धर्मको तिलाञ्जलि देनेमें जरा भी नहीं हिचकते; पर वाहरे संभाजी! यह तुम्हाराही दृढ़ हृदय था, जो ऐसा संकटका समय आ पड़नेपर भी तुमने शत्रुओंको भरे दरबारमें निर्भयतापूर्वक मुंहतोड़ जवाब दिया और इसलाम-को घृणाकी दृष्टिसे देखते हुए मृत्युका आनन्दपूर्वक स्वागत किया और अपने पूर्वजोंकी धर्मभक्तिका पूर्ण समर्थन किया तथा अन्यायी मुसलमानोंके ज्ञान तथा धर्मपुस्तकोंकी घोर निन्दा की, जिससे औरङ्गजेबको अनुभव हो गया कि मैं इस मरहठे शेरको क्षुद्र कुत्तेकी तरह वशीभूत नहीं कर सकता। इसलिये अपने सारे प्रयत्नोंको छोड़ अन्तमें आज्ञा दी कि इस काफिरको मार डालो, परन्तु औरङ्गजेबकी यह अन्तिम धमकी भी उस धर्मवीरको धर्मसे विचलित न कर सकी। अन्तमें अ-न्यायियोंने लोहेके गरम चिमटेसे संभाजीकी पहिले आंखें निकाल

कीं और पीछे उसके पञ्चभौतिक शरीरके टुकड़े टुकड़े कर दिये। पर वाहरे संभाजी! तुम्हारी इस धर्मपरायणतापर सौ-सौ बार धन्यवाद है। हिन्दूजाति तुम्हारी सर्वदाके लिये ऋणी रहेगी। ईश्वर तुम्हारी आत्माको शान्ति दे और भारतके धर्माकाशमें तुम्हारी कीर्ति सर्वदा सूर्यवत् प्रकाश करता रहे, जो हिन्दूधर्मके लिये एक महान गौरवप्रद और पथप्रदर्शक होगी।

यद्यपि संभाजीने, जो एक बुरे आचरणका व्यक्ति था, शिवाजीके उपार्जित राज्यका सत्यानास किया, राजकोष-को अपनी फजूलखर्चीसे खाली किया, अपनी कायरतासे किलेको शत्रुओंके हाथ लुटवाया, सारे राज्यको मुसलमानोंके हाथों सुपुर्द किया और अपने पिताके आजन्मके परिश्रमको धूलमें मिलाया; तथापि उसने अपने जीवनके अन्तिम कार्य्यसे महाराष्ट्रधर्म तथा हिन्दूधर्मके आन्दोलनके उद्देशको इतना ऊंचा किया, जितना कदाचित् दूसरी वस्तु नहीं कर सकती थी।

यदि ईश्वरकृपासे वह महाराष्ट्रीय लुटेरोंका एक सुयोग्य नेता होता, तो अवश्य कुछ औरका और हो कर दिखाता। जो हो, इसने जीवनभरके किये दुष्कर्मोंको अन्तिम आत्म-समर्पण-द्वारा मिटाकर अपने पिताकी धार्मिक और आध्यात्मिक शक्तिको अत्यन्त ऊंचा कर दिया, जिसको देख शिवाजीकी दुःखित आत्माको भी स्वर्गमें आनन्द हुआ होगा। इस प्रकार हिन्दूधर्म-की स्वतन्त्रताकी लड़ाईका प्रताप और यश उसके रुधिरसे सींचा जाकर विशेष हराभरा हो गया।

पांचवां अध्याय

संभाजीकी मृत्युका बदला

राजकुमार संभाजीके धर्मपर बलिदान हो जानेका समाचार ज्योंही महाराष्ट्रवासियोंके कानोंमें पहुंचा त्योंही सबका भाव उनके प्रति शीघ्र बदल गया अर्थात् उनके आजन्मके किये बुरे कर्मों तथा अपराधोंको सभी भूल गये। अपने राजकुमारके प्रति विशेष श्रद्धा उत्पन्न हुई। उनकी धमनियोंमें रक्त खौलने लगा और शत्रुओंसे राजकुमारकी हत्याका बदला लेनेके लिये सभी कटिबद्ध हो गये। बिना धन और सुदृढ़ आधारके भी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका संकल्प कर लिया और एकत्रित होकर शिवाजीके द्वितीय पुत्र राजारामको अपना अगुआ एवं राजा मानकर हिन्दूधर्म और राज्यके लिये मर मिटनेकी सबोंने शपथ खा ली। समर्थ गुरु रामदासजीकी शिक्षायें—"धर्मके लिये मरो, मरते मरते भी शत्रुओंका संहार करो, राज्यप्राप्तिके लिये मर भी जाओ, मरहठोंको सङ्गठित करो, अपने राष्ट्रधर्मकी उन्नति करो, अपने इस कर्तव्यसे च्युत होनेपर पूर्वजोंके परिहासपात्र बनोगे।" मरहठे उनकी मृत्युके पश्चात् भी न भूले, वरन् जातिके लिये वह जीता-जागता धर्म बन गया। राजाराम, नोलोमुरेश्वर, प्रह्लाद नीराजी, रामचन्द्र पन्त, शङ्करजी मल्हार, परशुराम

त्र्यम्बक, सन्ताजी घोरपड़े, धानाजी यादव, खन्डीराव दभांड, पंढारपनार प्रभृति नेतागण तथा राजकुमार, ब्राह्मण और किसान—अथवा यों कहिये कि सारी जाति ही मुसलमान शत्रु-ओंके विरोधमें सशस्त्र खड़ी हो गई।

उस समयतक सारा दक्खिन औरङ्गजेबके अधीन हो चुका था और सारा महाराष्ट्र, इसके प्रसिद्ध किले यहांतक कि स्वयं शिवाजीकी पवित्र राजधानी भी मुसलमान सेनापतियोंके हाथ दुःखित हो रही थी। यही जान पड़ता था कि शिवाजी तथा उनके वंशजोंने व्यर्थ ही अपना प्राण इसके लिये गंवाया था। लेकिन क़िले और राजधानीकी कोई बात नहीं, जो जाति अपनी स्वाधीनता प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छा रखती है, वह अपना क़िला अपने हृदयमें बना सकती है। उसका उच्च आदर्श ही जातीय ध्वजाका काम देता है और जहांकहीं जाकर फहराता है, वहीं उसकी राजधानी बन जाती है। इस उच्च विचारने सारे महाराष्ट्रवासियोंके हृदयमें एक नवीन ज्योति पैदा कर दी और वे परस्पर कहने लगे कि क्या हुआ, यदि महाराष्ट्र हमलोगोंके हाथसे खो गया तो मद्रासमें चलकर लड़ाई छेड़ें। यदि रैगाद हाथसे निकल गया तो हिन्दू-पाद-पादशाहीका झण्डा जिनजीमें चलकर गाड़ें और लड़ाई एक दिनके लिये भी बन्द न करें। इस प्रकारकी प्रौढ़ प्रतिज्ञा करके मरहठे मुगल राजा औरङ्गजेबको विशाल सेनासे लगभग २० वर्षतक लड़ते रहे। अन्तमें उसे निराश और तीन-तेरह करके महाराष्ट्र तथा दक्खिनसे भगा

दिया; जिसके सोचमें दुःखित होकर औरङ्गजेब सन् १७०७ ईस्वी-में अहमदनगरमें अपने जीवन-कालके किये कुकर्मोंपर पश्चात्ताप करता हुआ मर गया।

मरहठोंकी लड़ाईकी अद्भुत् व्यूहरचना जिसे गामनोकावा कहते हैं, खुल्लमखुल्ला लड़ाईकी अपेक्षा विशेष लाभदायक थी अर्थात् मरहठी सेना कभी एकत्रित होती, कभी छिटफुट रहती, कभी आक्रमण करती, कभी हट जाती, कभी आगे बढ़ती, कभी पीछे पांव धरती, कभी लड़ती, कभी भागती, कभी लड़ाईमें पांव जमाती, कभी विचलित होती हुई बिजलीकी भांति चञ्चलता, गंभीरता और साहसके साथ मुगलोंका पीछा करती रही। अनेक स्थानोंमें जहांकहीं सामना हुआ, हर जगह, हर प्रकार उन्हें परास्त करती रही।

इस प्रकार विचित्र लड़ाई लड़कर मरहठोंने मुगलोंके साहसको चूर्ण कर धूलमें मिला दिया तथा उनके प्रत्येक नामी सेना-पति और नायकको परास्त कर सब प्रकार नीचा दिखाकर कैद कर लेते और अन्तमें मार डालते थे। जुलफिकार खां, अली-मसदन खां, हिम्मत खां और कासिम खां आदि मुग़लसेनापति-योंको मरहठे सरदार धानजी, सन्ताजी आदिने क्रमशः जिनजी, काबेरीपाक, धनधारी आदि प्रसिद्ध लड़ाइयोंमें लड़कर ऐसी बुरी तरह हराया कि उनकी सेना छिन्नभिन्न हो गई, जिससे फिर मुग़लबादशाह औरङ्गजेबको महाराष्ट्र विजय करनेकी इच्छा स्वप्नमें भी न हुई।

इस प्रकार मरहठे शत्रुओंको दमन करते हुए आगे बढ़े और मुग़लोंकी छावनियोंपर धावा कर दिया तथा अपने शेर शत्रुको उसकी मांदहीमें उन्होंने पकड़नेकी इच्छा की। बादशाह जिन्दा ही पकड़ा गया होता, यदि भाग्यवश अपने बादशाही सुनहरे खेमेंसे भाग न जाता। मरहठोंने खेमेंपर अपना अधिकार कर लिया और उसे उखड़वाकर अपने साथ ले गये।

उस समय सभी मरहठे सेनापतियोंके हृदयमें देशभक्तिका अपूर्व उत्साह भरा हुआ था, जो निम्नलिखित बातोंसे स्पष्ट विदित हो जायगा।

प्रसिद्ध सेनापति खाण्डोबलालने उन बिखरे भाइयोंको अपनी ओर मिलानेका कठोर परिश्रम और प्रयत्न किया, जिन्होंने अभी जिनजीकी लड़ाईमें मुगलोंका साथ दिया था। परोक्ष रीतिसे नागाजी राजीके साथ मरहठोंका पक्ष स्वीकार करनेके लिये पत्र-व्यवहार होने लगा, जिसमें लिखा गया कि यदि आप राजारामसे आकर मिल जायं तो हमलोग अनायास मुग़लसेनाको जिनजीमें सत्यानास कर सकते हैं। यह केवल हम ही लोगोंका कर्त्तव्य नहीं है, वरन् प्रत्येक हिन्दूका कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह अपने धर्म और राज्यके लिये यथाशक्ति सहायता करे।

वीर नागाजीराजीने मरहठोंकी उक्त प्रार्थनाको स्वीकार कर लिया और एक हिन्दूके नाते अपना उचित कर्त्तव्य समझ पांच हजार सामन्तोंके साथ मुसलमानी फौजसे निकलकर मरहठोंसे आ मिला।

इसके पश्चात् खान्डोबलालने यह निश्चय किया कि अमीतक मुग़लोंके साथ देनेवाले सिरकाको भी मरहठोंसे मिल जानेके लिये विवश करना चाहिये। परन्तु जब सिरकाने यह सुना कि राजाराम बड़ी आपत्तिमें फंसा हुआ है, तो संभाजीद्वारा अपनी जातिपर किये गये अत्याचारोंका स्मरण कर क्रोधित हो पत्रोत्तरमें लिखा कि एक राजाराम ही क्या, सारा भोंसला खानदान ही इस पृथ्वीपरसे मिट जाय तो मुझे इसकी तनिक भी चिन्ता न होगी। क्या वह दिन भूल गया, जिस समय सिरका लोग संभाजीका निशाना बन रहे थे और जहांकहीं पाये जाते थे, मार डाले जाते थे? मुझे उन दिनोंका स्मरण कर अत्यन्त दुःख होता है और भोंसलोंके बुरे दिनकी प्रतीक्षा कर रहा हूं, जिसे देख शान्ति मिले।

इस प्रकारका पत्रोत्तर पाकर खान्डोबलाल तनिक भी शिथिल न हुआ और अपने विचारद्वारा पुनः प्रार्थनापत्र भेजकर उसने समझाया कि "ऐ मेरे प्रिय मित्र! सुनिये, आपका लिखना अक्षरशः सत्य है, पर यह बात भी तो सत्य है कि सम्भाजीने केवल आपहीकी जातिपर अत्याचार नहीं किया था वरन् हमारे परिवारको भी हाथीके पैरोंतले कुचलवाया था, जिसकी चोट मेरे हृदयको उतना ही कष्ट पहुंचा रही है, जितना आपके हृदयको; पर वह समय कुछ और था और आजका समय कुछ और है। इस समयकी समस्या किसी परिवार-विशेषसे सम्बन्ध नहीं रखती और न हमलोग अपने स्वार्थके ही लिये लड़ रहे हैं; न

हमलोगोंका उद्देश भोंसला या किसी और ही कुलको ऊंचा करनेका है ; वरन् एक हिन्दु-प्रजातन्त्र-राज्यके हेतु प्राण दे रहे हैं, जो प्रत्येक हिन्दूके लिये एक विशेष कर्त्तव्य होना चाहिये। इस समय मैं आपको विशेष नहीं लिख सकता। आशा करता हूं कि इस जातीय प्रार्थनाको आप अनसुनी न करेंगे।

सिरकाका हृदय खान्डोबलालके पत्रोत्तरसे द्रवित हो गया। उसके सामने जातिका गौरव नाचने लगा जिससे वह इस जातीय अपीलको न टाल सका। उसने व्यक्तिगत अपराधों और पारिवारिक झगड़ोंको भूलकर क्षमा प्रदान की। राजारामको घिरी हुई मुग़लसेनासे छुड़ानेके लिये सहायता देनेका वचन दिया और अपने वचनानुसार अनेक प्रकारकी सहायता देकर राजारामको मुग़लसेनासे मुक्त कर महाराष्ट्र पहुंचा दिया। यह सिरकाकी एक बड़ी भारी उदारताका परिचय और हिन्दूजाति-के लिये महत्वपूर्ण आदर्श है।

इस प्रकार केवल शिवाजी और उनके पुत्रका ही नहीं, वरन् उनके वंशजोंका भी हृदय देशभक्तिके उच्च भावोंसे भरा हुआ था। हिन्दूजातिको राजनैतिक स्वतन्त्रता तथा धर्मरक्षाका पवित्र ध्येय सर्वदा उनके हृदयमें विराजता था, जिससे बर्बर शत्रुओंके घोर आक्रमणसे सर्वदा सचेत रहकर अपना प्राण हथे-लीपर रखकर उसकी रक्षा करते रहे।

अब आप स्वयं सोच सकते हैं कि क्या लुटेरे और बटमार भी कभी ऐसा कर सकते हैं ? कदापि नहीं।

इस प्रकार सफलता प्राप्त करना उन सच्चे धर्मवीर मर-हठोंका ही काम था, यह उन्हींकी धार्मिक वा जातीय शक्तिका प्रताप था जिसने उस समयके देशभक्तोंको इतना शक्तिशाली बना दिया कि वे इस योग्य हो गये जिससे वे अपने देशको स्वतन्त्र बनानेमें पूर्णतया सफलीभूत हुए, जिसका उदाहरण आजतक भारतको कसी भी जातिमें मिलना दुर्लभ है

छठा अध्याय

महाराष्ट्र मण्डल

जिस समय औरङ्गजेवका जीवन उसकी सारी आशा और इच्छाओंके नष्ट हो जानेके कारण भार-सा हो रहा था और दुःख-सागरमें गोते मार रहा था, उस समय मरहठोंने अवसर पाकर खानदेश, गोंडवान, बरार और गुजरातादि सूबोंपर चढ़ाई करके उन्हें मुग़लोंके हाथसे छीन लिया। दक्खिनके छः सूबों तथा मैसूर,ट्रावनकोर आदि रियासतोंसे भी उन्हें लड़ाईमें हराकर "चौथ" और "सरदेशमुखी" वसूल करने लगे। अन्तमें मुग़लोंको झखमारकर शाहूजीको महाराष्ट्रका स्वतन्त्र राजा मानना पड़ा। जिससे मरहठोंकी शक्ति पहिलेसे अधिक प्रबल और दृढ़ हो गई। इस प्रकार मरहठे अपनी पैत्रिक निर्भीकताके कारण ऐसे सफलीभूत हुए कि महाराष्ट्रमण्डल या मरहठा कौन्फिडरेसी—वास्तवमें "हिन्दू-पाद-पादशाही" स्थापित हो गई जो केवल नाम मात्र ही नहीं,वरन् सारे भारतवर्षपर राज्य करने लगी और जिसने मरहठोंको अपने घरोंका उचित प्रबन्ध करने, अपनी बिखरी शक्तियोंको संगठित करने तथा व्यक्तिगत दलबन्दियोंके भावोंको मिटाकर सर्वसाधारणके इच्छानुसार मरहठोंको एक संगठित सूत्रमें बांधनेका सुअवसर दिया। यद्यपि इस संगठनमें अब भी त्रुटियां शेष थीं तथापि इसका फल ऐसा श्रेष्ठ निकला कि
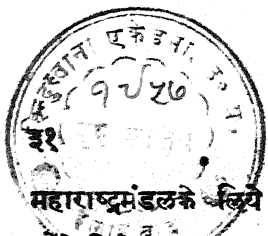
महाराष्ट्रमंडलके लिये ही नहीं, बल्कि सारे भारतवर्षके हिन्दुओंके लिये सुखप्रद हुआ। जिन व्यक्तिगत त्रुटियोंकी ओर मैंने ऊपरमें संकेत किया है, वे वही त्रुटियां थीं जो सारे हिन्दुओंके भीतर अब भी वर्त्तमान हैं, जिनको हम आगे चलकर पाठकोंके सामने एक एक कर बतानेकी चेष्टा करेंगे।

मरहठोंके जातीय इतिहासको अन्य प्रान्तवासियोंकी अपेक्षा मरहठे विशेष जानते हैं और उसका भलीभांति वर्णन कर सकते हैं, उनकी अटल धर्म-भक्ति तथा अपूर्व जातीय प्रेमका मानचित्र साङ्गोपाङ्ग खींच सकते हैं; पर हमारा मन्तव्य इस छोटी-सी पुस्तकमें उनकी इन छोटी-छोटी बातोंकी सच्चाईके वर्णन करनेका नहीं है, वरन् हमारा तो मुख्य उद्देश केवल उनके महान हिन्दू-आन्दोलनकी सत्यताको आप पाठकोंके समक्ष रखना है। बस, सब भ्रमोंको दूर करनेके लिये मरहठोंके प्रति इतना ही कह देना पर्य्याप्त होगा कि यदि उनमें कभी-कभी विशेष अवसरपर व्यक्तिगत द्वेषकी आग न भड़कती, स्वार्थ तथा बड़ी लालच उनके हृदयमें उत्पन्न न होती, तो आज उनकी जाति मनुष्य-जातिके बदले देवजातिके नामसे संसारमें विख्यात होती। यदि हम उनके उस महान् कार्य्यके उच्च उद्देश्यकी ओर ध्यान दें और अपूर्व प्रयत्न और आत्मसमर्पणद्वारा प्राप्त सफलतामेंसे उनकी व्यक्तिगत बुराइयोंको भी कम कर दें तोभी प्रत्येक देशभक्त हिन्दू उनके किये हुए कार्य्योंकी अवश्य सराहना करेगा।

मरहठा-सरदार बालाजी विश्वनाथने अपना राज्यप्रबन्ध

सब प्रकार सुदृढ़ कर तथा अपनी सैनिक शक्तिको भलीभांति संगठित कर अपनेको इस योग्य प्रौढ़ बना लिया कि दिल्लीकी बादशाही राजनीतिमें भी मुख्य भाग लेनेका साहस करने लगा। उस समय इनको किसी भी मुसलमान बड़े शत्रुओंका भय न रह गया था, यहांतक कि स्त्र मुग़ल बादशाह भी अपने बाग़ी सैनिकों तथा वज़ीरोंसे रक्षित रहनेके लिये मरहठोंसे प्रार्थना करते और उनकी सहायताके भिक्षुक बन रहे थे। इससे स्पष्ट है कि, मरहठोंके आन्दोलनने मुसलमानी बादशाहीको भली-भांति जड़से खोद्कर उन्हें पूर्ण शक्तिहीन कर दिया था।

सन् १७१८ ईस्वीमें बालाजी विश्वनाथने धावादी सैय्याद बन्धुओंका उनके मुसलमानी शत्रुओंके मुकाबलेमें, पक्ष लेकर पचास हजार मरहठे सिपाहियोंके साथ दिल्लीकी ओर यात्रा की। सैय्याद बन्धुओंने पहिलेसे ही सारे दक्खिनपर चौथ व सर-देशमुखी वसूल करनेका अधिकार मरहठोंको दे दिया था और अपना राजा मान लिया था।

हिन्दुओंकी पचास हजार सेनाको अपनी राजधानीमें प्रवेश करते हुए देख दिल्लीके मुसलमानोंकी क्रोधाग्नि भड़क उठी और वे मरहठे-सरदारको मार डालनेके लिये षड्यन्त्र रचने लगे और यह निश्चय कर लिया कि जिस समय बालाजी "स्वराज" तथा "चौथ" वसुल करनेकी सनद बादशाहसे लेकर दरबारसे निकलें, उसी समय धावा करके उन्हें मार डालना चाहिये। लेकिन क्या मरहठे जासूस इन बातोंसे अनभिज्ञ थे? कदापि नहीं। ज्योंही

उपर्युक्त समाचार मरहठोंकी सेनामें पहुंचा त्योंही प्रसिद्ध सेनापति वानू अपने सरदारकी रक्षाके लिये अपना प्राण देनेके लिये कटिबद्ध हो गया अर्थात् यह निश्चय किया गया कि बादशाहसे सनद पाकर सरदारकी पालकी किसी गुप्त राहसे सेनामें पहुंचाई जाय और वानूजी सजधजसे बालाजीकी पालकीमें बैठकर सदर राहसे लौटें। अन्तमें ऐसा ही किया गया। इधर मुसलमानोंका क्रोधभरा झुण्ड पेशवाकी पालकीकी ताकमें बहुत देरसे था। ज्योंही पालकीपर नज़र पड़ी वह एकाएक मधुमक्खियोंकी तरह उनपर टूट पड़ा और वानूजीके, जो थोड़ेसे मरहठे सैनिकोंके साथ आ रहे थे, फौरन टुकड़े टुकड़े कर दिये, क्योंकि उन्होंने उनको बालाजी समझ रक्खा था।

बालाजी बादशाही सनदको कांखके नीचे दबाये हुए किसी गुप्त राहसे सकुशल अपने खेमेंमें पहुंच गया और वानूजी इस प्रकार निःस्वार्थ आत्मसमर्पणद्वारा अपने जातीय इतिहासकी वीरता, गौरव, प्रताप और महत्वको और भी ऊंचा कर गया। इस प्रकारके महत्वपूर्ण उदाहरणोंको इस संक्षिप्त पुस्तकमें जहां-तहां दर्शानेका तात्पर्य्य यह है कि, ऐसे जातीय और धार्मिक गौरवके थोड़े उदाहरण समालोचनापूर्ण उदाहरणोंसे भरी दर्जनों मोटी किताबोंकी अपेक्षा पाठकोंके लिये विशेष लाभदायक होंगे।

सातवां अध्याय
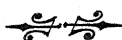
बाजीरावका कर्मक्षेत्रमें पदार्पण
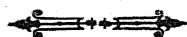
दिल्लीसे लौटते ही बालाजी विश्वनाथ सन् १७२० ई० में मर गया और उसका लड़का बाजीराव महाराष्ट्रमण्डलका प्रमुख हुआ, जिसका सभापति शाहूजी था।

शिवाके पश्चात् बाजीरावका राजनैतिक क्षेत्रमें उतरना महाराष्ट्रके इतिहासकी एक दृढ़ मेंड़ बनाता है। यद्यपि राजनीतिके बड़े-बड़े प्रश्न अब भी अधूरे पड़े थे, परन्तु महाराष्ट्रकी राजनैतिक स्वतन्त्रता पूर्ण हो चुकी थी, मरहठे शक्तिशाली और संगठित हो गये थे, देश और धर्मको हर प्रकारकी आपत्तिसे सुरक्षित रख सकते थे और चाहते तो महाराष्ट्रमण्डलपर ही संतोष कर, जिसे उन्होंने कुछ रक्त बहाकर उपार्जित किया था, भलीभांति शांतिपूर्वक अकंटक राज-सुख भोग सकते थे। यह भाव कई एक नेताओंके हृदयमें उत्पन्न भी हुआ और इस भावको उन्होंने छत्रपति शाहूजीके मनपर बिठानेका प्रयत्न भी किया, किन्तु असफल रहे। अगर उनका यह प्रयत्न सारी जातिपर सफल भी हो जाता और उन लोगोंको महाराष्ट्रसीमाके बाहर हिन्दू-स्वतन्त्रताकी लड़ाईको रोकनेके लिये विवश भी करते, तोभी इस बातमें शंका थी, कि जो कुछ उन लोगोंने विजय करके

अपने अधीन किया था, उसका शांतिपूर्वक उपभोग बहुत दिनोंतक कर सकते या नहीं अथवा महाराष्ट्रका भारतके सभी अन्याय प्रान्तोंसे नाता तोड़कर एक सूनसान स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करते और बाहरका ध्यान न रखते। वे ऐसा कदापि नहीं करने पाते। क्या उन लोगोंने लगातार तीन पीढ़ी-तक घोर लड़ाई कर खूनकी नदी बहाई केवल क्षुद्र सांसारिक सुख और शांतिके लिये? नहीं, ऐसा नहीं और न ऐसा करना उनके लिये श्रेय था। क्या उनका यह सुख बाहरके दुःखित हिन्दुओंका आर्तनाद सुननेपर वास्तविक सुख कहला सकता था? नहीं, नहीं, कदापि नहीं। शिवाजीने जिस हिन्दू-पाद-पादशाहीकी नींव डाली थी, उसका उद्देश केवल महाराष्ट्र-मात्रके लिये ही न था, बल्कि सारे भारतवर्षके लिये एक-सा था और इसी पवित्र उद्देशके परिपोषक उनके सारे साथी भी थे। यह बात तो सच है कि महाराष्ट्रके हिन्दू विदेशियोंके शासनसे छुटकारा पा चुके थे, पर अब भी करोड़ों भिन्न-भिन्न प्रान्तीय हिन्दू भारतमें वर्तमान थे, जो विदेशियोंके शासनसे असन्तुष्ट और दुःखित थे। ऐसी दशामें मरहठे यदि अपने प्रान्त ही पर संतोष कर बैठ जाते तो शिवाजी महाराजका उद्देश तथा महात्मा रामदासजीका पवित्र उपदेश निष्फल हो जाता और स्वर्गमें भी उनकी आत्माओंको शांति न मिलती। भला इस उच्च ध्येयको ध्यानमें रखते हुए मरहठे क्योंकर चुपचाप बैठ सकते थे। यवनोंकी अर्द्धध्वजा अब भी बड़े गौरवके साथ पवित्र काशी-क्षेत्रमें विश्वनाथके

मन्दिरपर फहरा रही थी। भला ऐसी दशामें हम किस प्रकार मान सकते हैं कि शिवाजीकी हिन्दू-पाद-पादशाहीका आन्दोलन पूर्ण हो चुका था, जबकि दिल्लीमें धर्मराज युधिष्ठिरके पवित्र राजसिंहासनपर मुग़ल विराज रहे हों।

मरहठोंने पनधारपुर और नासिकके मुसलमानी राज्यको जीतकर उनकी अर्द्ध ध्वजाको उखाड़कर फेंक दिया, जिसको अब हठधर्म्मी मुसलमान अपमानित नहीं कर सकते थे। किन्तु उधर काशी, रामेश्वर, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र और गंगासागरकी क्या दशा थी, इसपर ध्यान दीजिये, जहां यवनोंकी ध्वजा उड़ रही थी। क्या ये तीर्थ उतने ही पवित्र न थे जितने कि पनधार और नासिक ? उनके पूर्वजोंकी मृतक राख केवल गोदावरी हीमें नहीं पड़ती थी, बल्कि गंगामें भी। उनके देव-मन्दिर हिमालयसे रामेश्वरतक और द्वारिकासे जगन्नाथतक सारे भारतमें फैले हुए थे। इस कारण गंगा और यमुनाका जल स्वामी रामदासके कथनानुसार अब भी अपवित्र तथा पूजन-कार्यके योग्य न था, क्योंकि वह मुसलमान राजाओंकी धार्मिक ध्वजाके नीचे समझा जाता था और इसको देखकर स्वामीजी बड़े दुःखित शब्दोंमें कहा करते थे कि—"मुसलमान शक्तिशाली हैं और हिन्दू निर्बल हैं, किन्तु मरहठोंको चाहिये कि धर्मके लिये मरें, मरते-मरते भी अपना राज्य ले लें और महाराष्ट्रराज्य स्थापित करें और हिन्दूधर्मको जीवित करें।" क्या मुसलमानोंका अन्यायपूर्ण शासन भारतवर्षसे उठ गया ? क्या भारतवासियोंके पांवोंमें पड़ी

हुई गुलामीकी बेड़ी कट गई? नहीं। जबतक मुसलमानोंका प्रभुत्व सारे भारतवर्षमें चूर-चूर न हो जायगा, तबतक हिन्दूधर्म-के गौरवका साम्राज्य नहीं हो सकता है। जबतक भारतवर्षकी एक इंच भी भूमि मुसलमानोंके अधिकारमें रहेगी, तबतक जिस कार्यके लिये शिवाजी तथा रामदासजीके वंशज मर मिटे हैं, वह कार्य्य अधूरा ही समझा जायगा।

इस प्रकार पूर्वजोंके उद्देश्यपर दृष्टिपात करके मरहठोंका भाव पुनः बदल गया। उनकी आखोंके सामने पूर्वजोंकी कीर्तिका चित्र एक एक कर नाचने लगा और अपने कर्तव्यको भली-प्रकार समझ गये। अन्तमें सब मरहठोंने अपने मनमें दृढ़ संकल्प कर लिया कि जबतक हम हिन्दुओंकी गुलामीकी बेड़ी टुकड़े २ न कर डालेंगे, जिसने इस महान जातिको पराधीनतामें जकड़-कर बांध रक्खा है, तबतक अपनी तलवारको म्यानमें न रखेंगे। जबतक हिन्दूजाति बिना रोकटोक पूर्ण स्वच्छन्दतासे अपने सारे धार्मिक कार्य न कर सके, जबतक इनका एक विशाल शक्ति-शाली हिन्दूराज्य स्थापित न हो जाय, तबतक हम युद्ध बंद करके क्योंकर शान्तिपूर्वक राजसुखका भोग करें? जबतक विश्वनाथके पवित्र मंदिरकी जगह मसजिद खड़ी दिखाई देती है, जबतक मुसलमानोंके घुड़सवार बेरोकटोक सिन्धु नदीको पार करते रहेंगे, जबतक उनके जहाजोंकी पालें हिन्द महासागरमें उड़ती रहेंगी, तबतक हम इस धर्मयुद्धसे कभी भी मुंह नहीं मोड़ेंगे। इस धर्मयुद्धका अंत किसी व्यक्ति-विशेष या किसी एक प्रान्तकी

सुखशांतिपर निर्भर नहीं है, बल्कि इसका अन्त सारे भारतवर्षमें एक महान् हिन्दू-साम्राज्य एवं "हिन्दू-पाद-पादशाही" स्थापित करनेके साथ है। इसलिये हम महाराष्ट्रवासी उक्त कार्यकी पूर्ति-के लिये सहस्रों और लाखोंकी संख्यामें तलवार लेकर निकल पड़ें और अपनी गेरुआ ध्वजाको नर्मदाको पार कर चम्बलके उस पार स्थापित कर दें। गङ्गा, जमुना, सिन्ध तथा ब्रह्मपुत्रको पार करते हुए अन्तमें समुद्रके किनारे तक पहुंच जायं और श्रीराम-दासजीके महान् उपदेशको सदैव ध्यानमें रखकर अपनी मनोरथ-पूर्तिके लिये प्रयत्न करते जायं, तथा उसके साथ-साथ अपना पैर भी आगे बढ़ाते जायं।

अब पाठकोंको स्पष्ट विदित हो गया होगा कि मरहठोंका भाव अत्यन्त ऊंचा और उनका कार्यक्षेत्र बड़ा विस्तीर्ण था। सर्वदा उनके बुद्धिमान कार्यकर्त्ता, वीर सेनापति, राजनीतिज्ञ तथा महापुरुष इसी प्रकारके विचारोंके उधेड़बुनमें अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये लगे रहते थे। बाजीराव, चिम्माजी अप्पा, ब्रह्मेन्द्र स्वामी, दीक्षित, मथुरा बाई, ऐंगर और भी दूसरे २ महाराष्ट्रीय नेताओंका हृदय उच्च २ भावोंसे भरा था। उस समय उन लोगोंके सामने केवल यही प्रश्न नहीं उठता था कि—"क्या होना चाहिये" बल्कि प्रश्न यह होता था कि "क्या किया जाय और किस प्रकार अपना कार्यक्षेत्र विस्तृत किया जाय।" प्रथम तो महाराष्ट्रवासियोंका ध्येय कोई विशेष प्रान्तिक हिन्दूराज्य स्थापित करनेका था ही नहीं और यदि ऐसा करनेकी

उनकी इच्छा होती भी तो उसका पूर्ण होना असम्भव था, क्योंकि महाराष्ट्रके हिन्दुओंके भाग्यका निर्णय उत्तरमें सिन्धसे लेकर दक्षिणमें समुद्रतकके हिन्दुओंके भाग्यके साथ होना ध्रुव था।

महाराष्ट्रके राजनीतिज्ञ भलीभांति जानते थे कि भूतकालमें प्रान्तिक भेदभावने ही भारतवर्षको पराधीन बनाया, जिसके कारण हिन्दुओंका जातीय अभिमान और गौरव नष्ट हो गया। इस बातको दृष्टिमें रखकर वे सदैव प्रयत्न करते रहे कि जहांतक सम्भव हो हिन्दूमात्रका संगठित होना परमावश्यक है। इसी बातको ध्यानमें रखकर जिस समय नादिरशाहका आक्रमण भारतवर्षपर हुआ उस समय बाजीरावने प्रत्येक हिन्दू-राजाके पास लिख भेजा था कि मैं आप लोगोंको केवल अपने धार्मिक तथा राजनैतिक कार्य्यों के लिये स्वार्थवश नादिरशाहका सामना करनेमें योग देनेके लिये विवश नहीं करता हूं, बल्कि मैं सोचता हूं कि जबतक आप लोग इस महान् हिन्दूजातिकी स्वतंत्रताके प्रश्नको सुचारु रूपसे ठीक रास्तेपर न ला देंगे तबतक आप लोगोंका व्यक्तिगत शांतिमय जीवन, वास्तविक जीवन नहीं कहलायेगा; अर्थात् आपको अपने ही सुखभोगपर जीवन व्यतीत करना शोभा नहीं देता है, वरन् हमलोग एक ऐसा बड़ा राज्य स्थापित करें जिसकी क्षत्र-छायामें सारा भारतवर्ष सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत कर सके। यह बात ध्रुव है कि कोई भी हिन्दू इस अवस्थामें शान्तिपूर्वक नहीं रह सकता; हिन्दुत्वका

गौरव तथा आदर्श नहीं रख सकता। जबतक उसके ऊपर विदेशियोंका शासन है, वह अपनेको पूर्ण हिन्दू कहलानेके योग्य भी नहीं प्रमाणित कर सकता और अपनी जातिकी उन्नति करनेमें निरा असमर्थ है, क्योंकि दूसरेके अन्यायने उन्हें भयभीत करके गुलामीकी बेड़ीमें बंधा रहनेके लिये विवश कर दिया है।

इन सब बातोंको केवल महाराष्ट्रके प्रमुख नेता ही नहीं बल्कि महाराष्ट्रका साधारण-से-साधारण व्यक्ति अनुभव कर रहा था कि, जबतक हमलोग दिल्लीपर राज्य न करेंगे तबतक पूना और सितारामें राज्य करना व्यर्थ है। जब महाराष्ट्रके सारे नेता शाहूजीके सभापतित्वमें उपस्थित होकर भविष्यके राजनैतिक सिद्धान्तोंपर विचार करनेके लिये एकत्रित हुए तो ऐसे सुअवसरको पाकर बाजीराव बोलने उठ खड़ा हुआ और अपने दृढ़ निश्चयों और बड़े मनोरथोंको वर्णन करने लगा। जब उसे अपनी शक्ति और उत्साहका ध्यान आया तो वह ललकारकर कहने लगा कि, "हमलोग अब अवश्य दिल्लीकी ओर बढ़ेंगे और यवनराज्यकी जड़ खोद देंगे। ऐ हिन्दू शूरवीरो! तुमलोग यहां खड़े होकर क्यों आगा-पीछा सोच रहे हो। आगे बढ़ो, आगे बढ़ो, "हिन्दू-पाद-पादशाही" का समय आ गया है। असम्भव है? कभी नहीं, यह असम्भव नहीं है। मैंने अपनी तलवार शत्रुओंको तलवारसे नाप ली है—उनकी शक्तिका पता लगा लिया है। ऐ महाराज क्षत्रपति शाहूजी! मैं आपसे धनकी याचना नहीं करता हूं, केवल आप मुझे आज्ञा और यह आशीर्वाद दीजिये कि मैं

सीधे दिल्ली जाऊं और उस हानिकारक वृक्षकी जड़पर कुल्हाड़ी मारकर शाखासहित सत्यानाश कर दूं" ।

बाजीरावके उत्साहपूर्ण आन्तरिक पवित्र भावोंसे भरे हुए वाक्योंको सुनकर शाहू क्षत्रपतिका शरीर कम्पायमान हो गया, उनकी नसोंमें शिवाजीका रक्तप्रवाहित होने लगा और वे जोशभरे शब्दोंमें सम्बोधन कर अपने शूरवीरोंकी ओर संकेत कर कहने लगे, "ऐ मेरे शूरवीरो ! जाओ, जिधर चाहो, मेरी सेनाको विजय-पर-विजय प्राप्त कराते हुए ले जाओ और दिल्ली ही क्या, इस गेरुआ वस्त्रकी ध्वजाको विजय लाभ कराते हुए हिमालय-की चोटीपर स्थापित कर दो । यह वही गेरुआ ध्वजा है जो सोने-चांदीके कामसे सुशोभित नहीं है, बल्कि वैरागी और सन्यासियोंका गेरुआ वस्त्र है, जो सांसारिक मायाको त्याग ईश्वरभक्ति तथा जीव-सेवाकी ओर मनुष्योंको ले जाता है ।" शाहूजीकी आज्ञा पाकर मरहठे उस गेरुआ ध्वजाके पीछे चल पड़े, जो उन्हें धार्मिक कर्त्तव्योंकों सदैव स्मरण दिलाने तथा उनको सत्पथपर ले जानेके लिये दी गयी थी । इसी ध्वजाके सहारे मरहठे अपने उच्च आदर्शपर आरूढ़ रहकर अपने धर्म और जातिके रक्षक बने तथा शत्रुओंकी पराधीनतासे देशको मुक्त किया। तलवार ही मरहठोंकी पूज्या भवानी थी और गेरुआ झण्डा ही उनका पूज्यपाद भगवान् था । जिस झण्डेको महात्मा रामदासजीने उठाया था और जिसके नीचे वीर शिवाजी लड़े, जिसे सह्याद्रि पर्वतकी चोटीपर ले जाकर स्थापित किया,

उसीको उसके पौत्र शाहूजी तथा उनके वंशज लें जाकर किनार-कंद्की सीमापर गाड़नेकी इच्छा करते हैं। इस प्रकार शाहूजीके सभापतित्वमें मरहठोंने संकल्प किया। सभा समाप्त की गई और यही महाराष्ट्रका इतिहास सारे भारतवर्ष का आदर्श इतिहास बन गया।

आठवां अध्याय
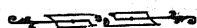
बाजीरावकी वीरता

बाजीराव और उसके साथी शिवाजीकी परम्परागत राजनैतिक विद्या तथा युद्ध-कलामें कैसे निपुण थे तथा उनकी उपरोक्त विषयोंमें कैसी शिक्षादीक्षा हुई थी, यह सारी बातें शाहूजीके सभापतित्वमें महाराष्ट्र-मण्डलके बीच बाजीरावकी सारगर्भित वक्तृतासे भलीभांति प्रकट हो जाती है। बाजीरावने अपनी वक्तृतामें इन दोनों बातोंकी तुलना की, कि जिस समय महाराज शिवाजी दक्षिणमें हिन्दूजातिकी स्वतन्त्रताके लिये लड़नेका प्रयत्न कर रहे थे वह समय कितना भयङ्कर और विकट था, और एक आजका समय है कि हमलोग उनके वंशज होकर उत्तरीय भारतमें लड़ाई ठाननेका साहस करनेकी जगह बैठकर नाना प्रकारकी शङ्काओं और विचारोंमें पड़े हुए हैं और उस समयसे कहीं अधिक बलवान हैं। इस समय हमलोग निजाम, बंगेश तथा मुग़लसेनाओंपर बड़ी सफलताके साथ धावा कर सकते हैं, परन्तु सबसे पहला काम हमलोगोंका यह होना चाहिये कि निजामको जो मुसलमानी सेनाओं तथा राजनैतिक क्षेत्रोंमें इस समय सबसे विशेष चढ़ा-बढ़ा है, सामना करके नीचा दिखावें।

बाजीरावने जिस प्रकार अपनी ओजस्विनी वाग्शक्ति-द्वारा अपना मनोरथ सफलतापूर्वक महाराष्ट्रमण्डलके सन्मुख दर्शाया, उसी प्रकार कर्मक्षेत्रमें भी अपने कर्त्तव्यद्वारा शिवाजी-का एक सुयोग्य शिष्य अपनेको प्रमाणित कर दिया। तारीख ७ अगस्त सन् १७२७ ईस्वीको जबकि मूसलधार वृष्टि हो रही थी, बाजीराव अपनी शिक्षित सेनाको लेकर रणक्षेत्रमें गया और औरङ्गाबादमें प्रवेश कर उनपर विजय प्राप्त करनेके बाद लड़ाई-खर्चका चन्दा वसूल किया और उसके पश्चात् आसपासके जिलों-से भी अपने बाहुबलसे चन्दा वसूल करने लगा, जिनपर उस समय निजामका शासन था। ज्योंही निजामकी सेना इवाज खांकी अधीनतामें उसका मुकाबिला करनेके लिये पहुंची, बाजीरावने उन्हें अपनी धूर्त्ततासे थोड़ी देरतक फंसाये रक्खा और फिर अचानक अपने दुश्मनोंकी सेनाको छोड़कर आगे बढ़ा और माहुरकी ओर झुका तथा औरङ्गाबादकी तरफ बढ़कर यह बात प्रकट कर दी कि वहांपर भी चन्दा वसूल करेगा। बाजी-रावने तो अपनी इस चालबाजीमें सफलता देखकर और निजाम-को धोखा देकर खानदेशको छोड़ दिया और गुजरातमें प्रवेश किया और वहांके मुगल-वाइसरायको हंसीमें सूचना दे दी कि मैं इस देशपर निजामकी आज्ञा पाकर चढ़ाई कर रहा हूं। निजाम बड़ी तेजीके साथ औरङ्गाबादकी तरफ जा रहा था। उसे यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि जिस शत्रुसे औरङ्गाबादकी रक्षा करने जा रहा हूं, वह शत्रु गुजरातमें जाकर खड़ा है। बाजी-

रावकी इस चालपर निजामको बड़ा क्रोध आया और उसीकी नीतिका अनुकरण कर अपनी तलवारसे बाजीरावपर विजय प्राप्त करनेका विचार किया, अर्थात् निजामने सोचा कि जिस समयपर बाजीराव पूनाकी राजधानीमें न रहे, उस समय अचानक धावा करके पूनाको लूट लेना चाहिये। परन्तु बाजीरावकी इस युद्ध-कलाको सीखनेके लिये निजाम निरा अयोग्य ठहरा; क्योंकि बाजीरावने उसकी यह सब बात जानकर पहिले ही गुजरात छोड़ दिया और बड़ी शीघ्रतासे निजामराज्यमें फिर आ पहुंचा। जब निजाम पूना लूटनेकी चिन्तामें बड़ी तेजीसे उस ओर जा रहा था, तब उसे यह सुनकर बड़ी हैरत हुई कि बाजीरावने पूना लूटनेके पहले ही हमारे राज्यको लूट लिया। इसलिये पूना लूटनेकी इच्छाको त्यागकर बाजीरावसे गोदावरीके किनारे मुकाबला करनेको लौटा। इस चक्करमें पड़कर निजामकी सेना बड़ी थक गई थी। यद्यपि निजामकी इच्छा उस समय सेनाकी दशा देखकर सामना करनेकी न थी तथापि बाजीरावने उसे युद्ध करनेके लिये हठात् विवश किया और पहलेकी भांति भागने तथा सामना न करनेकी अपेक्षा ऐसी चालाकी तथा बुद्धिमानी दिखाई कि जिसके फेरमें पड़कर निजामकी सेना बाजीरावकी इच्छानुसार पालखेद नामक स्थानपर जा डटी।

बाजीरावने अपने बचावकी जगह पहले हीसे बना ली और शत्रुओंकी चढ़ाईको बड़ी वीरता तथा बुद्धिमत्तासे रोकता गया। यद्यपि निजामके पास लड़ाईके सामान—बड़ी २ तोपें और

बन्दूकें—मौजूद थीं, तिसपर भी वह बड़ी बुरी तरह फंस गया और घबराया तथा आश्चर्यके साथ अनुमान करने लगा कि अब मेरे लिये महाराष्ट्रसेनापर विजय लाभ करना दुस्साध्य एवं असम्भव है। इस दशामें मुझे या तो अपनी सारी सेनाको बरबाद करना पड़ेगा या बाजीरावके इच्छानुसार कार्य्य करना पड़ेगा। बड़ी उधेड़बुनके बाद निजामने अपने हृदयमें बाजीरावसे संधि करनेका विचार निश्चय किया और शाहूजीको महाराष्ट्रका स्वतन्त्र राजा मान लिया और जितनी चौथ और 'सरदेशमुखी' बाकी थी सब एक एक कर देनेके लिये स्वीकार किया तथा इस शर्तको भी मान लिया कि हमारे राज्यमें पुनः मरहठे कर वसूल करनेके लिये नयुक्त किये जायं। इस प्रकार दोनोंकी संधि हो गई।

यहांपर उपरोक्त लड़ाईके भलीभांति वर्णन करनेका केवल यही लक्ष्य है कि पाठकोंको दर्शादें कि महाराज शिवाजीने अपनी जातिको जिन जिन शिक्षाओंसे भलीभांति शिक्षित किया था, उनके वंशजोंने उन्हे आजतक उसी प्रकार स्मरण रक्खा है और उनमें तनिक भी त्रुटि न की, वरन् विशेष उन्नतशील बनाये रक्खो तथा समयानुकूल घन-घोर लड़ाइयोंमें प्रायः उन गुणोंसे काम लेकर विशेष सफलताके साथ विजय प्राप्त करते रहे। यह मरहठोंकी लड़ाई करनेकी युक्तिका एक आदर्श-स्वरूप उदाहरण है।

मालवाके मुग़ल-उत्तराधिकारियोंकी दशा दक्खिनके मुग़-

लोंसे कुछ अच्छी नहीं थी, क्योंकि जबसे उदाजी पवांनने मालवा-पर आक्रमण किया और मूण्डमें अपना खेमा गाड़ दिया तबसे मरहठे लोग हर तरफसे, जहां इन्हें सुगमता मिलती, मुग़लोंकी सेनापर धावा करते रहे और उन्हें सुखकी नींद न सोने दिया। उस प्रान्तके हिन्दू जो मुसलमानोंके अन्यायपूर्ण शासनसे पीड़ित थे अपने धर्मकी रक्षाके लिये हर तरह विधर्मियोंसे सताये जाते थे। उन लोगोंका भी शिवाजीके उठाये हुये हिन्दू धार्मिक आंदोलनके प्रति भाव बदला और वे अनुभव करने लगे कि वास्तवमें मरहठोंका यह आन्दोलन प्रान्तिक या व्यक्तिगत नहीं है, वरन् धार्मिक और सार्वजनिक है। इस कारण हिन्दू उक्त आंदोलनके पक्षपाती हो गये और इस कार्य्यको सभोंने अपना यथोचित कर्त्तव्य समझ लिया। मरहठोंके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई और उन्हें पूर्णरूपसे ज्ञात हो गया कि मरहठोंकी यह विशाल शक्ति ही केवल देश और धर्मको विदेशियोंके हाथसे मुक्त करनेका इस समय एकमात्र श्रेष्ठ साधन है।

भाग्यवश मालवाके प्रसिद्ध शक्तिशाली राजकुमार हिन्दू-स्वतन्त्रताके लिये उत्साहित हिन्दुओंके पक्षपाती हो गये, जिनका शुभ नाम सवाई जयसिंह था। महाराज छत्रशालने जब अनुभव किया कि हम अपने छोटेसे राज्यको विदेशियोंके आक्रमणसे रक्षा करनेमें पूर्ण असमर्थ हैं—अर्थात् हम अपनी रियासतको शत्रुओंसे नहीं बचा सकते हैं—तो उनकी बुद्धिने भी देशभक्तिसे प्रेरित होकर तथा प्रान्तिक भेदभावको त्यागकर हिन्दू

स्वतन्त्र राज्यके आन्दोलनसे सहानुभूति रखना पसन्द किया और विचारा कि इस आन्दोलनके जन्मदाता चाहे मरहठे हों चाहे राजपूत हों, चाहे सिख या कोई अन्य हिन्दूसम्प्रदाय क्यों न हो, लेकिन दिल्लीके मुसलमानी राज्यके सामने सिर झुकाना मुझे पसन्द नहीं है और इसी विचारपर अटल भी रहा। छित्र-शालके इसी उत्तम विचारका अनुकरण जयसिंहने भी आनन्दपूर्वक किया। जयसिंहने मालवावासी पीड़ित हिन्दुओंका पक्ष बड़ी वीरताके साथ ग्रहण किया और जितने क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा अन्य जातिवाले मुसलमानी शासकोंके अन्यायपूर्ण करसे पीड़ित हो रहे थे, जिसका सहन करना अब उन लोगोंकी शक्तिसे बाहर हो रहा था, वे बुरी रीति, घुसखोरी तथा अपने जाति और धर्मके अपमानसे विकल हो रहे थे, उन सबको जयसिंहने अपने पास बुलाकर अपनी सम्मति और उत्साहके साथ सलाह दी कि सभी मालवावासी मिलकर मरहठोंको अपनी रक्षाके लिये बुलावें और उनका पक्ष यथाशक्ति शक्तिशाली बनावें, क्योंकि सिवाय मरह-ठोंके इस समय हिन्दूधर्मका रक्षक दूसरा कोई नहीं दिखाई पड़ता है। वही हमलोगोंको इस विपत्तिसे छुड़ाकर स्वतन्त्र करेंगे और हिन्दू-राज्य स्थापित कर हमारा कल्याण करेंगे।

उस विचारशील राजकुमारने भलीभांति समझ लिया था कि इस समय जितने हिन्दू-शासक भारतवर्षमें हैं, उनमें केवल महाराष्ट्र-मंडल ही एक संगठित शक्तिवाला है, जो मुसलमा-नोंका उचित रूपसे सामना करके रणक्षेत्रमें उन्हें नीचा दिखा

सकता है और हिन्दुओंको एकत्रित करके एक सूत्रमें बांध सकता है। यदि मैं अग्रसर होकर अपने बाहुबलसे इस पीड़ित हिन्दू-जातिको मुसलमानोंके अन्यायसे मुक्त नहीं कर सकता हूं, तो मेरा यह कर्त्तव्य अपनी जातिके प्रति अवश्य होना चाहिये। प्रत्येक हिन्दूका धार्मिक कर्त्तव्य है कि अपनी सारी इच्छा तथा आशा और तृष्णाको त्यागकर अपने सर्व नीच विचारोंको तथा पारस्परिक वैर-भावको तिलांजलि देकर उन महापुरुषोंका सहायक बने जो हिन्दू-जातिको स्वतंत्र बना सकते हैं।

ठाकुर नंदालाल मांडवीने उक्त राजकुमारके प्रभावशाली विचारका सादर अनुमोदन किया और बड़े हर्ष-पूर्वक मालवा निवासी हिन्दुओंकी ओरसे अपनी जाति और धर्मकी रक्षाहेतु मरहठोंको पत्रद्वारा आमंत्रित किया। मरहठे जिनका जीवन ही धर्मकी रक्षाके लिये स्थित है, अपने सहधर्मियोंके निमंत्रण-पत्रको पाकर बड़ी प्रसन्नताके साथ शीघ्र ही बाजीरावके भाई चिम्माजी आपाको एक सेनाके साथ मालवा प्रान्तपर धावा करनेके लिये भेज दिया। इधर मुगल प्रतिनिधिने यह समाचार पाकर जितनी अधिक संख्यामें हो सका अपनी सेना एकत्रित की, लेकिन मरहठे लड़ाईके समय उनकी तनिक भी परवाह न करके एक तिल भी रण-क्षेत्रसे न डिगे और सुअवसर पाकर मुसलमानी सेनापर अचानक टूट पड़े और देवाजकी लड़ाईमें मुगलअधिनायकका काम तमाम कर दिया अर्थात् उसे मार डाला।

पर मुगलअधिराज मालवा जैसे धनशाली प्रान्तको इस आसानीके साथ हाथसे खो बैठनेके लिये कदापि तैयार न था, इसलिये एक नया अधिपति मुगलोंकी ओरसे मरहठोंका सामना करनेके लिये मालवा भेजा। इधर मरहठोंसे सहानुभूति रखनेवाले सभी मालवानिवासी मरहठा फौजमें शामिल हो गये।

नये मुगल अधिनायकने विशाल सेनाके साथ एक भयंकर उपाय सोचकर मरहठोंका मांडव तथा अन्य दूसरी घाटियोंमें सत्यानास करनेका विचार किया। लेकिन मरहठोंने उन्हें खूब छकाया और मल्हारराव, पिलाजी तथा चिम्माजी आपाकी संरक्षकतामें मालवाके हिन्दुओंकी सहायतासे मुगल-सेनाको तिराल नामक स्थानपर एक घमासान लड़ाई करके पूर्णरूपसे पराजित कर उनके नये नायकको भी मार डाला और मुगलोंको मालवासे बिलकुल निराश कर दिया।

इस प्रकारके सफलतापूर्ण समाचारको पाकर मालवाके हिन्दुओंकी प्रसन्नताकी सीमा न रही, वे आनंदसागरमें निमग्न हो गये। आज उनके लिये एक महान गौरवका दिन सामने आया। सैकड़ों वर्षकी हार और पराजयके पश्चात् विजयके साथ हिन्दू-ध्वजाको स्वतंत्र फहराते हुए देखा। उसकी छायाके नीचे अपनेको गौरवके साथ पाकर उनकी नसोंमें नवीन रक्त संचार होने लगा और देशभक्ति, जातीय प्रेम तथा धार्मिक भावसे हृदय भर उठा; जिससे उनके मुक्त-कर्त्ता मरहठे जिस ओर

जाते थे, बड़ी धूम-धामसे उनका स्वागत कर अपनी कृतज्ञता जताते थे।

स्वयं जयसिंहने एक उत्तम पत्रद्वारा सारे मरहठे सेनापतियोंको जिन्होंने लड़ाईमें अपूर्व साहस तथा वीरताका परिचय दिया था, इस अद्भुत सफलता प्राप्त करनेके लिये अनंत बधाई दी और लिखा कि आपने मुसलमान शत्रुओंको मालवा प्रान्तसे निकालकर प्रान्तीय हिन्दुओंको यवनोंकी दासताकी बेड़ीसे मुक्त कर हिन्दू-धर्मके साथ जो उपकार किया है, उसके लिये हमलोग आजन्म आपके ऋणी हैं और जो कुछ आपके प्रति कहा जाय, सब थोड़ा है। केवल सहस्रों धन्यवाद देकर ही अपनेको कृतकृत्य समझता हूं।

मरहठे सरदार शीघ्र ही मुगल-प्रतिनिधियोंको मालवासे निकालकर उसे महाराष्ट्रके एक सूबेकी भांति शासन करने लगे और सब प्रकार शान्ति स्थापन कर प्रजाको सुखका दिन दिखाया तथा उनकी प्रतिष्ठा की।

इतनेपर भी दिल्लीके बादशाहकी तृष्णा मालवा-प्रदेशसे न गई। उसे इस प्रकारकी पूर्ण निराशाकी ओटमें आशा ही दृष्टिगत होती थी। उसने पुनः एक नये वाइसरायको जिसका नाम मुहम्मदखां बंगास था, जो एक बहादुर शेरदिल रुहेला पठान था, जिसने लड़ाइयोंमें अपनी वीरतासे मुसलमानी सेनाके अन्दर अपना बड़ा नाम पैदा किया था, जिसके कारण उसे मुगल-बादशाहकी तरफसे पुरस्कारमें रणसिंहकी उपाधि मिली थी।

दिल्ली-दरबारसे आज्ञा निकली कि तुम सबसे पहिले बुन्देला-सरदार क्षत्रसालकी बढ़ती शक्तिका नाश करो और पश्चात् मालवासे मरहठोंका नामनिशान मिटा दो।

बुन्देला-सरदार क्षत्रसाल कुछ दिनसे मुसलमानोंकी गुलामीकी बेड़ीको अपने परिश्रमसे तोड़कर स्वतंत्र राजनैतिक जीवन व्यतीत कर रहा था। क्षत्रसाल शिवाजीका एक अनन्य भक्त था, उसने शिवाजीको अपना गुरु तथा पथ-प्रदर्शक स्वीकार किया था। शिवाजीकी आदर्शपूर्ण शिक्षाने उसके हृदयमें स्वतंत्रताकी नींव डाली थी, जिससे इसने बुन्देलखंडकी स्वतंत्रताके लिये कार्य-क्षेत्रमें पदार्पण किया और बड़ी सफलतापूर्वक अपने देश और धर्मको स्वतंत्र बना लिया। इससे इसकी प्रजा इसको हिन्दू-धर्मकी ढालके नामसे सम्बोधन करने लगी।

मुहम्मद बंगासने बुन्देलोंके छोटे राज्यपर बादशाहके आज्ञानुसार एक बड़ी भारी सेनाके साथ आक्रमण किया। वृद्ध बुन्देला-सरदारने जब देखा कि,मुझ जैसे छोटे राजाको यवनोंकी असंख्य सेनासे सामना करनेका अवसर आन पड़ा है, जिनके हृदयमें मेरे छोट राज्यको सत्यानास करनेकी शाही-आज्ञा लहर मार रही है, तो कुछ चिन्तित हुआ। पर शिवाजी जैसे गुरुके सुयोग्य शिष्य क्षत्रसालका ध्यान अपने गुरुभाई बाजीरावकी ओर गया, जिसके रक्तमें केवल शिवाजीका उत्साह ही नहीं भरा था, बल्कि अपने पूर्वजोंके उद्देश्यकी पूर्त्तिकी लगन भी लगी

हुई थी। उसने एक पत्र विनीत भावसे बाजीरावके नाम लिखा, जिसमें उनके पूर्वजोंकी कीर्त्ति तथा उच्च ध्येयका दिग्द-र्शन कराते हुए उनके कर्त्तव्योंका स्मरण दिलाया और अपनी इस संकटापन्न अवस्थामें सहायता करनेके लिये प्रार्थी हुआ। क्षत्रसालकी बुद्धिमत्ता तथा लेखन-शक्ति ऐसी थी, कि उसके उस पत्रने प्रत्येक हिन्दूके हृदयमें भ्रातृभाव उत्पन्न कर दिया। मैं उसके पत्रका अन्तिम भाव अंकित करता हूं, जो उसकी श्रद्धाका द्योतक है

"ऐ हिन्दू-कुल-कमल-दिवाकर बाजीराव! आप आइये और मुझ दीनको विधर्मियोंके भयंकर आक्रणसे बचाइये, जिस प्रकार विष्णुभगवानने गजराजके आर्तनादको श्रवण कर नंगे पांव जाकर दुष्ट ग्राहके हाथसे उसकी रक्षा की थी।"

महाराज शिवाजीके एक पुराने शिष्य तथा मित्रके इस प्रकार मुसलमानोंके आक्रमणसे धर्मसंकटमें पड़नेपर एक हिन्दूके नाते मरहठोंसे सहायता मांगनेपर भला मरहठे इसको कैसे अन-सुनी कर सकते थे, जिनका पैत्रिक उद्देश्य धर्मकी रक्षा ही कर-ना है। पत्र पाते ही मरहठोंका उत्साह देशभक्तिके लिये उब-लने लगा और तत्काल बाजीराव, मल्हारराव, चिम्माजी अप्पा तथा अन्य मरहठे सरदारोंने जितनी शीघ्रता हो सका उतनी शी-घ्रतासे सत्तर हज़ार सेनाओंके साथ कूच कर दिया और महाराज क्षत्रसालसे धामुरहेके स्थानपर जा मिले। क्षत्रसाल भी अपनी बचीबचाई बुन्देला-सेना एकत्रित कर उनके साथ रवाना हो

गये। यद्यपि उस समय मूसलधार वृष्टि हो रही थी, परन्तु रणमदमें मत्त मरहठोंने इसकी कुछ परवाह न की।

मुहम्मदखां अपनी अटूट सेनाके साथ एक छोटेसे हिन्दू-राज्यपर आक्रमण कर विजय प्राप्त करने तथा राजा क्षत्रसालको देशसे निकालकर उसके राज्यपर अधिकार कर लेनेसे अपनी भारी शूरतापर गर्वित था। इसी आनंदसे उसने वर्षाकालमें आराम करनेका विचार किया।

जिस समय मुग़लअधिपति अपनी विजयको आनंद-लहरमें गोता खा रहा था—अपनेको विजयी बननेमें गौरवान्वित समझ रहा था—दिल्लीश्वरकी आज्ञा पूर्ण कर भावी सुख तथा प्रतिष्ठाकी नाना प्रकारकी कल्पनाओंमें निमग्न था, जिसे चारों ओर हरा-ही-हरा सूझ रहा था तथा सुखकी नींदमें खुर्राटे ले रहा था, उसी समय भयानक वर्षाकालमें कर्मवीर हिन्दू-सेनाओंने मरहठोंकी क्षत्रच्छायामें अपनी जान हथेलीपर रक्खे हुई, सघन वन, गहन पर्वत तथा विकट मार्ग समाप्त करते हुए अचानक मुहम्मदखां बंगासपर चढ़ाई कर दी और सन् १७२६ ईस्वीमें जहेपुरकी लड़ाईमें उसे भली-भांति परास्त कर जीते हुए राज्यको पुनः छीन लिया। सुख-स्वप्न देखनेवाले रणसिंहने अपनेको शत्रुओंसे घिरा हुआ जाना। जान जानेके भयसे बड़ी नीचतापूर्वक रणक्षेत्रसे पीठ दिखाकर भागा और दिल्लीराजसे मिली हुई "लड़ाईका शेर"की उपाधिको अक्षरशः सत्य बनाकर मुसलमानोंका मुख उज्ज्वल किया!

इस प्रकार सारा मालवा व बुन्देलखण्ड हिन्दुओंके हाथ पुनः आ गये। वृद्ध बुन्देले-सरदार क्षत्रसालने बड़ी धूमधामसे अपनी राजधानीमें प्रवेश किया। नगरनिवासी अपने बिछुड़े हुए सरदारके शुभागमनसे कृतकृत्य हुए और आन्तरिक हृदयसे उनका स्वागत किया। सारा नगर मरहठोंकी तोप-ध्वनिसे गूञ्ज उठा।

महाराज क्षत्रसाल मरहठोंके इतने कृतज्ञ हुए कि आनन्द-वश बाजीरावको अपना तृतीय पुत्र मानकर अपने राज्यके तीन खंड कर एक खंड बाजीरावको भेंट कर दिया। बुन्देलोंका यह अनुपम कार्य्य इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि मरहठोंके सिद्धान्त और आदर्श बहुत उच्च थे, जिनपर उनका निःस्वार्थ कार्य्य निर्भर था और यही कारण था कि बाजीरावके वंशजोंमें प्रान्तिक तथा व्यक्तिगत भेद-भाव लेश-मात्र न था, जिससे उस समयके सभी लोग अपनेको एक खून, एक जाति तथा एकही धर्म-सूत्रमें बंधा हुआ समझते थे और सबका हृदय हिन्दू-स्वतन्त्रता प्राप्त करने और एक सुविशाल हिन्दूसाम्राज्य स्थापित करनेके पवित्र भावोंसे भरा हुआ था।

तीसरे मुसलमान रणसिंह वाइसराय मुहम्मदखां बंगासके मालवा और बुन्देलखण्डसे भाग जानेपर मरहठे सारे देशके स्वामी बन गये। यह स्थान उनके लिये बड़ा ही उपयुक्त हुआ। यहींसे हिन्दू-स्वतन्त्रताकी लड़ाई ठाननेके उस विचारका निश्चय कर लिया, जो मुगलराज्यको दो भागोंमें बांटता है।

जिस समय मालवा और बुन्देलखण्डमें लड़ाई हो रही थी,

इस समय मरहठे गुजरात प्रान्तमें अच्छी सफलता प्राप्त कर रहे थे। सेनाधिपति पिलाजी गायकवाड़, कन्थाजी वान्दे और अन्तमें स्वयं चिम्माजी अप्पाने क्रमशः गुजरात-प्रान्तमें मुसलमानी सेनाओंको ऐसा नीचा दिखाया कि विवश होकर मुग़ल-वाइसरायने "चौथ" और "सरदेशमुखी" देनेकी शर्तपर संधि कर ली। परन्तु मुग़ल-बादशाह मरहठोंकी इस अहंकारपूर्ण विजयपर अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने सेनापति अभयसिंहको गुजरातसे मरहठोंको शीघ्र निकाल बाहर करनेकी आज्ञा देकर भेजा।

अभयसिंह, जयसिंहसे बिल्कुल प्रतिकूल प्रकृतिका पुरुष था। उसको उसकी आत्म-प्रतिष्ठा और आत्मिक स्वार्थने ऐसा अंधा बना दिया था कि वह किसी प्रकार हिंदू-स्वतंत्रताकी लड़ाईमें जान निछावर करनेवाले हिन्दुओंका पक्ष ग्रहण करने योग्य न रह गया था। यहांतक कि हिन्दू-आन्दोलनमें भाग न लेनेवाले हिन्दू भी उससे हजार अंशमें अच्छे गिने जाते थे। केवल महाराष्ट्र-मंडल ही हिन्दुओंकी एक अपूर्व संगठित शक्ति था जो हर प्रकारसे, हर जगह, हर समय भले कार्य्यमें कटिबद्ध रहता था और अच्छी सफलता प्राप्त कर हिन्दू-जाति तथा भारतवर्षके प्राचीन गौरवकी रक्षा कर रहा था।

जाति और धर्मका शत्रु, मुग़लोंका गुलाम, स्वार्थी, नीच, कुलघातक अभयसिंह मरहठोंसे लड़नेके लिये गुजरात गया। वहां मरहठोंकी अपूर्व शक्ति तथा वीरताको देख चकित हुआ और लड़ाईसे डरकर सुलह करनेके बहाने मरहठा सरदार पिला-

जी गायकवाड़को डाकोर नामक पवित्र स्थानपर बुलाया। धार्मिक स्थान होनेके कारण तथा क्षत्रियोंके वचनपर विश्वास कर शुद्ध-चित्त पिलाजीने वहां जानेमें कोई शंका न की। पर जैसा पिलाजी का अनुमान था वैसा न हुआ। उस नीच, कुल-कलंकी, स्वार्थपरायण, मुग़ल-गुलाम अभयसिंहने धोखा दिया और पिलाजीको मरवाकर भारतकी हिंदू-जातिकी उज्ज्वल कीर्त्तिमें धब्बा लगा दिया, अपनी नीचताका पूर्ण परिचय दिया। लेकिन शीघ्र ही उसे विदित हो गया कि मैं केवल एक खून करनेकाही अपराधी नहीं हूं, वरन् एक बड़ी भारी भूलका भी।

मरहठे ऐसे कायर न थे कि अपने एक सरदारकी मृत्युसे हताश होकर अपने उद्देश्यको अधूरा छोड़ देते या डरकर लड़ाई बन्द कर देते,क्योंकि लड़कपनहीसे युद्ध और मृत्यु उनकी क्रीड़ा थी—जान देना और जान लेना ही उनका परम कर्त्तव्य तथा एक महान गौरव था—और अतीत कालसे बराबर इसी परि-स्थितिमें पलते और बढ़ते आ रहे थे। ऐसे मरहठोंके किसी एक प्रमुख या सेनापतिको यदि धोखा देकर कोई मारकर उनकी जातिपर अपना प्रभाव जमाना चाहे या उनको अपने वशमें करना चाहे तो उसकी निरी मूर्खता है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि जिस प्रकार मालवा व बुन्देलखण्डवासियोंने महाराष्ट्र-मंडलको प्रार्थनापत्र भेजकर अपनी सहायताके लिये बुलाया था और उनके आनेपर उनका साथ दिया और उनके आन्दोलनके हृदयसे पक्षपाती बन गये, उसी

प्रकार गुजरातवासियोंने भी मरहठोंको बुलाया और उनके साथ मिल गये, सर्वदा सहानुभूति रक्खी और पक्षमें लड़ते रहे।

पिलाजीकी अन्याय-पूर्ण हत्याका समाचार सुनकर उस प्रान्तके कोल, भील, वगेरी और अन्यान्य जातियां अत्यन्त क्रोधित हुई। उनके अन्दर क्रोधकी अग्नि भड़क उठी, मुगलोंसे इस हत्याका बदला लेनेका भाव उनके हृदयमें भर आया, इसलिये मरहठे हर तरफसे टूट पड़े और गोलाबारी करके १७३२ ईस्वीमें बड़ौदा राज्यको लेकर ऐसा सुरक्षित कर लिया कि वह आजतक मरहठोंकी एक प्रसिद्ध राजधानी वर्त्तमान है।

लड़ाईमें अभयसिंहके पैर बिल्कुल उखड़ गये, वह अपने पाप और नीचताके कारण पवित्र धर्मिष्ठ मरहठोंका तनिक भी सामना न कर सका। उधर धामाजीने अभयसिंहकी राजधानी जोधपुरपर स्वयं चढ़ाई कर दी। यह सुन अभय सिंहका होश-हवाश उड़ गया, उसकी घबराहटका ठिकाना न रहा। अन्तमें विवश होकर लड़ाईसे मुंहमोड़ वह अपनी पैत्रिक राजधानी जोधपुरकी रक्षाके लिये शीघ्र लौटा। इधर धामाजी उसके लौटनेका समाचार सुनकर मुड़ा और अहमदाबादपर चढ़ाई करके उसको ले लिया और मुग़ल-सेना तथा उसके प्रतिनिधिको ऐसे चक्करमें डाल दिया, उसकी ऐसी परिस्थिति बना दी कि आकर अहमदाबादको मरहठोंसे लौटा लेनेकी बात कौन कहे, उनका पुनः गुजरातमें आना व्यर्थ था। इस प्रकार १७३५ ईस्वीमें, मुगल-राज्यका यह सूबा बिल्कुल चला गया और उनकी लहलहाती हुई आशालताका सत्यानास हो गया।

नवाँ अध्याय

हिन्द-महासागर की स्वाधीनता

भारतभूमिको स्वतन्त्र करनेके लिये मरहठे जिस समय दिल्लीके बादशाह मुगलराजसे लडाई छेड़े हुए थे, उसी समय भारत-महासागरको भी विदेशियोंसे स्वतन्त्र करनेके लिये प्रयत्नशील थे ; क्योंकि उन्हें अनुमान था कि मुसलमान स्थलके अधिपति होकर हिन्दूराज्यके जितने बाधक हो रहे हैं, वे यूरोपीय सौदागर भी भारत-महासागरके अधिकारी होकर उतनेही बाधक होंगे, जिनके जहाज इस समय व्यापारके लिये हिन्द-महासागरमें गमनागमन कर रहे हैं।

शिवाजी तथा उनके वंशज युरोपीय सौदागरोंकी कामना, आशा तथा लोभको सत्यानास करने और उनके कार्य्यको असफल बनानेमें किस प्रकार दत्तचित्त थे—इसका पूरा दिग्दर्शन प्रसिद्ध नेता रामचन्द्र पंथकी बनाई 'स्टेट-पौलिसी" नामक ग्रन्थके पढ़नेसे होता है, जिसे मरहठोंके मंत्रिमंडलने लोगोंको जानकारी बढ़ानेके लिये प्रख्यात कर रक्खा था।

शिवाजीसे जितना सम्भव हो सका, समयानुकूल अपनी वीरतासे समुद्रके किनारेकी रक्षा करते रहे। यहांतक कि उन्होंने केवल जलविभागकी स्वतन्त्रताके लिये एक अलग सेनाकी नींव

डाली और एक नवीन सुसज्जित दृढ़ सामुद्रिक दुर्ग बनवाया, जिससे लगभग सौवर्ष तक हिन्द-महासागरकी स्वतन्त्रताकी रक्षा कुशलपूर्वक होती रही।

मरहठोंके राजा राजारामके समयमें जब औरङ्गजेबने सारे दक्खिनी प्रान्तपर धावा किया और मरहठे उसका सामना करनेमें अयोग्य ठहरे; उस समय भी उन्हें जहांकहीं शत्रुओंसे सामना पड़ता गया, अलग अलग बड़ी शूरताके साथ लड़ते रहे। परन्तु मुगल-सेनाको समुद्रके किनारेसे भगानेका भार प्रधान-सेनापति कान्होजी सेंगर,गुजारस तथा अन्य मरहठे सैनिकोंके सिर पड़ा। वे अपने कर्त्तव्यको इस योग्यताके साथ सम्पादन करते रहे कि अङ्गरेज, पुर्तगीज,डच,सिडिकी और मुगलोंमें किसीका भी व्यक्तिगत अथवा संगठित रूपमें साहस न हुआ जो मरहठोंकी उन्नतिशील सामुद्रिक शक्तिको दबा सके। प्रसिद्ध-सेनापति कान्होजीने खाण्डेरी द्वीपको जो बम्बई बन्दरगाहसे केवल ६ मीलकी दूरीपर था, अङ्गरेजोंसे छीन लिया, जिससे अङ्गरेजोंकी बड़ी भारी हानि हुई और वे समझ गये कि यदि जंजीराके सिडीकी मुसलमानी शक्तिसे मरहठे-जेनरल स्वतन्त्र रहेंगे तो वे अवश्य हमारी शक्तिका नाश कर देंगे और साथ-ही-साथ पश्चिमी किनारेपरके पूर्ण शक्तिमान पुर्तगीज सौदागरोंका भी सत्यानास करेंगे।

अपनी शक्तिको शत्रुओंसे सुरक्षित रखनेके लिये कान्होजी सेंगरको एक बड़ी सेना रखनेके लिये बाध्य होना पड़ा, जिसके खर्चकी पूर्त्तिके लिये अरबसागरके व्यापारियोंके जहाजपर "चौथ" लगा दी गयी।

मरहठोंका हिन्द-महासागरपर आधिपत्य करनेका तथा उनपर चलनेवाले जहाजोंपर "चौथ" लगानेका विचार उचित ही नहीं, बल्कि यथार्थ था; लेकिन अंगरेज तथा अन्य विदेशी सौदागरोंने उनके इस अधिकारका पूर्ण विरोध किया, जिससे कान्होंजीने विवश होकर उन्हें दण्ड देनेके लिये उनके सामान-सहित जहाजोंको नौकरोंके साथ रोक रक्खा, जबतक कि वे "चौथ" देकर उन्हें छुड़ा न ले जायं।

सन् १७७५ ईस्वीमें चार्ल्स वोन जब बम्बईका गवर्नर नियुक्त होकर आया तो उसने संगरके सामुद्रिक किलेका सत्यानास करनेकी प्रतिज्ञा की। उसे अपनी वीरताका पूर्ण अभिमान था और सर्वदा डींग मारा करता था। उसने एक बड़ी सेना दुर्गके विजय करनेके लिये निर्माण की, जिसमें चुनेचुनाये वीरगण भरती किये गये, जिसके मुखियोंका नाम क्रमशः "हन्टर" अर्थात् शिकारी, "हौक" अर्थात बाज, "रिवेञ्ज" अर्थात् बदला लेनेवाला और "भिक्ट्री" अर्थात् विजय था। इन लोगोंका एक संगठित पैदल दल था जो मरहठोंके सामुद्रिक किलेके नाश करनेवालोंका सहायक था।

इस प्रकार चार्ल्स वोनने अपनी जातिके महान् गौरवको दिखानेके लिये एक शक्तिशाली सेनाके साथ मरहठोंके सुदृढ़ किलेपर एक ओरसे धावा कर दिया और शीघ्र ही दूसरी ओरसे उपर्युक्त विशेष नामधारी पैदलदलने स्थलकी ओरसे धावा मारा और १७१७ ईस्वीके १७ अप्रैलको क्रोधित अङ्गरेजी

सेनाने मरहठोंके विजयदुर्गपर गोलाबारी करना प्रारम्भ किया। लेकिन उनकी लहलहाती आशालतापर शीघ्र तुषार पड़ गया। उन्हें विदित हो गया कि यह किला मोमका बना हुआ नहीं है जो हमारे गोलोंकी गरमीसे शीघ्र पिघल जायगा, बल्कि यह विशाल किला दृढ़ तथा सर्व प्रकार सुरक्षित बनाया गया है, जिसके चारों ओर तोपखाना लगा हुआ है और जंगी जहाज भी तोपके साथ समुद्रमें बड़ी सजधजके साथ खड़ा है। इसपर भी वीर अङ्गरेज सैनिकोंने किलेकी दीवालको पार करनेके लिये अनेकों प्रयत्न किये, पर दीवालसे लगी हुई तोपोंने उनके सारे प्रयत्नोंको निष्फल कर दिया। इस प्रकार अपनी हार होते देख गोरे बहादुर अत्यन्त क्रोधित हो उठे और जी खोल लड़े। पर वाहरे मरहठे वीर! उनकी सारी आशाओंको धूलमें मिलाकर उन्हें पीछे हटा दिया। जब मरहठोंने देखा कि प्रसिद्ध नामधारी गोरे पैदल सिपाहियोंके पांव रणक्षेत्रसे विचलित हुए, तब अपनी सारी शक्तियोंको लगाकर अन्धाधुन्ध गोले बरसाने लगे, जिससे अङ्गरेज-सिपाहियोंने जितनी शीघ्रतासे किलेपर आक्रमण किया था उससे अधिक शीघ्रता भागनेमें की अर्थात् रणसे पीठ दिखाकर अपने विशेष नामपर धब्बा लगाया तथा मरहठोंकी वीरताका ज्वलन्त उदाहरण संसारके सामने रख दिया।

दूसरे साल प्रसिद्ध गवर्नर वोनने पुनः पूरी तैय्यारीके साथ खाण्डेरी द्वीपपर आक्रमण किया, पर वहां भी उन्हें मरहठोंसे पराजित होकर भागना पड़ा। इस प्रकार मरहठोंकी वीरताने

उन्हें ऐसा नीचा दिखाया कि उनके हृदयमें डर समा गया, जिससे गवर्नरने इङ्गलेण्डके राजाको पत्रद्वारा एक पूर्ण जहाजी बेड़ा तैय्यार करनेके लिये विवश किया।

वोनके कथनानुसार इङ्गलेण्डके राजाने एक बड़ा भारी जहाजी बेड़ा, जिसके साथ चार अन्य जंगी जहाज थे, प्रसिद्ध सेनापति "कोमोडोर मैथ्यू" की अध्यक्षतामें रवाना किया और साथ ही साथ मरहठोंपर विजय पानेके लिये पुर्तगीजोंको भी युद्धके लिये निमन्त्रित किया। इस सुअवसरको पाकर पुर्तगीज भी बड़ी प्रसन्नताके साथ मरहठोंके विपक्ष लड़ाई करनेके लिये चल पड़े।

सन् १७२७ ईस्वीमें मरहठोंको इस युरोपकी मिश्रित शक्तियोंसे सामना करनेके लिये उठना पड़ा और इस बुद्धिमानी और वीरताके साथ लड़े कि युरोपीय शक्तियोंको मरहठोंके किलेकी दिवाल तक पार करना असम्भव हो गया।

यह देख सेनापति कोमोडोर मैथ्यू क्रोधसे आगबबूला हो गया और अपनी सेनाको उत्साहित करता हुआ स्वयं सबसे आगे बढ़कर किलेपर आक्रमण करनेके लिये दौड़ा। उसी समय एक मरहठे सिपाहीने दौड़कर अपनी सङ्गीन उसकी जांघमें घुसेड़ दी, पर धीर कोमोडोर इस आघातसे तनिक भी भयभीत न हुआ, वरन् उसने बड़ी शीघ्रतासे उस सिपाहीका पीछा किया और क्रमशः पिस्तौलके दो फायर सिपाहीपर किये, लेकिन क्रोध और शीघ्रतामें पिस्तौल भरना भूल गया था जिससे दोनों फायर निरर्थक हुए।

इधर पुर्तगीज सेनाकी भी वही दशा हुई जो अङ्गरेजी फौज की हो रही थी। अन्तमें पुर्तगीज जान हथेलीपर रख, जी तोड़ कोशिश करके किलेके पास पहुंच गये और सीढ़ीके सहारे दीवालपर चढ़नेका प्रयत्न करने लगे। इस समय मरहठोंने बड़ी बुद्धिमानीसे इनका सामना किया अर्थात् ये अपनेको शत्रुओंसे भयभीत जताते हुए पीछे हटने लगे, यह देख पुर्तगीजोंका साहस बढ़ने लगा और आशाका सञ्चार हृदयमें होने लगा।

जिस समय पुर्तगीज उत्साहित होकर आगे बढ़ रहे थे और मरहठे कांपते हुए पीछे खिसकते जाते थे, उसी समय मरहठोंकी एक संगठित रिजर्भ सेना अचानक पीछेसे आकर पुर्तगीजोंकी बाहरी सेनापर टूट पड़ी, जिससे वे भयभीत हो अपनी जान लेकर भागने लगे और तत्काल अङ्गरेजी सेनाने भी उनका साथ दिया—अर्थात् दोनों छिन्न-भिन्न होकर भाग गये। मरहठोंको उनका बहुत-सा लड़ाईका सामान हाथ लगा जिससे विजयका डङ्का बजने लगा और मरहठे इस सफलतासे अत्यन्त आनंदित हुए। उधर मित्र-सेनाओंके हृदयमें जो कुछ लड़ाईकी इच्छा शेष रह गई थी, उसकी पूर्णाहुतिके लिये आपसमें दोनों वाग्-युद्ध करने लग गईं अर्थात् तातकालिक लड़ाईकी हार तथा भारी हानिकी जवाबदेही एक दूसरेके मत्थे मढ़ने लगीं और इस प्रकार द्वन्द्वयुद्ध करती हुई अपना-सा मुंह लेकर अपनी अपनी राह लगीं। पुर्तगीजोंने चाऊलका रास्ता लिया और अङ्गरेजोंने बम्बईके लिये अपने जहाजपर पाल चढ़ाया।

इस लड़ाईके पश्चात् बहुत दिनतक अङ्गरेज सौदागर अपने सौदागरीके जहाजके साथ एक जंगी जहाज भी लेकर आते रहे, क्योंकि उन्हें इस बातका भय था कि कदाचित् मरहठे उन्हें "चौथ" के लिये न पकड़ लें। अन्तमें ऐसा हो ही गया अर्थात् कुछ दिनोंके बाद अङ्गरेज़ोंके विजय और बदला लेनेवाले नामी जहाजको मरहठोंने पकड़कर रोक रक्खा।

सन् १७२४ ईस्वीमें डचोंको भी जाना पड़ा और उन्होंने पूरी तैय्यारीके साथ अर्थात् सात मानवर, दो बम मारनेवाले जहाज और एक अच्छी सेना लेकर मरहठोंके विजय-दुर्गपर आक्रमण कर दिया। परन्तु इतनी तैयारी करनेपर भी मरहठोंके साहस तथा वीरतापर किसी प्रकारका धब्बा लगानेमें असफल हुए और अब वृद्ध मरहठा जलसेनापति हिन्द्-महासागरमें स्वच्छन्द घूमने लगे। इस बड़ी भारी सफलता प्राप्त करनेके साथ साथ मरहठे कोंकनमें मुसलिम सीड़ीसे, हैदराबादमें निजामसे, गुजरात, मालवा और बुन्देलखण्डमें मुगलोंसे लड़ते रहे।

दशवां अध्याय
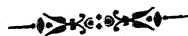
नादिरशाह और बाजीराव

जिस प्रकार मरहठोंकी सेना कोकनमें अच्छी सफलता प्राप्त कर रही थी, वैसे ही अन्य स्थानोंकी भी दशा थी। बाजीरावने मालवा, गुजरात और बुन्देलखन्डको विजय कर हिन्दू-राज्यकी सीमा चम्बलतक पहुंचा दी। किन्तु इतना करके ही वह सर्वदाके लिये स्थिर न हो गया, क्योंकि उसे एक महान हिन्दू-राज्य स्थापित करना था, जिसके अन्दर सारा भारतवर्ष सम्मिलित हो सके और हिन्दुओंके सारे देवमन्दिर स्वतंत्र हो जांय, जिससे वे हिन्दूधर्मके शत्रुओं और नास्तिकोंके स्पर्शसे अपवित्र न हों। इसलिये उसका यह कर्त्तव्य कोकनसे परशुरामके पवित्र मंदिरके स्वतंत्र करनेहीतक परिमित न रहा, क्योंकि काशी, गया, मथुरा अब भी इन विधर्मियोंके शासनसे पीड़ित थे। बाजीराव और दूसरे मरहठे सरदार भी अपने ध्येयकी पूर्तिके लिये अविश्रान्त प्रयत्न कर रहे थे और उन पवित्र स्थानोंको पुरन्धर और नासिककी भांति स्वतंत्र कर देना चाहते थे। कोकनमें जल और स्थलकी लड़ाई लड़ते हुये भी मरहठोंको किसी भयंकर आपत्तिकी सम्भावना भयभीत नहीं कर सकती थी। अतएव बाजीरावने मुगल-सम्राटको धमकी दी कि यदि मेरी अन्य मांगोंके साथ-ही-साथ काशी, गया, मथुरा और अन्य

पुण्यक्षेत्र न मिले, तो मैं दिल्लीपर चढ़ाई कर दूंगा। इस भयने दिल्लीकी यवन-सेनाको अपनी सारी शक्तियां एकत्र करनेपर विवश किया और बाईस सेनाध्यक्ष इन हिन्दू-बलवाइयोंका सामना करनेको भेजे गये। परंतु जब किसी प्रकार भी वे मर हठोंपर सफलता न प्राप्त कर सके तो अपने हृदयको शान्त करनेके लिये उन्होंने एक बनावटी विजय-समाचार मुगल-बाद-शाहको लिख भेजा; जिसमें लिखा था, कि बाजीराव एक बड़े युद्धमें जैसा पहले कभी नहीं हुआ था, पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया और मरहठे ऐसो बुरी तरह पराजित हुये कि अब वे उत्तर भारतवर्षमें कभी न देख पड़ेंगे। इस आनंद-समाचारको पाकर मुगल-बादशाहने असभ्यताके साथ मरहठा-राजदूतको दिल्लीसे निकलवा दिया और इस बड़ी विजयके उपलक्षमें शान-दार उत्सव करनेकी आज्ञा दी।

दिल्लीके इन बनावटी कार्य्योंका समाचार पाते ही बाजी-रावके चेहरेपर क्रोधकी हंसी आई। उसने अपने मनमें कहा, अच्छा मैं अपनी सेनाको दिल्लीके किलेकी दीवालतक ले जाऊंगा और मुगलसम्राटको दिन-दहाड़े शक्तिका परिचय दूंगा। उसने अपना प्रण पूरा किया और संताजी यादव, तुकोजी हुलकर और शिवाजी तथा यशवन्तराव पवारको साथ लेकर शीघ्र ही दिल्लीके फाटकपर चढ़ाई कर दी। मुगल-बादशाह बेखटके अपनी शाही फौजसे एकके बाद एक सेना भेजने लगा, लेकिन प्रत्येकको पराजित होना पड़ा। अब तो उसे अपनी जानकी पड़ी, और मर-

हठोंके सत्यानासके बनावटी स्वप्न देखनेकी मूर्खताका फल भोगना पड़ा। यह पहला ही मौका था जब मरहठा-शक्तिने खुल्लमखुल्ला दिल्लीके दरवाजेपर धक्का देकर उसे हिला दिया। निजामको मरहठोंकी उत्तर भारतवर्षकी यह विशाल उन्नति असह्य हो गई और वह ३४००० सिपाही और एक बड़े तोपखानेके साथ सिराजके लिये रवाना हुआ। राजपूतोंने भी मरहठोंके विरुद्ध निजामको ही सहायता देना उचित समझा। परन्तु शीघ्र ही बाजीराव उन्हें रौंदता हुआ आ पहुंचा और मरहठा सेनापतिकी प्रवीणता, युद्धकुशलता और वीरताने निजामको फौरन बतला दिया कि मरहठोंसे लोहा लेना एक टेढ़ी खीर है। मरहठोंके लगातार चढ़ाई और पीछा करनेसे विवश होकर वह भूपालके किलेकी दीवालके अन्दर छिप गया और वहींसे अपनी तितर-बितर सेनाको एकत्र करके फिर आक्रमण करनेका प्रयत्न करने लगा। लेकिन मरहठी सेना मुसलमानी और राजपूती फ़ौज़ोंकी अपेक्षा अधिक सुसज्जित थी। उन्होंने निज़ामी सेनाको घेर लिया और वह भूखों मरने लगी। नामी-गरामी मुसलमान जेनरलसे कुछ करते न बन पड़ा। आखिरकार बाजीरावकी शर्त मानकर उसने सन्धि कर ली।

ठीक इसी समय मुसलमानोंका एक दूसरा षड्यंत्र फलित हुआ। नादिरशाह सिन्ध-नदी पार कर आ पहुंचा, जिससे मुसलमानोंके हृदयमें अपने मरते हुए बादशाहको फिरसे ज़िन्दा करनेकी आशा बलवती हो गई।

निज़ाम तथा अन्य मुसलमान सरदारोंने जो औरङ्गजेबकी नीतिमें पालित और शिक्षित हुये थे, नादिरशाहके साथ इस आशापर भाई-चारेका नाता जोड़ लिया कि कम-से-कम वह उस कार्यको पूरा करेगा जिसे भीरु मुगल न कर सके और महा-राष्ट्र-मण्डलके हिन्दुओंकी बढ़ती हुई शक्तिको सत्यानास करके मुसलमानी बादशाहतको एक बार फिर उसके गौरव और वैभव-की चोटीपर पहुंचा देगा। यदि बाजीराव हिन्दू-सेना लेकर इस भयानक विदेशीको रोकनेके लिये निर्भयतापूर्वक कटिबद्ध न हुआ होता, तो ऐसा होनेमें कुछ सन्देह भी न था।

दबने या भयभीत होनेके बदले बाजीरावकी अभिलाषा जातिके इस बड़े संकटापन्न समयपर और भी उच्च हो गयी। नादिरशाहके आनेपर उसे एक बहुत उत्तम अवसर दिखाई देने लगा। वह सोचने लगा कि जो हिन्दू-इतिहास सौ वर्षमें पूरा होता, वह केवल एक वर्षमें हो जायगा। उसके योग्य राजदूत उत्तर भारतके भिन्न भिन्न राजदरबारोंमें बड़ी चतुरता और उत्साहके साथ कार्य कर रहे थे और सेनापति रणक्षेत्रोंमें ख्याति प्राप्त कर रहे थे। जिस प्रकार योवारस, सिन्डीज,गुजरस, ऐङ्ग-रस और दूसरे मरहठा-जनरलोंने युद्धविद्यामें नाम और सफलता प्राप्त की थी, वैसे ही त्र्यांम्बकोजी राव, विश्वासराव, दादाजी, गोविन्दनारायन, सदाशिव, बालाजी, बाबूरङ्ग मल्हार और महा देव भट्ट हिनजे राजनैतिक विषयोंके पण्डित समझे जाते थे और उतनी ही सफलता उन लोगोंने भी प्राप्त की थी।

वास्तवमें ये महाराष्ट्र-राजनीति-विशारद पुरुष ही हैं जिन्होंने इस हिन्दू-आन्दोलनके उच्च आदर्श और राजनैतिक सिद्धान्तको उचित रीतिसे स्थिर रक्खा और अत्यन्त योग्यतापूर्वक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करते रहे जिससे मरहठे-सैनिक सफलतापूर्वक कार्य करनेमें अग्रसर हो सकते थे। इन राजनीतिज्ञ पुरुषोंके पत्र-व्यवहार अब छपे हुये मिलते हैं, जिन्हें पढ़कर पाठक यह सोचे बिना नहीं रह सकते कि उनके विस्मय-जनक प्रभावशाली प्रयत्न केवल एक और एक ही आशा तथा उद्देश्यसे थे, कि एक दृढ़ हिन्दू-राज्य स्थापित हो, जो हिन्दू-जातिकी राजनैतिक स्वतंत्रताका रक्षक और पोषक हो। मरहठोंकी इसी स्कीमको नष्ट करनेके लिये औरङ्गजेबी शिक्षाप्राप्त मुसलमान-राजनीतिज्ञोंने नादिरशाहको बुलाया, क्योंकि वह भी मरहठोंके उत्कर्षको नहीं देख सकता था और प्रत्यक्ष तथा गुप्त रीतिसे उसे सहायता भी देते रहे जिससे वह मरहठोंके कुचलनेमें समर्थ हो सके। लेकिन नादिरशाहको फ़ौरन ही मालूम हो गया कि मुझे सन् १७३९ ई० में जिस हिन्दू-शक्तिका सामना करना है, वह उससे बिल्कुल ही भिन्न है जिसका सामना सन् ११२० और सन् ११२४ के बीच मुहम्मद ग़ज़नीको करना पड़ा था।

कूटनीति, राजनीति, देशभक्तिका उत्साह तथा सैनिक और संगठन-शक्तिके साथ-ही-साथ मरहठोंमें आत्म-बलिदानका सर्वोच्च भाव मौजूद था। पर आत्म-बलिदान तथा इसी प्रकार-

की अन्य चतुराइयाँ केवल उस अवस्थामें की जाती थीं जब यह विश्वास हो जाता था कि ऐसे बलिदानसे मरहठोंकी अपेक्षा शत्रुओंहीको अधिक हानि होगी। हिन्दू जबसे अपनी मातृभूमि, अपने धर्म और जातिके नामपर उठे तबसे उन्होंने हर प्रकार अपनेको मुसलमानोंसे श्रेष्ठ सिद्ध कर दिया। उनका दृढ़ विश्वास था कि इन लड़ाइयोंसे हम भगवान् राम और कृष्णकी इच्छाओंको पूर्ण कर रहे हैं। वे नादिरशाहसे नहीं डरते थे, क्योंकि जानते थे कि यह ईश्वर नहीं है और सारे संसारका सत्यानास नहीं कर सकता। यह भी इन लोगोंसे छिपा न था कि किसीको अपनेसे अधिक शक्तिशाली जान लेनेपर वह अवश्य सन्धि कर लेगा; क्योंकि बलकी परीक्षा हो जानेपर ही मित्रताकी बात आरम्भ हो सकती है। शान्ति सर्वदा युद्धके पश्चात् ही होती है। इसलिये वे मरहठी सेनाको आगे बढ़ाते गये। यदि केवल राजपूत और दूसरे हिन्दू-राजा बाजीरावके अधिकारमें साहसके साथ सामना करें तो बड़े बड़े कार्य सम्पादन हो सकते हैं। निजामकी सहायता पा जानेपर नादिरशाह लौट जानेवाला पुरुष नहीं है, बल्कि वह सीधे हिन्दू-राज्योंपर चढ़ाई कर देगा। इसीलिये सब हिन्दू-राजे महाराजोंको साथ लिये सवाई जैसिंह बड़ी उत्सुकतासे बाजी-रावके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि उन्हींकी संरक्षतामें मरहठे और हिन्दू सीधे दिल्लीपर चढ़ाई करें और मुसलमान-बादशाहको गद्दीसे उतारकर महाराना उदयपुरको वहांके राज-

सिंहासनपर बिठावें। इन्हीं शब्दोंमें सवाई जैसिंहने मरहठा राजदूत और प्रवीण राजनीतिज्ञोंको लिखा।

बसोनकी चढ़ाई अभीतक जारी थी। मरहठी सेना करनाटकसे लेकर कटक और इलाहाबादतक हमला कर रही थी। लेकिन बाजीराव एक क्षण भी न हिचका और उन बड़ी आशाओंको जिन्हें उसके प्रतिनिधि उत्तर भारतके हिन्दुओंके हृदयमें उत्पन्न किये थे तथा उस बड़े उत्तरदायित्वके भारको जिसे मरहठोंने अपने ऊपर लिया था, निष्फल न जाने दिया। जब बाजीरावके कुछ साथी भिन्न भिन्न प्रकारकी रायें प्रकट करने लगे तो उसने उच्च आवाज़से कहा, ऐ! शूरवीरो, शंकामें पड़कर क्या सोच रहे हो? संगठित हो। आगे बढ़ो। हिन्दू-पाद्-पाद्शाहीका दिन बहुत क़रीब है। मैं अपनी सेना नर्मदासे चम्बल पर्य्यन्त फैला दूंगा और तब देखूंगा कि किस तरह नादिरशाह दक्षिणकी तरफ़ बढ़नेका साहस करता है। इसी बदला लेनेवाली हठी मरहठी प्रवृत्तिने परशियन विजयीकी हिन्दुओंके नाश करनेवाली इच्छाको दबा दिया और वह शान्त होकर मर गई।

नादिरशाहने इन शब्दोंमें एक लम्बा और हास्यास्पद पत्र बाजीरावको लिखकर चतुरतापूर्वक वापस लौट गया कि "मुसलमान-धर्मके एक अनुयायीकी हैसियतसे मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि दिल्लीके मुग़ल-बादशाहोंकी आज्ञा मानो, अन्यथा बलवाइयोंकी तरह दण्ड मिलेगा।" यह पत्र रद्दी-खातेमें डाल दिया

गया और महाराज शाहूजीने खुले शब्दोंमें १४ जून सन् १७३६ ई० को शाही दरबारमें घोषित किया कि मरहठोंके डरसे नादिरशाह देश छोड़कर भाग गया।

नादिरशाहके इस प्रकार भाग जानेके कारण निज़ाम विपत्ति-सागरमें डूब गया। नादिरशाहके साथ हिन्दुओंके विरुद्ध भाग लेने और भूपालकी सन्धिकी शर्त्तोंको पूरा करनेमें हीला-हवाला करनेका यथेष्ट दण्ड देनेके लिये मरहठे दिल्लीकी तरफ़ बढ़े।

ठीक उसी समय उनका सबसे बड़ा अधिनायक बाजीराव २२ वीं अप्रैल सन् १७४० ई० को इस असार संसारसे नाता तोड़ चल बसा। कोई भी दूसरा व्यक्ति हिन्दू-सम्प्रदायकी स्वतंत्रताके लिये बाजीरावसे अधिक सच्चाई और सफलताके साथ प्रयत्न न कर सका। जब वह केवल लड़का था, तभी उसने अपनी जाति और धर्मके विपक्षियोंके विरुद्ध तलवार उठायी और मरते दम उसे बन्द न किया। हिन्दू-धर्मके शत्रुओंका सामना करनेके लिये सेना ले जाते समय खीमेमें उसकी मृत्यु हुई। सभी बड़ी बड़ी दुष्कर चढ़ाइयोंमें जो उसने रुहेला, मुग़ल और पुर्तगीजोंपर की थी, कभी हार नहीं खाई। हिन्दू-पाद-पादशाहीके आदर्शको प्राप्त करनेके लिये उसने जो अमानुषिक परिश्रम किया था वही उसकी अकाल मृत्युका कारण हुआ और नादिरशाहकी दर्जनों चढ़ाइयोंसे जितना धक्का हिन्दू-धर्मके आन्दोलनमें न लगता, इस एक असामयिक मृत्युके कारण, उससे कहीं अधिक लगा।

ग्यारहवाँ अध्याय

नाना तथा भाऊ

बाजीराव मर गया। लेकिन जो उत्साह वह लोगोंके हृदयमें भर गया था, वह न मरा। इससे आगे वे और भी दृढ़ होते गये। बाजीरावके पुत्र बालाजी उपनाम नानासाहब और चिमाजीके पुत्र भाऊसाहबकी अध्यक्षतामें मरहठे अधिक सफलता प्राप्त करनेका प्रयत्न करने लगे। बालाजीकी अवस्था केवल १६ ही वर्षकी थी, तो भी उसने अपने पिताके समयमें ही युद्ध-क्षेत्र देखा था। उसने लोगोंको दिखला दिया कि नेता होनेके सारे गुण उसमें वर्तमान हैं। शाहूजी सदैव उसके गुणोंकी प्रशंसा किया करता था और बाजीरावके मर जानेपर बालाजीको मंत्री बनानेमें उसने तनिक भी आगा-पीछा न किया। उसके मंत्री नियुक्त हो जानेपर एक बड़ा ही शानदार उत्सव किया गया। उत्सव समाप्त होनेपर महाराज शाहूजीने इस नवयुवकको बाजीरावकी शिक्षा देते हुये एक पत्र अर्पण किया, जिसमें उत्साह-वर्धक शब्दोंद्वारा मरहठोंके उन उद्देश्योंको बतलाया, जिसके लिये वे इस बड़े आन्दोलनमें बलिदान हो रहे थे। उसने लिखा कि तुम्हारे पिता बड़ी सच्चाईके

साथ अपने कार्यका प्रतिपादन करते रहे और उन्हें बड़ी सफलता प्राप्त हुई। उनकी इच्छा थी कि हिन्दू-शासन हिन्दुस्तानकी सीमाके बाहरतक फैले। अपने पिताके सुयोग्य पुत्र हो, तुम्हें उसके आदर्शकी तरफ़ ध्यान दे उसे पूर्ण करना चाहिये, जो उसकी हार्दिक अभिलाषा थी। अपने घुड़सवारोंको अटकके पार ले जाओ।

शिवाजीद्वारा आरम्भ किये कार्यको सफल बनानेके प्रयत्नमें राजाज्ञा माननेवाले नाना और भाऊसाहबको प्राणतक दे देना स्वीकार था। अतएव ऐसा करनेके लिये किसी उपदेशकी आवश्यकता न थी। उनका एकमात्र उद्देश्य हिन्दू-पाद्-पाद्शाही स्थापित करना ही था जिसके लिये अपना सर्वस्व निछावर करनेमें भी उन्हें किञ्चित्मात्र हिचकिचाहट न हुई। शाहूजीने अपने कारागारके दिन दिल्लीमें बिताये थे। उस समय शाही परिवारके लोग कभी कभी उसपर कृपादृष्टि डाल देते रहे, इसी कारण वह मुगल-दरबारकी चापलूसी किया करते थे जिसे ये लोग घृणाकी दृष्टिसे देखते थे।

मंत्रित्व ग्रहण करते ही शाहूजीने बालाजीको पूना जाकर दक्खिनपर चढ़ाई करनेके लिये राघोजी भोंसलेको भेजनेको आज्ञा दी। शाहूजीके लौटनेपर मरहठोंमें गृह-कलह आरंभ हो गया, जिससे लाभ उठाकर सैदातउल्ला जनरलकी अधीनतामें प्रायद्वीपके सारे दक्खिन-पूर्वी भागको जीतकर मुसलमानोंने मुसलमानी-राज्यमें मिला लिया और तंजोरके छोटे

मरहठा-राज्यको दबाने लगे। तंजौरके महाराज प्रतापसिंहने शाहूजीसे सहायता मांगी। सैदातउल्ला सन १७३२ ई० में मर गया और उसका भतीजा दोस्तमुहम्मद आरकाटका नवाब हुआ। यह एक शक्तिशाली सरदार और मरहठोंका कट्टर शत्रु था। १६ मई सन् १७४० ई० को मरहठोंने तंग पहाड़ी रास्तेको पार कर दोस्तमुहम्मदकी सेनापर दक्खिन तरफ़ बढ़कर पीछे और बगलसे हमला किया। थोड़ी ही देरकी लड़ाईमें मुसलमानी फ़ौज नष्ट हो गई और दोस्तमुहम्मद मारा गया। मुसलमानी-राज्यके अन्यायसे पीड़ित हिन्दू अपने सहधर्मियोंकी विजयसे बड़े प्रसन्न हुये और मरहठोंसे पूर्ण सहानुभूति दिखलाई। राघोजी आरकट शहरमें घूमकर लड़ाईके व्ययका चन्दा वसूल करने लगा। सफ़दरअली और चांदासाहब जो क्रमशः दोस्तमुहम्मदके बेटे और दामाद थे, बिलौर और ट्रिचनापलीमें बड़ी-बड़ी फ़ौज़ लिये पड़े थे। राघोजीने आरकट छोड़नेका विचार किया, क्योंकि इस युद्धमें मरहठोंको आर्थिक हानि उठानी पड़ी थी। वह सचमुच ट्रिचनापलीसे ८० मील हट आया। चन्दासाहब जो एक बड़ा कार्य्यकुशल और चतुर पुरुष था अपनी तैयार की हुई स्कीमपर इतना उत्साहित हो गया कि उसने १० हज़ार आदमियोंकी फ़ौज़ लेकर हिन्दुओंके तीर्थस्थान मदूरापर चढ़ाई कर दी। हिन्दू-सेनापति मुसलमानोंको इस तरह फन्देमें फंसा देख लौट पड़े और ट्रिचनापलीमें तेजीके साथ जा पहुंचे। बड़ा साहबने जो अत्याचारी, हिन्दुओंसे

बदला लेनेके लिये उनके तीर्थस्थान-मदूरा भेजा गया था, जल्दी करके अपने भाईको सहायता पहुंचानी चाही। पर राघोजीने अपनी सेनाका एक भाग भेजकर उसे बीचहीमें रोक लिया और एक बड़ी ही भीषण लड़ाई हुई, जिसमें बड़ा साहब मरकर अपने हाथीसे गिर पड़ा। मुसलमानोंकी पूर्ण हार हुई और उनके सरदारकी लाश राघोजीके खेमेंपर लाई गई, जहां उसे कीमती कपड़ेमें कफनाकर राघोजीने उसके भाईके पास भिजवा दी। त्रिचनापलीका घेरा १ महीने तक जारी रहा और मुसलमानोंके अत्यन्त वीरतापूर्वक रक्षा करते रहनेपर भी अन्तमें घृणा दृष्टिसे देखे जानेवाले हिन्दुओंसे पराजित होना पड़ा। चन्दा साहब कैद कर लिया गया और राघोजीने उसे सितारा भेजनेके बाद मुरारराव घोर पाड़ेको १४ सहस्र सेनाके साथ त्रिचनापलीका प्रबन्ध करनेके लिये छोड़ दिया। सफ़दर-अलीने पहले ही मरहठोंके सामने हथियार रख दिया था और उन्होंने इस शर्तपर कि वह एक करोड़ रुपया मरहठोंको दे और उसके बापने, सन् १७३६ से जिन हिन्दू-राजाओंको गद्दीसे उतार दिया था, उन्हें फिरसे राजा बनावे, उसे आरकाटका नवाब बनाना स्वीकार किया।

जिस समय राघोजी दक्खिनमें ऐसी सफलता प्राप्त कर रहा था, उन्हीं दिनों बंगाल, विहार और उड़ीसाके शासक अलीवर्दीखांसे उसके गवरमेंटकी मुठभेड़ प्रारम्भ हो गई थी। मीर हबीब एक दूसरे मुसलिम सरदारने अलीवर्दीखांके खिलाफ मरहठोंसे

सहायता मांगी और भास्कर पन्त कोल्हाटकर राघोजीके दीवानने जो बंगालकी मुसलमानी शक्तिको नीचा दिखानेके सु-अवसरकी ताकमें था और चाहता था कि हिन्दूराज्यकी सीमा पूर्वमें दूरतक बढ़ाई जाय, इस निमंत्रणको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया। १० हजार मरहठी घुड़सवार सेना मुसलिम प्रतिष्ठाको धूलमें मिलाती हुई विहार पार करके बंगालमें जा पहुंची। अलीवर्दीखांने, जो किसी प्रकार भी निकृष्ट नेता नहीं था, ज्योंही उन लोगोंपर चढ़ाई की, मरहठोंने उसे बड़ी बुरी स्थितिमें डाल दिया। उसकी रसद बन्द कर दी और फौजको छिन्नभिन्न करके वापस लौट जानेको विवश किया। मीरहबीब अलीने भास्कर पन्तसे प्रार्थना की कि आप अपने विचार बदल दें, बरसातभर बङ्गालमें रहें और लड़ाईका खर्चा चन्दा लगाकर शत्रुओंसे वसूल करें।

इसके बाद मरहठे मुर्शिदाबादपर चढ़ दौड़े और हुगली, मिदनापुर, राजमहल यानी मुर्शिदाबादका छोड़ करीब २ बङ्गालके सभी जिलोंपर जो गंगाके पश्चिममें थे अधिकार कर लिया। मरहठोंने बङ्गालमें विधर्मियोंको नीचा दिखाया और हिन्दू-कार्यमें सफलता प्राप्त की। इसलिये धूमधामके साथ कालीकी पूजा करना निश्चित किया गया। ठीक उसी समय अलवर्दीखांने हुगली नदीको पार कर एकाएक मरहठोंपर चढ़ाई कर दी और बङ्गालकी सामातक उनका पीछा किया। पर यह केवल थोड़े समयके लिये ही था, क्योंकि राघोजी शीघ्र ही लौट आया।

बालाजी भी एक दूसरी मरहठी सेनाका सेनापति होकर विहारमें घुसा। देखनेके लिये तो वह शाही जेनरलकी हैसियतसे आया था, पर उसका वास्तविक उद्देश्य अपने लिये कर लगाना तथा राघोजी भोंसलेके साथ अपना हिसाब-किताब ते करना था। राघोजी और बालाजीमें समझौता होते ही बालाजी हट गया और भास्कर पन्तने युद्धकी क्षतिपूर्ति और चौथ मांगी। अलीवर्दीखांने अपनेको उसके साथ लड़नेमें असमर्थ समझा और एक नई मक्कारीकी युक्ति सोच निकाली। उसने हरजानेके प्रश्नपर विचार करनेके लिये एक मिहमान और राजदूतकी तरह भास्कर पन्तको अपने खेमेमें बुला भेजा। "काफ़िरको मारो" शब्द संकेत-नियत था और अलीवर्दीखांके मुंहसे ये शब्द निकलतेही लोगोंने हमला किया और भास्कर पन्त मार डाला गया। उस भयानक दिन राघोजी गायकवाड़को छोड़ लगभग सभी मरहठे मारे गये और राघोजी मरहठोंकी घबड़ाई सेनाको लेकर शत्रुराज्य-से भाग गया। किन्तु विजयानन्दमें मग्न मुसलमानी सेना उसे नाश करनेके लिये बार बार उसपर आक्रमण करती रही।

लेकिन मरहठोंके उस आन्दोलनको, जिसे औरङ्गजेबकी बादशाही शक्ति भी न दबा सकी थी, भला यह अचानक आक्रमण और हत्या क्योंकर दबा सकती। तो भी अलवर्दीखांने राघोजीको एक हास्यास्पद मूर्खतापूर्ण पत्र लिख भेजा जिसमें लिखा था, "पर-मात्माको धन्यवाद है, धरमात्माओंके घोड़े अधर्मियोंसे नहीं डरते और इस्लामके शेरके इस प्रकार कार्य्य-रत रहते हुये मूर्तिपूजक

राक्षस उसका कुछ नहीं कर सकते। अतएव अब हमारी दयाके प्रार्थी हो, क्षमा-याचना करो,तभी सुलह हो सकेगी अन्यथा नहीं।" राघोरावने इस मूर्खतापूर्ण पत्रका जवाब देते हुये बतलाया कि जब मैं हज़ारों मीलकी यात्रा समाप्तकर इस्लामके शेरसे लड़नेके लिये तैयार हूं पर वह सौ मील चलकर भी युद्ध करनेका साहस नहीं करता तो मुझे भी शब्दाडम्बरकी लड़ाई स्वीकार नहीं है। अलीवर्दी खांके निमन्त्रणको अस्वीकार करते हुये उसने मरहठे घुड़सवारोंको वर्द्धवान और उडीसापर चढ़ाई करने तथा कर लगानेकी आज्ञा दी। मरहठे वर्षोंतक अलीवर्दीखांको परिशान करते रहे और जहां-कहीं पहुंचे, उचित मालगुजारी लगा दी या मालगुजारी न लगा सकनेपर युद्धव्ययका भारी चन्दाही लगा दिया। वे सारे जिलोंमें फैलकर चारों ओर घूमने लगे और समयानुकूल कभी लड़ते कभी भागते अन्तमें बङ्गाल, बिहार और उड़ीसाके सूबोंमें मुसलिम-शासकका राज्य चलाना असम्भव कर दिया। वे हारके डरसे रुकनेवाले न थे और न सत्यानासका ख्याल उन्हें झिझका सकता था। उन्हें तो एक-मात्र चौथकी ही चाह थी।

अन्तमें इस्लामके शेर अलीवर्दीखांको सन् १७५० ई० में इन "मूर्तिपूजक राक्षसों" से पूरा काम पड़ा, और ऐसा भीषण सामना हुआ कि लाचार उसे क्षमा मांगनी पड़ी और भास्कर पन्तको मारनेके बदले उड़ीसाका राज्य,तथा बङ्गाल और बिहारपर १० लाख सालाना चौथ देनेका भी वादा करना पड़ा। इस

धर्मरक्षकको मूर्तिपूजक विधर्मियोंसे इस प्रकार क्षमा याचना करनी पड़ी, यह देखकर बड़ाही आश्चर्य होता है ।

दूसरे मरहठा-सेनापति भी उत्तर भारतकी मुसलिम-दृढ़शक्तिको उसी समय अत्यन्त सफलतापूर्वक छिन्न-भिन्न कर रहे थे, जिस समय राघोजी भोंसला बङ्गालमें। हठी रुहेले और पठान जो अबतक यमुनासे नैपालतककी भूमिके स्वामी थे और जिन्होंने एक शक्तिशाली सेना भी एकत्रित कर ली थी, मुगल-बादशाहके वजीरको, जो यह नहीं चाहता था कि मुग़लोंकी जगहपर अब पठान-राज्य स्थापित हो, ऐसा विवश किया कि उस बेचारेको तंग आकर मरहठोंकी सहायता मांगनी पड़ी। मुग़लराज्यका नाश स्वयं चाहते हुये भी मरहठोंको यह पसन्द नहीं था कि उनके लाभको कोई दूसरी मुसलिम-शक्ति उड़ा ले जाय। और यही कारण था कि उन लोगोंने वज़ीरके निमन्त्रणको सहर्ष स्वीकार किया और उनके नेता मल्हारराव होलकर और जयाजीराव शिन्डे यमुना नदीको पार करके कादिरगंजकी ओर बढ़े; जहां पठानोंकी सेना पड़ी थी। पठान बड़ी वीरतासे लड़े, पर अन्तमें उन्हें पराजित होना पड़ा। एक भारी विजयके साथ-साथ मरहठोंने मुसलिम-सेनाका नाश कर दिया और दूसरे पठान-सरदार अहमदखांको, जो शीघ्रतापूर्वक अपने कादिरगंजके मित्रोंको सहायता पहुंचाने आ रहा था, घेर लिया। अहमदखां फर्रुखाबादमें जा घुसा और हफ्तोंतक लड़ाई होती रही, पर उसकी शक्तिका ह्रास न हो सका क्योंकि वह गङ्गाकी दूसरी तरफसे रुहेलोंकी

सहायता निरन्तर पाता रहा। अब मरहठोंने नावका एक पुल बनाया और फ़ौरन कुछ सेना फ़र्रुखाबादको घेरे हुये छोड़ गङ्गा-पार उतर गये और मुख्य सेनाने पठानों और रुहेलोंकी ३० हज़ार संयुक्त-सेनापर आक्रमण करके बड़े भीषण संग्रामके बाद उसे धूलमें मिला दिया। अहमदखांने बची फ़ौजको फंसाने और खुद फ़र्रुखाबादसे भाग जानेका निष्फल प्रयत्न किया।

मरहठोंने सरगर्मीके साथ पीछा करने और हरानेके बाद, खेमों, हाथी, घोड़े और ऊंटोंके साथ-साथ सारा सामान लूट लिया। इस बार उनके हाथ बड़ा धन लगा और सैनिक वीरता तथा सफलता—दोनों दृष्टियोंसे इस आक्रमणका वास्तविक फल अतिउत्तम हुआ।

मरहठोंसे द्वेष रख और धार्मिकताका जामा पहनकर पठानोंने काशीपर आक्रमण कर हिन्दू-मन्दिरों और पंडितोंके साथ बड़ा अन्याय किया। वे डींग मारने लगे कि काफिर कभी पठानोंका सामना नहीं कर सकते; क्योंकि ईश्वर उनकी (पठानोंकी) ओर है। बहुत हदतक यह ठीक भी था; क्योंकि मरहठोंको कभी उनका सामना करनेका सौभाग्य ही न प्राप्त हो सका; इसलिये कि खुली लड़ाईमें सामना होते ही पठान पीठ दिखाकर भाग जाते थे। आखिरकार मुसलमानोंकी भारी हार हुई और दूरतक बुरा तरह खदेड़े गये, जिससे हिन्दुओंको उनके मन्दिर और घरों-की अप्रतिष्ठाका पूरा-पूरा बदला मिल जानेसे सन्तोष हो गया। उस समयका हिन्दू-साहित्य विजय-गाथासे परिपूर्ण है।

पठानोंने काशी और प्रयागकी अप्रतिष्ठा की थी, पर अंतमें हरिभक्तोंकी ही विजय हुई। शत्रुओंने काशीमें हवाका बीज बोया, पर ईश्वरकी कृपासे फर्रुखाबादमें वह आंधीके रूपमें प्रकट हुआ। राजनैतिक सफलता भी कुछ कम न हुई, क्योंकि मुसलमान-बादशाहने डरकर मरहठोंको अपने राज्यमें चौथ वसूल करनेकी आज्ञा दे दी। मुग़लराज्यका यही भाग बचा था, जहां मरहठे चौथ न लगा सके थे और इस तरह मुलतान, पंजाब, राजपूताना और रुहेलखंड भी उनके अधीन हो गये, और हरिभक्त शांतिपूर्वक रहने लगे और उन्हें भलीभांति अनुभव हो गया कि मरहठोंने मुग़लराज्यके वक्षस्थलमें अपनी संगीन घुसेड़ दी। महाराष्ट्र-मंडलके नेता बालाजीने यह विजय-समाचार पाकर अपनी सेनाके पास लिख भेजा, "तुम लोगोंका साहस अनुपम और वीरता प्रशंसनीय है। नर्बदा, यमुना और गंगाको पार कर दक्खिनकी फौज़ने रुहेलों और पठानों जैसे विकट शत्रुओंको पराजित कर उनका नाश किया। सेनापति और वीरो! आप लोगोंने वास्तवमें असाधारण सफलता प्राप्त की है और आप ही लोग इस हिन्दूराज्यके प्रधान स्तंभ हैं। आपलोगोंका नाम ईरान और तूरानको पारकर बादशाह बनानेवालोंकी श्रेणीमें हो गया।" ये सब बातें सन् १७५१ ई०की हैं।

महाराष्ट्रमंडलके प्रमुख लोगोंने एक बार फिर काशी और प्रयागको अवधके नवाब और दिल्लीके वजीरसे वापस लेनेका उद्योग किया। हिन्दू-स्वातंत्र्य-आन्दोलनके प्रतिनिधि होनेके

कारण वे काशी और प्रयाग जैसे सर्वोत्तम पुण्यतीर्थोंको अब भी मुसलमानोंके अधीन देखना अपमानजनक समझते थे। उस समयके पत्रोंको देखनेसे हमें पता चलता है कि मरहठे काशी और प्रयागके लिये सर्वदा चिन्तित रहते थे। किसी प्रकार किसी राजनैतिक चालसे काम चलता न देख मल्हारराव अधार हो उठा और उसने यहांतक निश्चित कर लिया कि सीधे काशीपर हमला करके ज्ञानवापीके मन्दिरपर खड़ी मसजिदको गिराकर हिन्दूजातिके कलङ्कको सदेवके लिये मिटा दें, क्योंकि यह मसजिद हमेशा उन अशुभ दिनोंकी याद दिलाती है, जब मुसलमानी झंडेका चांद हिन्दुओंके नष्ट और अपवित्र किये गये मंदिरोंपर चमकता था। लेकिन मुसलमानोंके बदला लेनेके डरने ब्राह्मणोंको भयभीत कर दिया और उन्होंने मल्हाररावसे प्रार्थना की कि हमलेका विचार, जबतक कोई सुन्दर अवसर न आ जाय, तबतक स्थगित रखिये। उनके ऐसा करनेका मुख्य कारण काशीके आसपास अब भी मुसलमानोंका अधिक आतंक छाया होना ही था। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि कदाचित काशीके इन ब्राह्मणोंने उसी पत्रमें अपनी इस पवित्र चिन्ताको भी प्रकट किया हो कि हमलोग जो अपने जीवनकी रक्षाके लिये आपको काशीपर आक्रमण करके जातीयताका बदला लेनेसे रोक रहे हैं उसके पापके भागी हमीं होंगे, क्योंकि आपको इस शुभ कार्यसे रोक रहे हैं।

सन् १७४६ ई०में शाहूजी मर गये, तबसे बालाजी ही, जिसे

स्वयं शाहूजी "अधिष्ठाता" के अधिकार दे गये थे, महाराष्ट्र-मंडलका अधिष्ठाता और जातीय मनोरथ और आदर्शका प्राण बन गया। यद्यपि घरेलू झगड़े और छोटे २ षड्यन्त्र जो राज-महलमें हुआ करते थे, कभी २ बड़ा भीषण रूप धारण कर लेते थे, तोभी इस योग्य शूरवीरने इससे बेपरवाह हो, मुग़लराज्यके स्थानपर मरहठोंके आधिपत्यमें एक स्वतंत्र हिन्दूराज्य स्थापित करनेका ध्यान ही प्रमुख रक्खा और इसके लिये अपने पूर्वजोंसे भी विशेष परिश्रम किया, यहांतक कि इस कार्यकी पूर्तिके लिये उसे देशी, विदेशी, मुसलमान, ईसाई, एशियाई और यूरोपियन सभीसे भारी भारी लड़ाइयां लड़नी पड़ीं।

विदेशियोंमें फ्रांसीसी दक्षिणमें अधिक शक्तिशाली हो रहे थे और बालाजी भी इससे अनभिज्ञ न था। पर उसे हिन्दुस्तानके दूर भागोंमें ही बहुतसे शत्रुओंका मुकाबिला करना था; क्योंकि वे मरहठा-शक्तिको सत्यानास करनेका प्रयत्न कर रहे थे। इसलिये बालाजीने फ्रेञ्चोंके साथ अपना अधिक समय न लगा, समझौता कर लिया। लेकिन राजनीतिके दांव-पेंचकी उलझनने उसे उनके साथ रणक्षेत्रमें उतरनेके लिये फिर बाध्य कर दिया और बालाजीने उन्हें उनके सहायक निज़ामके साथ ऐसी बुरी तरह पराजित किया कि विवश होकर उन्हें १७५२ई०में भालकीमें संधि करनी पड़ी, जिसके अनुसार गोदावरी और ताप्तीका राज्य मरहठोंको मिल गया और दक्खिनके सारे राजाओं और प्रजाओंका विश्वास फ्रेञ्च-शक्तिपरसे उठ गया।

पेशवाने जो करनाटक और दक्खिनके सारे नवाबोंको दण्ड देनेका काम पहले हीसे आरंभ कर दिया था, सबनूरके नवाबको कई लड़ाइयोंमें हरा दिया और उसे अपने राज्यका एक बड़ा भाग और शेषपर ११लाख मालगुजारी देनेको विवश किया। बालाजी और भाऊरावकी संरक्षतामें ६० हज़ार मरहठा-सेना श्रीरंगपट्टन पहुंची; शिवरको ले लिया और बलपूर्वक ३५ लाख रुपया चौथ वसूल की तथा छोटे-छोटे मुसलमान-सरदारोंको दंड भी दिया। इसके बाद बलवन्तराव मेहेन्डल कड़ापाके नवाबके विरोधमें रवाना हुआ, जहां वे सब मुसलमान-सरदार जो मरहठोंके नामसे कांपते रहते थे, एकत्रित हुये और अङ्गरेजोंने भी उन्होंकी सहायता की। वर्षाकी ऋतु थी, तोभी बलवन्तरावने उसपर आक्रमण किया और एक घोर युद्धके पश्चात् हज़ारों पठानों और नवाबको भी मार डाला और उसका आधा राज्य ले लेनेके पश्चात् आरकाटके नवाबपर चढ़ाई की। अङ्गरेज यहां भी मरहठोंके ख़िलाफ नवाबके मद्दगार थे, पर नवाब या उसका संरक्षक कोई भी उनकी (मरहठोंकी) मांगोंकी उपेक्षा न कर सके और ४ लाख रुपया देकर मरहठोंसे सुलह कर ली। फिर सन् १७५६ई० में बंगलौरको जा घेरा, चीनापट्टम ले लिया और हैदरअलीको, जिसे सारे मैसूरका स्वामी होनेकी धुन समाई थी, ३४ लाख रुपया देनेकी शर्तको पालन करनेपर विवश किया। बालाजीकी अभिलाषा उसे तुरत ही नाश कर डालनेकी थी, पर उत्तर भारतके आरंभ

कायके कारण उसे अपना काम अधूरा ही छोड़ना पड़ा। इसी बीच सन् १७५३ ई० में रघुवाने अहमदाबाद ले लिया और दिल्लीमें मरहठा-प्रभावका विरोध करनेके कारण जाटोंसे ३० लाख रुपया वसूल किया। इसी समय जोधपुरकी गद्दीके लिये राजपूतोंमें घरेलू झगड़ा खड़ा हो गया। विजयसिंहके मुक़ाबिलेमें रामसिंहने मरहठोंसे सहायताकी प्रार्थना की, जो स्वीकार कर ली गई और दत्ताजी तथा जयप्पाने स्वयं सेना लेकर सहायताके लिये प्रस्थान किया। ५० हज़ारकी मरहठा-सेनाने विजयसिंहको हरा दिया और वह भागकर नागपुर चला गया, पर जयप्पाने उसे फिर घेर लिया। लेकिन राजपूतों और मरहठों–यानी हिन्दू-हिन्दूकी लड़ाई बालाजीको अच्छी नहीं लगती थी, इसलिये उसने बार बार शिन्डेको दबाया कि राजपूतानेमें सुलह करा दो और मरहठोंके सबसे प्रिय कार्य तीर्थ-स्थानोंको मुक्त करनेका काम हाथमें लो। पर उसी समय विजय-सिंहने ऐसा नीचतापूर्ण कार्य किया जिससे महाराष्ट्रभरमें सनसनी फैल गई और सुलह होना असम्भव हो गया। आप लोगोंको याद होगा कि विजयसिंहके चचाने पिलाजी गायक-वाड़को अपने खेमेमें आमंत्रितकर मार डाला था। विजय-सिंहने भी उन्हींका अनुकरण किया, यद्यपि वह जानता था कि पिलाजीकी हत्याका बदला किस बुरी तरह लिया गया था। तीन राजपूत हत्यारे विजयसिंहके खेमेसे निकलकर जयप्पाके खेमेके सामने अस्तबलमें चना बिनने लगे और ज्योंही बदनपर

देह पोंछनेका एक अंगोछा डाले नहानेके लिये वह बाहर निकले, हत्यारे झपटे और उनके शरीरमें तलवार घुसेड़ दी। जयप्पाको प्राणघातक चोट लगी। दो हत्यारे पकड़े गये और एक भाग गया। राजपूत-सेनाने तुरत ही निकलकर मरहठा-सेनापर,जो घबड़ाई और बिना सेनापतिके थी,जीतना सुलभ जान आक्रमण कर दिया। परन्तु शूरवीर सेनापतिके असीम आत्म-बलके कारण उनकी यह आशा फलवती न हुई। उसने अपनी मृत्यु-शय्याके पास रोते हुये साथियोंको एकत्र होकर शत्रुओंका सामना करनेके लिये उत्साहित किया और उनके औरतोंकी तरह रोनेपर बहुत ही शर्मिन्दा किया। अपने मरते हुये सर-दारके इन उत्साहवर्धक वाक्योंने मरहठा-फ़ौजको क्रोध और जोशसे भर दिया और बड़ी वीरता-पूर्वक राजपूतोंका सामना करनेके पश्चात् उन्हें फिर हरा दिया। दूसरे मरहठा-सरदार भी शिन्डेकी सहायताको दौड़ पड़े। अन्ताजी मनकेश्वर १० हजार सेना लेकर राजपूतानेमें जा पहुंचा और विजयसिंहके पक्षपाती तमाम राजपूतोंको उचित दंड देने लगा। विवश होकर विजयसिंहने रामसिंहका अधिकार मान लिया और सुलहकी प्रार्थना की तथा मरहठोंको अजमेर तथा अन्यान्य स्थानोंकी लड़ाईका ख़र्च दिया। उसी समय बूंदीके अबोध राजकुमारकी विधवा माताने अपने शत्रुओंके ख़िलाफ़ शिन्डेकी सहायता मांगी। दत्ताजीने उसके इच्छानुसार ही वह कार्य सम्पादन किया, जिसपर प्रसन्न हो राजमाताने ७५ लाख रुपये शिन्डेको इनाम दिया।

बारहवां अध्याय

सिन्धके तटपर

इन्हीं दिनों रघुवा दिल्लीमें बड़े बड़े काम कर रहा था। उसने ग़ाज़ीउद्दीनको शाही वज़ीर बननेमें सहायता दी और कुरुक्षेत्र मरहठोंको देनेके लिये बादशाहको मजबूर किया। स्वयं रवाना हो उसने मथुरा, वृन्दावन, गढ़मुक्तेश्वर और पुष्पवती तथा और कई हिन्दू तीर्थ-स्थानोंपर भी अधिकार जमा लिया। फिर मरहठोंकी एक टुकड़ी फ़ौज ले बनारसपर चढ़ दौड़ा और उसे भी जीतकर क़ब्ज़ेमें कर लिया। इस प्रकार हिन्दुओंकी एक महान् अभिलाषा पूर्ण हुई। रघुवाने बड़े अभिमानके साथ पेशवा-को लिख भेजा कि उत्तर भारतके लगभग सभी पवित्र शहरोंको मुसलिम-पंजेसे छुड़ाकर अपने अधिकारमें कर लिया है और उन स्थानोंपर, जो हज़ारों मनुष्योंके प्राण-दानके पश्चात् हस्तगत हुये हैं, हिन्दू-झण्डा बड़ा ही प्यारा देख पड़ता है। यही हिन्दू-पाद-पादशाही और स्वातंत्र्य-आन्दोलनके हामी भरनेवाले मर-हठोंका दूसरा बड़ा उदाहरण है।

मुग़ल बादशाहने भी यह सोच लिया कि मैं मरहठोंसे काफ़ी लड़ चुका और अब उनसे खुल्लमखुल्ला लड़नेका साहस करना फ़िज़ूल है—छिपा षड्यंत्र रचने लगा। नया वज़ीर ग़ाज़ीउद्दीन

मरहठोंका मित्र था। ज्योंही उसे पता लगा कि मुग़ल-सम्राट् छिपा छिपा मेरे और मरहठोंके विरुद्ध साज़िश कर रहा है, उसने होल्करको बुलाया। होल्करने भी ५० हजार सेनाके साथ ऐसी सरलतापूर्वक शाही फ़ौजको भगा दिया कि बेगमोंकी रक्षा करनेवाला भी कोई न रहा और वे मरहठोंके हाथ पड़ गईं। ग़ाज़ीउद्दीनको साथ लिये मरहठा-फ़ौज दिल्लीमें जा घुसी और वहांके बूढ़े बादशाहको गद्दीसे उतारकर आलमगीर अर्थात् संसारविजयी नामसे एक नये मनुष्यको गद्दीपर बैठाया। इस नामके दो बादशाह हुये। पहला आलमगीर औरंगजेब कहलाता था। उसने सोचा था कि मैं अपने शाही क्रोधकी सांससे अब भी झिलमिलाते हुये हिन्दू-जीवनके चिराग़को बुझा दूंगा और अल्लाहकी क़सम खाकर उसपर फूंक मारी, पर उसने उसकी दाढ़ी पकड़ ली और शीघ्र ही ऐसा भयंकर रूप धारण कर लिया कि सह्याद्रि पर्वतको जा पकड़ा और उसमेंसे ऐसे शोले निकले कि लाखों मनुष्यों, मन्दिरोंकी चोटियों, कलशों, पहाड़ों और तराइयों तथा जल और स्थल सबको जा घेरा, और एक बड़ी होमाहुतिकी प्रचंड अग्नि बन गई।

पहले आलमगीरने मरहठोंको पहाड़ी चूहोंके रूपमें देखा था, पर इन चूहोंने इतनी उन्नति की कि उनके पैने दांतों द्वारा कितने ही मुसलमान-शेरोंका काम तमाम हो गया और दूसरे आलमगीरने तो स्वयं अपनी राजधानीमें ही उनके पैरोंपर सिर नवाया। पहला आलमगीर शिवाजीको एक साधारण राजा

भी स्वीकार न करता था; पर दूसरा जो उसीका वंशज है, अपनेको तभी बादशाह कह सका जब शिवाजीकी संतानने कुछ कृपा करके उसे बादशाह बना रहने दिया।

हिन्दुस्तानकी मुसलिम-दुनिया बिल्कुल डर गई और हिन्दू-राज्यकी शक्ति और प्रतापको देखकर अपार क्रोधमें जलती-भुनती ख़ाक होने लगी। रुहेले और पठान फ़र्रुख़ाबाद और दूसरी जगहोंमें पराजित हुये, वज़ीर तथा नवाब अपनी जगहोंसे हटाये गये, मौलवी और मौलाना काफ़िरोंकी उन्नति-शील दशा देख "चांद"के घटते प्रतापका स्मरण कर अधीर होने लगे, यहांतक कि स्वयं बादशाह भी अपने राज्यको भालोंकी नोकों-पर स्थापित देख घबड़ा गया और उसने राज्यहीन तथा विवश होनेपर भी मुसलमानोंके इच्छानुसार पूर्ण आशायुक्त हो मरहठोंके नाश करने और बदला लेनेकी क़सम खायी और उपाय सोचने लगा। कहते आश्चर्य होता है, यद्यपि आश्चर्यकी विशेष बात नहीं भी है, कि मरहठोंके उत्तर भारतके इस उत्कर्षसे कुछ हिन्दू-राजे भी असन्तुष्ट हो गये और जयपुर तथा जोधपुरके माधोसिंह और विजयसिंह, जाट तथा अन्यान्य छोटे-छोटे सरदारोंने अपने स्वाभाविक वैरियोंका मरहठोंके विरुद्ध सहायता करके असन्तुष्ट मुसलमानोंको इच्छा-पूर्तिका समय दे दिया और उस हिन्दू-शक्तिके नाश करनेका षड्यंत्र रचने लगे जो अकेले ही हिन्दूस्वतंत्रता तथा उसके धार्मिक कृत्योंको नाश करनेवालोंका सामना पूर्ण रूपसे कर सकती थी तथा उसके लिये

तैयार थी। मुसलिम-जगतके नेताओंने अपनी परंपरागत नीतिके अनुसार भारतके बाहरसे अपने सहधर्मियोंके बुलानेका निश्चय किया। इसका मुख्य कारण यह था कि भारतवर्षके मुसलमान मरहठोंका किसी भी प्रकारसे सामना नहीं कर सकते थे।

नज़ीबखां रुहेला जिसे मरहठोंके सत्यानाससे हर प्रकारसे लाभ था तथा मल्का ज़मानी जो किसी समय शाही महलमें भीषण षड्यंत्र कारिणी स्त्री थी, और जिसे घृणित हिन्दुओंसे भिक्षा मांगकर जीवन निर्वाह करना असह्य था, इस भीषण षड्यंत्रके नेता बने। उन लोगोंने अपने पूर्वजोंका, जिन्होंने ऐसे ही डर और आशामें नादिरशाहको बुलाया था, अनुसरण करनेका निश्चय किया और गुप्त पत्र-व्यवहारद्वारा अहमदशाह अब्दलीके पास विधर्मियोंपर चढ़ाई करके मुसलिम-राज्यको बचानेकी विनीत प्रार्थना लिख भेजी। अहमदशाहने अपनी ही बुद्धिपर उनके निमंत्रणको स्वीकार कर लिया और धोखेसे हिन्दुस्तानपर विजय प्राप्त करनेकी उसकी आशा अतीव बलवती हो उठी। पर असली और सबसे बड़ा कारण जिससे युद्ध आवश्यक हो गया था, मरहठोंका प्रताप और तेज था, जिससे उनका राज्य मुल्तानके पास उसकी सीमातक पहुंच गया था; और जिसके बढ़नेका डर उसे प्रतिदिन लगा रहता था।

अहमदशाहने पहले ही मुल्तान और पंजाबको अपने राज्यमें मिला लिया था, लेकिन १७५०में ठाठा, मुल्तान और पंजाब को भीतरी तथा बाहरी आक्रमणोंसे बचानेका तथा शांति-स्थापनका

काम मरहठोंने अपने हाथमें लिया और वहां चौथ लगानेका अधिकार भी प्राप्त कर लिया। इसके अनुसार ही उन्होंने ग़ाज़ी-उद्दीनको १७५४में पंजाब और मुलतान अब्दालीसे वापस लेने-की इच्छासे ही सहायता दी जो उसे एक खुला ललकार थी। ठीक उसी समयके नजीब खांके षड्यंत्रने मुहम्मद अब्दालीको पूर्ण विश्वास दिला दिया कि भारतके मुसलमान और नवाब मेरी मदद करेंगे और तभीसे वह हिन्दुस्तानका शाही ताज पानेका स्वप्न देखने लगा और जो सफलता नादिरशाह भी न प्राप्त कर सका था उसे प्राप्त करनेको उत्तेजित हो गया।

मुख्य-मुख्य मरहठे सरदारोंको दक्खिनमें संलग्न समझकर उसने ८०हज़ार मनुष्योंकी फौज़ ले सन्१७५६में सिन्धु नदीको पारकर पंजाब और दिल्लीको क़रीब २ बिना युद्धके ले लिया और बादशाहकी पदवी धारण की। विजयी पठानोंके परम्परा-नुसार वह क्रोधित भी हुआ और दिल्ली-निवासियोंके थोड़े समय तक क़तलआमकी आज्ञा देकर अपनी शाही ताज़पोशीकी शानको पूर्ण किया। थोड़े ही समयके भीतर बीसों हजार निरपराध मनुष्योंकी बलि हो जानेपर मुसलमानधर्मके रक्षक-पद पाने तथा हिन्दुओंके पवित्र तीर्थस्थानों और मरहठोंके हा-लहीमें वापस लिये हुये नगरोंका सत्यानास कर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानेको रवाना हुआ। मथुरा पहला शहर था जहां यह आ-पत्ति सर्वप्रथम आई, लेकिन यह शहीदोंकी तरह काम आया। बड़ी वीरतापूर्वक ५०००जाटोंने शरीरमें प्राण रहते मुसलमानों-

की इस अपार सेनाका सामना किया। मथुरापर क्रोध उतारनेके बाद मरहठोंको अपमानित करनेके लिये वृन्दावनपर चढ़ दौड़ा, पर गोकुलनाथकी रक्षामें एकत्र सशस्त्र ४००० नागोंने जिस वीरतासे युद्ध करके उसकी अमर विजयकी आशाको निराशामें परिणत कर दिया, वह चिरस्मरणीय है। २००० नागे मारे गये, परन्तु उन्होंने अपने गोकुलनाथकी रक्षा करके शत्रुओंको भगा देनेमें सफलता प्राप्त की। तुरन्त ही अब्दाली आगरेको रवाना हुआ और शहरपर अधिकार जमानेके पश्चात् किलेपर चढ़ दौड़ा, जहां गाज़ीउद्दीन पठानों या फारसियोंसे घृणा करनेवाले मुसलमानोंके साथ, जो यहां उन लोगों (पठानों या फारसवालों) का राज्य पसन्द नहीं करते थे, छिपा था और मरहठोंके आनेकी राह देख रहा था।

लेकिन उसी समय जयपुर, जोधपुर, उदयपुर तथा अन्य बहुतसे दूसरे राजे क्या कर रहे थे? वे मरहठोंसे घृणा करते और पूछते थे कि उन्हें हिन्दू-पाद-पादशाहीके आन्दोलन उठानेका क्या अधिकार है? उचित तो यह था कि उस समय ये लोग अपनेको इस आन्दोलनके चलानेमें और इसके साथ-ही-साथ उत्तर भारतवर्षकी रक्षा करनेमें मरहठोंसे बढ़कर सिद्ध करते, पर ऐसा एक भी मनुष्य न निकला और अहमद अब्दाली लाखों मृतवत् हिन्दुओंके बीचसे बिना रोकटोक सीधे दिल्ली, फिर आगरा चला आया और अपनी घोषणाके अनुसार दक्खिनकी राह ली। झुंड-के-झुंड मुसलमान बेरोक-टोक राजपूत, जाट

और दूसरे हिन्दू-राजाओं तथा सरदारोंके सामने "काफ़िरोंको मारो" इत्यादि उच्चारण करते हुये हिन्दुओंके मकानों, मन्दिरों और तीर्थोंको कुचलते हुये अहमद अब्दालीके पास आने लगे। पर मरहठोंके अतिरिक्त उनकी ओर उँगली उठानेवाला और कोई न था।

अब्दालीके हमलेका समाचार महाराष्ट्रके पूनास्थित नेताओंके दिलपर नादिरशाहके हमलेसे कुछ विशेष प्रभाव न डाल सका और रघुनाथरावकी अध्यक्षतामें एक शक्तिशाली सेना उत्तरकी ओर भेजी गई। यह समाचार अब्दालीको आगरेमें मिला। वह एक चतुर और अनुभवी सेनापति था और कई बार धोखे उठा चुका था। उसने सोचा कि और आगे बढ़ना और ऐसे भयानक शत्रुका मुकाबला करना मृत्युके मुखमें पड़ना है, इसलिये मिले हुयेको ही सुदृढ़ करनेका निश्चय कर लौट पड़ा और दिल्ली पहुंचकर मलका ज़मानीकी लड़कीसे शादी कर सर-हिन्दकी रक्षाके लिये १० हज़ार फ़ौज छोड़ और अपने लड़के तिमूरशाहको वाइसराय बनाकर जितनी जल्दी आया था, उतनी ही जल्दी लौट गया।

दक्खिनमें फँसे होनेपर भी जितनी जल्दी हो सका चलकर मरहठोंने अहमदशाहका बनाया सारा काम बिगाड़ दिया। सुखराम भगवन्त, गंगाधर जसवन्त और दूसरे महरठे-सेनापति द्वाबामें जा घुसे और विप्लव मचाये हुये रुहेले और पठानोंको नीचा दिखलाया। विट्ठल शिवदेव दिल्लीको रवाना हुआ और

१५ दिनकी घमासान लड़ाईके पश्चात् पठान-स्कीमके जन्मदाता और मरहठोंके कट्टर शत्रु नजीबखांको जीवित पकड़कर दिल्लीपर अधिकार कर लिया। वहांसे मरहठी-सेना अब्दालीकी फ़ौजका सामना करनेके लिये जो लगभग १०००० के थी और अब्दुल समदकी अध्यक्षतामें सरहिन्दमें पड़ी थी, चल पड़ी और उसे हराकर अब्दुल समदको बन्दी कर लिया। अब यह सेना लाहौरकी ओर बढ़ना चाहती थी, पर मरहठोंकी इस सफलतासे अब्दालीका पुत्र वाइसराय तैमूर, जिसने पंजाब और मुलतान अपने अधीन कर रक्खा था, ऐसा डरा कि उसे मरहठोंका सामना करनेका साहस न हुआ और लाहौरसे भाग गया। रघुनाथरावने बड़ी धूमधामसे दिल्लीमें प्रवेश किया। जहानखां और तैमूरने बड़ी चालाकीसे निकल जानेका उद्योग किया, पर मरहठोंने उनका ऐसा पीछा किया कि उनका हटना हारमें परिवर्तित हो गया और सारी वस्तुओंको, जो, जानकी अपेक्षा कम मूल्यवान हैं, छोड़, सेना, बेटा और वाइसराय जो मरहठोंको कुचलने आये थे, भागकर अपनी जान बचानेका प्रयत्न किया। उनके ख़ीमें लूट लिये गये और बहुत बड़ी तादादमें सामान और नक़द रुपये मिले। और "श्रीरामदासजी" द्वारा शिवाजीको दिया हुआ "गेरुआ झंडा" आख़िरकार हिन्दुस्तानकी उत्तरी सीमापर गाड़ा गया।

पृथ्वीराजकी पराजयके पश्चात् यह पहला ही मौका था जब श्रुति-प्रसिद्ध पवित्र सिंधुतटपर हिन्दुओंकी गौरवान्वित

पताका फहराने लगी और युद्धमें विजयी हिन्दुओंके घोड़े उसका स्वच्छ जल पानकर निर्भीत हो अपनी परछाहीं देखने लगे।

मरहठोंके इस विजय-समाचारने अपनी जातिमें बिजली दौड़ा दी। अन्ताजी मानकेश्वरने रघुनाथरावको लिख भेजा,"लाहौर ले लिया गया, दुश्मन भगा दिया गया और सीमा-प्रदेश तक उसका पीछा किया गया। हमारी सेना सिंधतक पहुंच गई। सचमुच यह बड़ा आनन्द समाचार है। उत्तरके समस्त राजे, राव, सूबेदार और नवाब तथा अन्य लोग इससे प्रभावान्वित हो डर गये हैं। हमारी जातिके साथ किये हुए अत्याचारोंका बदला केवल मरहठे ही ले सके और सारे भारतवर्षका बदला उन्होंने ही अब्दालीसे लिया। शब्दोंद्वारा अपने भावोंको आपके पास भेजनेमें असमर्थ हूं। वीरताके काम किये गये हैं और वे वीरतायें अवतारोंकी वीरतासे कम नहीं हैं।"

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि स्वयं मरहठोंको भी अपनी इस विजयपर अचंभा हुआ। द्वारिकासे जगन्नाथ और रामेश्वरसे मुल्तान तक उनकी तलवार विजयी रही तथा उनके शब्द कानून रहे। उन्होंने खुल्लम-खुल्ला भारत-राज्यके उत्तराधिकारी तथा रक्षक होनेका ढिंढोरा पिटवा दिया और उन तमाम लोगोंको नीचा दिखाकर, जो ईरान, तूरान या अफगानिस्तान और इंगलैण्ड,फ्रांस या पुर्तगालसे आये और इसमें बाधा डाली, अपनी मर्यादाकी प्रतिष्ठा रक्खी। शिवाजीका'हिन्दू-पाद-पादशाही'

का मनोरथ सामान्यतः पूरा हो गया और स्वामी रामदासकी शिक्षा कर्तव्यरूपमें चरितार्थ हुई। मरहठे विजय लाभ करते हुये हिन्दू-ध्वजाको सिन्धके तटतक ले गये जैसा कि शाहूजीने बाजीरावको आज्ञा दी थी और और भी आगे बढ़नेकी संभावना प्रतीत होने लगी।

अटककी विजयने राजनैतिक क्षेत्रमें मरहठोंका प्रभाव बढ़ा दिया। अब वह दिल्लीकी चहारदीवारीके अन्दर संकुचित नहीं रह सकती थी। एजेंट्स, गुप्तचर और राजदूत कश्मीर, काबुल और कंधारसे मरहठोंके यहां अधिकाधिक संख्यामें आने लगे। एक समय वह था जब गद्दीसे उतारे हिन्दू-राजा काबुल और फारसके मुसलमान-बादशाहोंसे सहायता मांगते रहे। पर अब समयने पलटा खाया। रघुनाथरावके पास प्रतिदिन काबुल और कन्धारसे प्रार्थनापत्र आने लगे। ४ मई सन् १७५८ को सेनापतिने नाना साहबको लिखा "सुल्तान तैमूर और जहान खांकी सेनायें हरा दी गईं और उनके खीमे और सारी सामग्री हम लोगोंके हाथ लगी। केवल थोड़ेसे भागकर अटक जिन्दा पहुंचे। ईरानके शाहने अब्दालीको पराजित कर दिया और स्वयं मुझे पत्र लिखा है जिसमें अनुरोध किया है कि मैं और आगे कन्धारतक बढ़ूं क्योंकि हम दोनोंकी सम्मिलित शक्तिसे नष्ट हो जानेपर ही अब्दाली अटकको हमारा सीमाप्रान्त स्वीकार करेगा। लेकिन मैं नहीं समझता कि अटकतक ही हम क्यों सीमाबद्ध हो जांय। अकबरसे औरङ्गजेबतक काबुल और कन्धारके

दोनों सूबे "हिन्दू-राज्य"के अन्तर्गत रहे हैं। फिर उन्हें हम विदेशियोंको क्यों दें? मैं सोचता हूं कि ईरानका बादशाह प्रसन्नतापूर्वक ईरानतक सीमाबद्ध रह जायगा और काबुल और कन्धारके हमारे दावेपर लड़ाई न करेगा। पर वह चाहे इसे चाहे या न चाहे मैंने तय कर लिया है कि उन्हें अपने राज्यका एक भाग समझूं और उनपर हमारा शासन हो। अब्दालीका भतीजा पहले होसे हमारे पास आया है और उनपर अपने अधिकारका दावा करते हुये उसके मुकाबिलेमें हमारी सहायताका प्रार्थी है। मेरा अभिप्राय उसे सिंधके पार पड़े राज्यके हिस्सेका गवर्नर बना देने तथा उसकी रक्षाके लिये कुछ सेना भेज देनेका है, क्योंकि इस समय मेरा दक्खिनको लौटना परमावश्यक है। मेरे उत्तराधिकारी प्रयत्न करें कि यह मेरी महान आशा फलित हो और काबुल और कन्धारमें नियमानुसार हम लोगोंका शासन प्रारम्भ हो।

तेरहवां अध्याय

हिंदू-पाद-पादशाही

वर्षाकाल समीप होनेके कारण पत्र लिखनेके पश्चात् शीघ्र ही सेनाके साथ रघुनाथराव दक्षिणको लौट आया। यह केवल अभाग्य था कि उसे ऐसा करना पड़ा और नये जीते सूबोंको, जहां सेना भी कम ही रक्खी गई थी, छोड़ना पड़ा। सबसे भयानक बात तो यह थी कि पठानोंका षड़यन्त्रकारी नेता नजीब खां, जो पकड़ लिया गया था और जिसे अब्दालीके साथ मिलकर मरहठोंको धोखा देनेके कारण सारे मरहठा-सरदारोंने मार डालना ही श्रेयस्कर समझा था, अभीतक बचा था और उसका कोई उचित प्रबंध न हो सका। यह बड़ा ही मक्कार और धूर्त मनुष्य था। इसने मल्हाररावसे सैकड़ों क्षमा-याचनायें कीं और कहा "आप मेरे पिता हैं, मुझे अपने बुरे कर्मोंपर बड़ा पश्चात्ताप हो रहा है। कृपा करके पिता जिस तरह अपने पुत्रकी प्राणरक्षा करता है, आप भी मेरी रक्षा कीजिये" इत्यादि। मरहठोंके कार्यके लिये प्राण न्यौछावर करनेवालोंको धर्मपुत्र स्वीकार करनेके लिये मल्हारराव सदैव उत्सुक रहते थे। फलस्वरूप उन्होंने नजीबखांकी ओरसे ऐसी बहस की कि जान लेनेको प्रस्तुत होते हुये भी रघुनाथरावको उसे छोड़ देना पड़ा। इस शीघ्रही अपने कर्मोंपर पश्चात्ताप प्रकट कर अपनी प्राणभिक्षा

लेनेवाले नजीबखांको देखेंगे कि उसने किस प्रकार अपना जीवन ही अपने प्राणदाताके विरुद्ध षड्यन्त्र रचनेमें व्यतीत कर दिया।

राजनैतिक दाव-पेचोंके कारण मरहठे अबतक कई अंशोंमें दिल्लीके बादशाहके नामपर कार्य्य कर रहे थे। ऐसा करनेसे उन्हें रुकावट कम तथा लाभ अधिक होता था। उनका यह पद अंग्रेजोंके उसी पदके समान था जिसे वे मरहठोंकी अवनत दशाके पूर्व सन् १८१८ई०में धारण किये हुए थे। जिस राजनैतिक पालिसीसे १८५७ई० तक अङ्गरेज केवल बादशाहके एजेण्ट होनेका बहाना करते चले आये, यद्यपि वे स्वयं बादशाह थे, उसीने मरहठोंको भी शीघ्रता न करनेपर विवश किया; क्योंकि ऐसा करनेसे न केवल मुसलमान ही बल्कि अङ्गरेज, फरांसीसी, पठान और हिन्दू-राजे सब उनके शत्रु बन जाते; क्योंकि इनमेंसे सभोंकी दृष्टि मुग़ल-सिंहासन और उसके उत्तराधिकारकी तरफ लग रही थी और प्रत्येक चाहता था कि मुग़ल-सम्राट् तबतक मृत्युशय्यापर पड़ा रहे, जबतक उसके अन्य उत्तराधिकारी मिट न जांय और वह आसानीसे हमारे हाथ शिकार हो।

परन्तु उत्तर भारतवर्ष तथा स्वयं बालाजीद्वारा प्राप्त दक्खिनकी सफलताने मरहठोंको इतना शक्तिसम्पन्न बना दिया कि बालाजी और सदाशिव भाऊसे लेकर एक साधारण आदमीतक सबके मनमें यह बात बैठ गई कि हाथ डाले हुये कार्य्यको

पूर्ण करनेका प्रयास करना चाहिये। उन्हें अपनी शक्तिपर विश्वास हो गया और समझ गये कि अब भारतवर्षका मुसलमानी राज्य निर्जीव हो गया। उन्होंने अपनेको एशियाकी एक शक्ति होनेका अनुभव किया और पूना भारतवर्षका ही नहीं, प्रत्युत समस्त एशियाका राजनैतिक केन्द्र हो गया तथा मुग़ल-राज्य चूर २ हो उसके पैरोंपर लेटने लगा। अब मरहठोंने उन सारी रुकावटोंको जो उनके दिल्लीश्वर बननेमें बाधक थीं, नष्ट करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। सदाशिव भाऊने अन्य मरहठा-सेनापतियोंकी अपेक्षा इस महत् कार्य्यकी ओर विशेष गौरवकी दृष्टिसे देखा और इसे पूर्ण करने या इसीके लिये लड़ते२ प्राण त्याग करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया। उन लोगोंने मुसलमान-राज्यको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला, हिन्दुओंने विजेताओंपर विजय प्राप्त की और भाऊकी वाक्पटुतासे प्रभावान्वित हो, उन लोगोंने इस चतुरतासे उद्योग करनेकी ठान ली कि अगले कुछ वर्षोंमें सारे भारतको स्वतंत्र कर, खुल्लमखुल्ला सीधे हिन्दु-शासनमें लायेंगे।

इस विचारसे तीन वृहत् युद्धोंका आयोजन किया गया। पंजाब और मुल्तानमें जाकर नये जीते हुये सूबोंमें शांति-स्थापन तथा नियमित शासन-प्रणाली चलानेका भार दत्ताजी शिन्देको सौंपा गया तथा यह आज्ञा दी गई कि वहांसे लौटकर वह काशी और प्रयागको आवे जहां रघुनाथराव दूसरी सेना लेकर उससे मिलेगा। वहांसे ये दोनों संयुक सेनायें बङ्गालकी ओर

रवाना हों और समुद्रपर्य्यन्त सारे देशको मुसलमानोंसे स्वतंत्र कर दें तथा १७५७ में प्लासीकी लड़ाईमें विजय प्राप्त किये अंग्रेजोंको भी जो बङ्गालके मालिक बननेके इच्छुक हैं, वहांसे बिलकुल हटा दें। दत्ताजी, जानकोजी और रघुनाथरावको उत्तर भारतको सिन्धसे मुलतानतक स्वाधीन करनेकी आज्ञा देनेके साथही बालाजीने विश्वासराव और सदाशिव भाऊको साथ लेकर सारे दक्षिणकी विजयका भार स्वयं अपने हाथमें लिया।

तदनुसार अपनी सेनाओंके साथ दत्ताजीने उत्तरकी ओर बालाजी और भाऊने सबसे पहले निजामका अस्तित्व मिटानेके लिये दक्षिणकी राह ली। उन्होंने एक बड़ी सेना और रिसालेके साथ निज़ामपर आक्रमण किया और बड़े घमासान युद्धके बाद, सन १७६० ई० में उदुगिरके स्थानपर बड़ी सफलतापूर्वक विजय प्राप्त की। मुसलमानी सेना तबाह हो गई। निज़ाम इतना डर गया कि शाहीमुहर भाऊके हाथोंमें दे, अत्यन्त नम्रतापूर्वक किसी भी शर्तपर सुलह करनेकी प्रार्थना की। मरहठोंने स्वीकार कर लिया। तदनुसार नागर, बुरहानपुर, सलहर, मलहर, असीरगढ़ और दौलताबादके किले और नान्देद, फूलमढ़ी, अमेद और बीजापुरके ज़िले उन्हें मिल गये। भाऊराव भी इस सुलहनामेसे संतुष्ट हो गया। निज़ाम अब कोई शक्ति नहीं रह गया। उत्तरी भागको छोड़ सारा दक्षिण इस सालके बीतनेसे पहले ही मुसलिम-शासनसे मुक्त हो गया। अन्तमें नागर और बीजापुरपर मरहठी ध्वजा फहराने लगी। यहींके

राजा लोग छोटे विद्रोही शिवाजीसे बगावत कर तोराना लेने और वहांपर "हिन्दू-विप्लववादियों" का झंडा खुल्लमखुल्ला गाड़नेपर घृणायुक्त हंसी हंसते थे।

इस बड़ी राजनैतिक तथा सैनिक विजयके पश्चात् उद्गिर-विजयियोंकी इच्छा हैदरअलीपर चढ़ाई कर उसका सत्यानास करनेकी हुई, क्योंकि उसने मैसूरको घेर लिया था और चाहता था कि वहांके हिन्दू-राज्यको उलटकर स्वयं बादशाह बन बैठे। हिन्दूराजा और उसके मन्त्रीने मरहठोंके यहां एक बड़ी करुणा-पूर्ण प्रार्थना भेजी कि आप लोग आकर इस साहसी मुसलमान-की अभिलाषा असफल कर हमारी रक्षा करें। सदाशिवराव भाऊने, जो ऐसे ही समयकी प्रतीक्षामें था और चाहता था कि हैदरअलीको परास्त कर सारे दक्खिनको मुक्त कर दूं, फौरन ही हैदरअलीपर चढ़ाई करनेके विचारसे रवाना होनेका निश्चय कर लिया, पर उसी समय पेशवाके यहां उत्तरसे बड़ी बुरी खबर आई। भाऊ लिखता है: कि सफलताका प्याला, जिसे मैं मुंहसे लगाने जा रहा था, मेरे हाथसे छीन लिया गया।

जो मरहठा फ़ौज दत्ताजीकी अध्यक्षतामें उत्तरकी ओर गई थी, वह १७५८ ई० के अंतमें दिल्ली पहुंची, जहांसे पेशवाके आज्ञानुसार नवीन विजित लाहौर और मुलतानके सूबोंका प्रबन्ध करनेके लिये वह आगे बढ़ा। साबाजी शिन्दे और त्रिम्बक बापू-को अटकतकका प्रबन्ध करनेके लिये नियत करनेके बाद उसने लाहौर, सरहिन्द तथा अन्य प्रसिद्ध स्थानोंमें सेनायें रक्खीं। अब

पंजाबका काम सम्पूर्ण हो जानेके कारण उसे छोड़ दिया और अपने सुपुर्द किये गये दूसरे कामके लिये गंगा पार कर पटना पहुंचा, जहां अंग्रेजोंके साथ समझौता करके हिन्दू-राज्यको समुद्र-तटतक फैलाना था।

सेंधियाद्वारा पराजित नजीबखां, जिसने दत्ताजीको बंगालकी लड़ाईमें सहायता देने तथा विश्वासपूर्वक सेवा करनेकी झूठी प्रतिज्ञा की थी, धीरे धीरे अपनी शक्ति और प्रभावको बढ़ा रहा था। इसपर क्रोधित होकर पेशवाने दत्ताजीको लिखा, "तुम कहते हो कि अगर हम नजीबखांको बख्शी बना दें तो वह हमें तीस लाख रुपया देगा, किन्तु मैं आज्ञा देता हूं कि उसका एक पैसा भी न छूना। अजीबखां आधा अब्दाली है, उसका विश्वास न करो और एक नीच ज़हरीले सांपको न पालो।" पर दत्ताजीने पेशवाकी इस आज्ञाकी अवहेलना कर बड़ी भारी भूल की। वह उसकी इस छटी मक्कारीपर ऐसा विमोहित हो गया कि उसने नजीबखांको गंगा पार करनेके लिये नावोंका पुल बनानेकी प्रतिज्ञापर पूर्ण भरोसा कर लिया। बंगालपर हमला करनेके कारण मरहठोंको ज्यों ज्यों देर होती गई, नजीबखांको भी उनके विरुद्ध मुसलमानोंका गुट तैयार करनेकी विशेष सुविधा मिलती गई। इस कार्यमें उसे इतनी सफलता प्राप्त हुई कि उसने दिल्लीके बादशाहकी हस्ताक्षरयुक्त एक चिट्ठी अब्दालीके पास भेज दी; जिसमें उसे एक बार फिर भारतपर आक्रमण करनेको प्रार्थना थी। इस उत्साहभरी प्रार्थनाने

धार्मिक हठी पठानोंको धर्म और अल्लाहके नामपर जगा दिया। क्या अब्दाली हिन्दुस्तानको विधर्मियों और मूर्तिपूजकोंके पंजेसे छुड़ा मुसलमानी बादशाहको बचाकर धर्मका रक्षक नहीं हो जायगा? अब्दाली भी अपने लड़केकी हारसे लज्जित हुआ पड़ा था, क्योंकि मरहठोंने हिन्दुस्तानका ताज उसके हाथसे छीन लिया था। उन्होंने उसे मुलतान और पंजाबसे निकाल ही नहीं दिया, प्रत्युत काबुल और कंधारपर भी "हिन्दुस्तानके राज्यका भाग होने" का दावा किया। पर इसका बदला वह कुछ न दे सका। पर अब वह फिर भारतपर आक्रमण करने, इस राज्य-को अधिकृत करने तथा मरहठोंकी हिन्दू-पाद-पादशाही स्थापित करनेकी उच्चाकांक्षाको, जो सामान्यतः सम्पूर्ण हो चुकी थी, नाश करनेको उद्यत हो गया। उसने इस गुटका नेता बनने-का वचन दे दिया और एक बृहत् सेनाके साथ सिन्ध पार कर लाहौर ले लिया।

अब्दालीके हमलेका समाचार ज्योंही दिल्ली पहुंचा, नजीब-खांने नक़ाब उतार दी और खुल्लमखुला अब्दालीका अनुयायी बन गया। अब दत्ताजीको पेशवाकी आज्ञाकी अवहेलना करनेकी अपनी भूल मालूम हुई और उसने यह समझ लिया कि नजीब और शुजाने पूरी तरह धोखा देकर मुझे दुश्मनोंके बीच बेतरह फांस दिया। नजीब और शुजा एक तरफ़ थे और रुहेले तथा अब्दाली बड़ी भारी सेनाओंके साथ पीछेसे आ रहे थे। मरहठोंकी अटक और लाहौरमें पड़ी छोटी २ सेनाओंको इस

सुविशाल फ़ौजके सामने नतमस्तक होना पड़ा था। केवल मात्र एक नवीन हिन्दू-सम्प्रदाय अर्थात् सिक्ख-शक्ति थी जो बड़ी वीरतापूर्वक उत्तर भारतमें मुसलमानोंका सामना कर रही थी। इन बहादुर शूरवीरोंने शक्तिभर उनको नष्ट करनेका प्रबल प्रयत्न किया और उन्हें निर्बल करते रहे। पर अभीतक ये लोग सुसंगठित नहीं थे और अपने सूबेको भी स्वतंत्र न कर सके थे। वह समय अभी आनेवाला था। मार्गमें बेरोक-टोक चले आनेके कारण शीघ्रही अब्दाली सरहिन्द पहुंच आया। राजपूताने तथा अन्य स्थानोंके भी बहुतसे राजे और राजकुमार मथुराके सत्यानास करनेवाले और हिन्दुत्वके कट्टर शत्रु अब्दालीसे सहानुभूति रखते थे। केवल एक दत्ताजीकी सेना थी जो अब्दालीके "दिल्ली-सम्राट" बननेके मार्गमें बाधक थी। दत्ताजीने होलकरको शीघ्र सहायताके लिये आनेको लिखा, पर नजीवके उस धर्मपिता, सेनापतिने अपनेको छोटे २ सरदारोंके साथ लड़नेमें व्यस्त रखना ही उचित समझा। इस प्रकार अपार शत्रु-सेनामें फँसी हुई मरहठा फ़ौजको अपनी जान बचानेका केवल एक मार्ग था कि वह दिल्ली छोड़कर हट जाय। प्रत्येक अनुभवी और शूरवीर पुरुषने दत्ताजीसे प्रार्थना की कि होल्करके आनेतक यहांसे हट चलिये; यहांतक कि उसके भतीजे जानकोजी रावने भी जो एक बहादुर नौजवान पुरुष था, यही प्रार्थना की, पर सब व्यर्थ हुई। इस ज्ञानने कि मेरे भोलेपनके कारण इस सेनापर कुचल डालनेवाली विपत्ति आई

है, उसके दिमाग़पर भारी बोझ लाद दिया। उसने नजीबकी जान बचाने और उसपर विश्वास करानेवाले भोलेपनमें कायरताको न जोड़नेका दृढ़ निश्चय कर लिया था। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको जो उससे पीछे हटनेको कहता, वह केवल एक ही उत्तर देता था कि—"जो चाहें हट जांय। मैं किसीको विवश नहीं करता, पर मैं अपनी जगहसे नहीं हिल सकता। हटकर मैं नानासाहब और भाऊको कौन मुंह दिखलाऊंगा? मै लड़ाईमें अब्दालीका सामना करूंगा और या तो उसे मिटा दूगा, या लड़ते हुये स्वयं मर जाऊ गा।"

इसी बीचमें गाज़ोउद्दीनको मालूम हुआ कि मेरी जान और जगहके लालायित पठानोंका बादशाह साथी है, अतएव उसको बाहर निकाल मार डाला और दूसरे मनुष्यको गद्दीपर बिठा मरहठी सेनासे जा मिला।

दत्ताजीने अपनी प्रतिज्ञानुसार ही कुरुक्षेत्रमें अब्दालीका सामना किया। उसकी व्यक्तिगत वीरताके कारण मरहठे सिपाही इतने उत्तेजित हो उठे कि अब्दालीको विवश कर पीछे हटा दिया, जिससे उसे विश्वास हो गया कि अकेला संधियाका सामना करना दुष्कर है। अतएव उसने यमुना पार करनेका उद्योग किया, जिसमें सफलता प्राप्त करनेके पश्चात् शुक्रतालपर नजीबखांकी सेनासे जा मिला। शुजा भी अहमदखां, बङ्गश और कुतुबशाहके साथ उसे वहीं मिला। मुसलमानोंका गुट इस बार इतना भारी हो गया जितना कभी नहीं था। अब

यह स्पष्ट हो गया कि इस ज्वारका रोकना अकेले दत्ताजीके लिये असम्भव है; इसलिये सलाहकारोंने एक बार फिर उसे पीछे हटनेके लिये कहा। पर उस वीरने पहलेहीकी तरह दृढ़ उत्तर दिया "जो चाहें चले जांय, दत्ताजा अवश्य सिपाही-धर्मका पालन करेगा"। इस वीर सेनापतिके मुखसे निकले हुये ये शब्द निरर्थक न गये, प्रत्युत इनका बड़ा प्रभाव पड़ा और किसीने उसका साथ न छोड़ा। १० जनवरी सन् १७६० ई० को मरहठी सेना यमुनाके घाटपर पहुंचनेके लिये रवाना हुई, ताकि वह अब्दालीको, जो यमुना पार करनेके उद्योगमें था, पीछे हटाये। लड़ाई प्रारंभ हुई और क्रमशः बाराजी, मालोजी तथा अन्यान्य मरहठे-सेनापति वीरताके साथ अपार शत्रु-सेनाका सामना करते हुये बलिदान हो गये। दुश्मन मिल गये और प्रत्येकको पकड़ लिया। संयोगवश मरहठोंकी ध्वजा रुहेला और पठान सेनाके बीचमें घिर गई; जिसे बचानेके लिये मरहठे आगे बढ़े और घमासान युद्ध होने लगा। दत्ताजी और जानकोजीको झंडेका खतरा बर्दाश्त न हो सका; वे दोनों ही टूट पड़े और लगे शूरवीरता दिखाने। एकाएक बहादुर जानकोजीको गोली लगी और वह घायल होकर घोड़ेसे गिर पड़ा। दत्ताजीने इसे देखा, पर किसी रक्षित जगहपर जाकर लड़नेके बजाय सीधे आगे बढ़ा। जो शत्रु सामने आया मारा गया और अपने अनुयायियोंके साथ दत्ताजी आगे बढ़ता ही गया; यहांतक कि शीघ्रही शत्रु-सेनामें मिलकर बेतरह फस

गया। आखिर होनी होकर ही रही, दत्ताजीको गोली लगी, जिससे अत्यन्त घायल होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा।

नजीबखांको धर्मगुरु और पठान-स्कीमके एक उत्साही कार्य-कर्त्ता कुतुबशाहने मरहठा-सेनापतिको गिरते देखा और वहां जाकर इस प्रकार व्यंग शब्दोंमें पूछा "पटेल, क्या हम लोगोंसे फिर लड़ोगे?" मरते हुये जेनरलने निर्भीक उत्तर दिया "हां, अगर बचा तो मैं फिर लड़ूंगा।" इन शब्दोंका उस वीरके मुखसे निकलना था कि उस नीच और कायर नजीबका क्रोध भड़क उठा। उसने घायल योद्धाको पैरकी ठोकर मारी और तलवार खींच बड़े गर्वके साथ उसका सिर काटकर ले गया!!

इस प्रकार दत्ताजी मारा गया। आजतक संसारमें अपनी जातीय ध्वजाको किसी सिपाहीने ऐसी सचवाईके साथ न बचाया और न उसकी रक्षामें ऐसी वारतापूर्वक अपनेको बलिदान किया, जैसा इस वीर मरहठाने किया। इस मृत्यु और मरते हुये योद्धाके कायरतापूर्ण अपमानका समाचार महाराष्ट्र पहुंचा। प्रत्येक हृदयमें प्रतिहिंसाकी अग्नि जल उठी और सारे मनुष्योंने एक स्वर हो बदलेकी आवाज़ उठायी।

बालाजी और भाऊने अभी उसी सप्ताह उदगिरके स्थानपर शानदार विजय प्राप्त की थी और चाहते थे कि हैदरअलीको कुचलकर दक्खिन स्वतंत्र करनेका काम सम्पूर्ण करदें। ठीक उसी समय दत्ताजीकी पराजय और उनका मृत्यु-समाचार उनको

मिला। उन लोगोंने समयोचित कार्य करनेकी तैयारीमें एक क्षण भी देर नहीं की। यद्यपि उसी सप्ताह उन्होंने दक्षिणमें एक बड़ा युद्ध किया था, तोभी एक दिन भी विश्राम न लेकर, अपने सेनापतियों और मंत्रियोंको पटडूरमें इकट्ठे हो जानेकी आज्ञा दी और गंभीर प्रश्नपर भलीभांति विचार करके अब्दालीका सामना करने और मालवा पहुंचनेसे पहले ही उससे लड़नेके लिये एक शक्तिशाली सेना भेजनेका निश्चय किया। महाराष्ट्र-नवयुवक सेनामें भरती हो गये। समशेर बहादुर, बिट्ठल शिवदेव, मानाजी धेगुडे, अन्ताजी मनकेश्वर, मने निम्बलकर तथा बहुतसे अन्यान्य पुराने योद्धा और सेनापतियोंने फिर अपनी-अपनी बागडोर सँभाली।

उदगिर-विजेता भाऊ उसका सेनापति बनाया गया और बालाजीके ज्येष्ठ पुत्र नवयुवक राजकुमार विश्वासराव भी, जो अभी उदगिरमें ख्याति पा चुके थे और अपनी जातिके आशा-प्रदीप थे, भाऊके साथ गये। इब्राहिम गार्दी, जो उस समयका विख्यात तोप चलानेवाला था, रिसालेका अध्यक्ष बनाया गया। दामाजी गायकवाड़ और सन्तोजी बाग तथा अन्यान्य सेनापति क्रमशः आगे मिलते गये। कई राजपूत राजाओंके यहां भी,जो उत्तर भारतवासी थे,दूत और पत्र भेजे गये कि हिन्दुत्वके विरोधी तथा मथुरा और गोकुलके सत्यानास करनेवाले विधर्मियोंके साथ युद्ध करनेमें वे मरहठोंकी सहायता करें। विन्ध्याद्री और नर्मदा नदियोंको पार कर मरहठा-सेना

चम्बलतक जा पहुंची। मरहठोंकी इस विशाल सेना और शक्तिको देखकर समस्त उत्तर भारतवर्ष भयभीत और स्तम्भित हो रहा। शत्रु भाव रखनेवाले सब राव, राने, नवाब और खाँ साहबान डर गये; किसीको मरहठोंकी ओर उंगली उठानेका भी साहस न हुआ। शीघ्र ही जानकोजी शिन्धे भी अपनी सेनाके साथ भाऊसे आ मिला। सारी महाराष्ट्र-सेनाने उस नौजवान और सुन्दर शूरवीर राजकुमारका बड़े उत्साह और प्रेमसे स्वागत किया और उसके वदानके युद्धमें वीरगति प्राप्त चचा दत्ताजीको यादगारीकी प्रतिष्ठा उसीपर प्रदर्शित की। भाऊने उस शूरवीर राजकुमारके स्वागतमें, जिसने केवल बीस वर्षकी अवस्था होते हुए भी कई लड़ाइयोंमें विजय प्राप्त की थी, और अपनी सेना तथा धर्म-रक्षाके लिये कितनी ही भयानक चोटें खाई थीं, एक बृहत् सभा की और उसको सर्वसाधारणके सामने बहुतसे बहुमूल्य वस्त्रादि भेंट दिये। जिस समय वीर विश्वनाथराव, जो बालाजीकी अनुपस्थितिमें महाराष्ट्र-जातिका अनुपम नेता था, जानकोजीसे मिलनेके लिये आगे बढ़ा, उस विशाल जातीय सेनामें उपस्थित प्रत्येक मनुष्यका हृदय हिल उठा। ये दोनों ही नवयुवक एक-से-एक सुन्दर, बहादुर और अपनी जातिवालोंके आदर्श और अभिलाषा-को पूर्ण करनेवाले तथा हिन्दू-जातिकी उठती हुई आशाकी सजीव मूर्ति थे। नजीबखांको धर्मपुत्र मानने और दत्ताजीकी सहायताके लिये आनेमें असावधानी करके भयंकर भूल

करनेवाले मल्हारराव होल्कर भी अपने कियेका फल भुगत यानी दत्ताजीकी पराजयके पश्चात् स्वयं अब्दालीसे पराजित होकर भाऊसे आ मिले।

अब भाऊकी इच्छा यमुना पार कर, अब्दालीको नदी-तटपर पहुंचनेसे पहले ही हरानेकी हुई। उसने गोविन्द पन्त बुन्देला-को आज्ञा दी कि तुम सुअवसर पाते ही अब्दालीकी फौज-के पिछले भागपर आक्रमण करो और उसकी रसदकी सहायता बन्द कर दो। पर नदी बढ़ी थी और इतनी बड़ी शत्रु सेना उसके दूसरी ओर पड़ी थी, इसलिये उसका पार करना अत्यन्त दुष्कर था; इसलिये भाऊने दिल्ली जाकर उसे अब्दालीके पंजेसे छुड़ानेका निश्चय किया। उत्तर भारतके समस्त राजाओंमें केवल जाट मरहठोंकी सहायताके लिये आये। भाऊने स्वयं आगे बढ़कर बड़ी प्रतिष्ठाके साथ उनका स्वागत किया और दोनोंने पवित्र यमुना-जल स्पर्श कर अन्ततक शत्रुसे युद्ध करनेकी क़सम खाई।

अब सबकी आंखें दिल्लीको ओर फिरीं। हिन्दू और मुस-लमान दोनों ही ऐतिहासिक राजधानी दिल्लीको अधीन करनेका महत्व अनुभव करने लगे। भाऊने सिन्धिया, होल्कर और बल-वन्तराव मेहेण्डेलकी सेनाओंको दिल्लीपर आक्रमण करनेको भे-जा। पठानोंने, जो इसपर अधिकार जमाये बैठे थे, बड़े उत्साह-के साथ सामना किया, पर मरहठोंके साथ देरतक लड़नेमें अ-समर्थ होनेके कारण, अन्तमें शहरको मरहठोंके हाथ सुपुर्द कर

दिया। शहर विजय करके मरहठा-सेनाने किलेपर आक्रमण किया। मुसलमानोंने क़िलेकी रक्षाके लिये बड़ी वीरता दिखलाई, पर मरहठोंके सामने एक न चली और उनकी भयंकर शक्तिशाली तोपोंने मुसलमानोंके लिये क़िलेपर अधिकार रखना असंभव कर दिया। मुसलमानी सेनाने हार मान ली। राजधानी और किला हाथ आ जानेका समाचार सुनकर, हिन्दू-आन्दोलनके पक्षपाती सभी मनुष्योंने बड़ी ख़ुशी मनाई।

मरहठी सेनाने बड़ी धूमधामसे दिल्लीमें प्रवेश किया और अपनी ध्वजा पाण्डवोंकी राजधानीमें गाड़ दी। पृथ्वीराजके बाद हिन्दू या हरिभक्त सेनाके लिये यह पहला ही अवसर था कि वह एक स्वतंत्र झंडेके तले इस उत्सवके साथ दिल्लीमें घुसी। आख़िरकार पठान, रुहेला, मुग़ल, तुर्क और शेख़ सैय्यद आदिके बचाते रहनेपर भी मुसलमानी चांद हिन्दुस्तानकी राजधानीपर स्थिर न रह सका और उसके स्थानपर हिन्दू-पाद्-पाद्शाहीका झण्डा लहराने लगा। शक्तिशाली मुसलिम-फौज-के साथ जमुनाके दूसरे किनारेपर पड़ा हुआ अब्दाली कुछ भी न कर सका। सदाशिवराव अनुभव करने लगा कि चाहे एक ही दिनके लिये क्यों न हो, हिन्दू-पाद्-पाद्शाहीका स्वप्न मेरी आंखोंके सामने पूर्ण हो गया। यदि कोई जाति अपनी वीरतासे एक दिनके लिये भी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर सके, तो वह दिन सचमुच उसकी नसोंमें जीवनका रक्त प्रवाहित होनेका ज्वलन्त प्रमाण है। ऐसा दिन, बहुत थोड़े समयमें भी, उन्नति-

शील दशा, सफलता, सत्कर्मों, प्रसन्नताओं, दुःखों और आपत्ति-यों तथा कठिनाइयोंकी कई सदियोंकी हालत अङ्कित कर देता है। उसी दिन भलीभांति साबित हो गया और कोई शंका नहीं रह गई कि सातसौ वर्षके मुसलमानोंके अन्याय हिन्दुओंकी आत्माओं या उनके फिर युवावस्था प्राप्त करनेके विचारको कुचल न सके। वे केवल अपनेको बराबर ही नहीं साबित किया, उन्होंने प्रत्युत मुसलमानोंपर विजय भी प्राप्त की।

केवल भाऊपर निर्भर होता तो उसने विश्वासरावको सारे भारतवर्षका महाराजाधिराज बनाकर संसारको दिखलानेके लिये हिन्दू-पाद-पादशाही प्राप्त कर ली होती। लेकिन इतनी शीघ्रता न कर उसने राजनैतिक बुद्धिमत्ताका पुष्ट परिचय दिया। उसने सोचा कि मरहठोंके डरसे हिचकनेवाले मुसलमान ही नहीं, बल्कि ऐसा करनेसे सारे हिन्दू-राजे भी शत्रु बन जायंगे; तोभी उसने सब लोगोंकी परीक्षा करने और इस अद्वितीय शुभ अवसर-का दुश्मन और दोस्त दोनोंपर समयोचित प्रभाव डालनेका नि-श्चय कर लिया। इसलिये इस महत् कार्यके उपलक्षमें उसकी आज्ञासे एक शाही दरबार किया गया और विश्वासरावने सभा-पतिका आसन ग्रहण किया। महाराष्ट्रके प्रत्येक भागके प्रति-निधि उपस्थित थे। इतनाही नहीं, बल्कि शूरवीरता, धन, राज-नीतिकुशलता और विद्वत्ता सब वहां सुशोभित थी। दरबार आरम्भ हुआ। सेना और तोपख़ाने, सहस्रों घोड़े और हाथी तथा लाखों सिपाही और वीर, जो हिन्दू-खंडको उत्तरमें गोदावरी

से सिन्ध और दक्षिणमें समुद्र-तटतक ले गये थे ; सहस्रों नर-सिंगों, तुरही, बन्दूकों और फौजी ढोलोंके साथ विजयकी सलामी देनेको टूट पड़े। तब सेनापतिके पीछे सेनापति, राजनीतिज्ञ, सरदार, गवर्नर और वाइसराय नम्रतापूर्वक आगे आये, अपने प्रिय राजकुमारका हार्दिक अभिवादन किया, जैसा कि अपनी जातिका सभापतित्व ग्रहण करनेवाले बादशाहका करते, और उसे विजयी पदसे सम्मानित किरे। उस अद्भुत दृश्यके देखनेवालोंने उसका अर्थ समझ लिया। इसमें भाग लेनेवाले प्रत्येक मनुष्यने अनुमान किया कि यह उस बड़े दरबारका रिहर्सल है। जिसमें अगर ईश्वरने चाहा तो इस नवयुवक राजकुमारको सारे भारतवर्षके महाराजाधिराज-पदसे विभूषित किया जायगा।

चौदहवां अध्याय
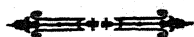
पानीपत

मुसलमान दिल्लीकी इस महान् कार्य्यवाहीका अर्थ समझनेसे वञ्चित न रहे। यह समाचार अग्निकी तरह चारोंओर फैल गया कि मरहठोंने अपने राजकुमारको समस्त भारतवर्षका महाराजाधिराज अभिषिक्त किया है। नजीबखां और दूसरे मुसलमान-नेताओंने इन कार्य्योंकी ओर इशारा कर अपने डरको न्यायोचित सिद्ध करनेके लिये मुसलमानोंको इस गम्भीर परिस्थितिका ज्ञान करानेका उद्योग किया। उन्होंने ज़ोरदार शब्दोंमें घोषणा की कि हिन्दू-पाद्-पाद्शाही ही नहीं, बल्कि नज़ीब और अन्य अत्युत्साही मुस्लिम-नेताओंके कथनानुसार "ब्राह्मण-पाद्-पाद्शाही" स्थापित हो गयी। आओ, प्रत्येक मुसलमान जो अपने नबीका सच्चा भक्त है, काफिरोंकी सेनासे लड़ें।

परन्तु नज़ीबखां और अन्यान्य मौलवियोंकी तरंगभरी, जोशमें लानेवाली वक्तृताओंका अपेक्षा, जो इसलामके नामपर की गई थीं, शुजा और दूसरे मुसलमानोंके स्वार्थ-भावका पलड़ा अधिक भारी रहा। रुहेले जैसे कट्टर हठधर्मियोंकी आंखें भी खुलने लगीं। अब्दालीके सम्मुख युद्ध करनेपर भी जो सफलता मरहठोंने प्राप्त की थी, उससे प्रभावान्वित हो, लोगोंको अब्दालीके

मरहठोंको रोकनेकी शक्तिमें अविश्वास हो गया। शुजाने अब्दालीसे मिल जानेपर दुःख प्रकट करते हुये भाऊको पत्र लिखा। भाऊने भी उसे मिला लेनेमें ही बुद्धिमानी सोची और अपने राजदूतद्वारा यह कहला भेजा कि मरहठे मुग़ल-राज्यको उलटना नहीं चाहते और अगर शुजा अब्दालीका साथ छोड़ दे तो हम उसीको प्रसन्नतापूर्वक शाहआलमका, जिसे शाहन्शाह मानते हैं, वजीर बना दें। रुहेलोंने भी आगा-पीछा सोचने और अब्दालीका साथ छोड़नेकी बातचीत प्रारम्भ कर दी। यह देखकर कि किस प्रकार सारे कार्य्य मेरे विरोधमें हो रहे हैं, अब्दालीने मरहठोंके साथ सन्धिकी बातचीत करनेका निश्चय किया और अपना राजदूत शर्तोंपर बहस करनेके लिये भेजा। लेकिन उसकी शर्तोंके मुताबिक़ पंजाब छोड़नेके लिये भाऊ तैयार न था और न केवल बहसोंके धोखेमें पड़कर वह इस सुअवसरको, जिसपर वह बहुत कुछ कर सकता था, जाने देना चाहता था। इसलिये सुलहकी बातचीत कुछ अंशोंमें जारी होते हुये भी उसने उत्तरकी ओर बढ़कर अब्दालीको एक बड़े महत्वपूर्ण स्थानसे, जो वह कुंजपुरमें अधिकार जमाये हुये था, हटा देनेका विचार किया। एक बड़ी सेना जिसका सेनापति समदखां था, उसकी रक्षा कर रही थी। कुतुबशाह भी वहीं था। ज्यों ही मालूम हुआ कि मरहठे आक्रमण करना चाहते हैं, वे खूब तैयारी करने लगे। अब्दालीने भी समदखां और कुतुबशाहको जमुनाके दूसरे पारसे आज्ञा भेजी कि जैसे भी हो, क़िलेकी रक्षा करो, और यह वि

श्वास दिलाया कि सहायताके लिये मैंने और सेना रवाना कर दी है।

दिल्ली छोड़नेपर भाऊको उचित जान पड़ा कि अपना कोष पूर्ण कर लूं। उसने आशा कर ली थी कि गोविन्दपन्त बुन्देला अब्दालीकी रसद बन्द कर देगा, उसके पिछले भागपर आक्रमण करेगा, तथा शुजा और रुहेलोंके सूबोंपर चढ़ाई करके उन्हे परीशान करता रहेगा, पर गोविन्दपन्त अपने जिम्मेके सभी कामोंके पूर्ण करनेमें असफल रहा। बुन्देलेसे किसी प्रकारकी आर्थिक सहायता न पानेपर भाऊ कोषपूर्तिका और ही उपाय सोचने लगा,क्योंकि कोष ही उसकी लड़ाईका मूल था। उसका ध्यान शाही सिंहासनके ऊपरकी चांदीकी छतकी ओर आकर्षित हुआ, जिसकी क़ीमत क़रीब १२ लाख रुपयेकी थी। उसने उसे तोड़कर मुद्रागृहमें भेज देनेकी आज्ञा दी। गुलामी और मिथ्याविश्वासने फजूल शोर मचाना प्रारम्भ किया।

कहा जाता है कि जाट भी यह सोचकर कि शक्तिमान मुग़ल-सम्राट्के शाही तख्तका, जिन्हें भगवानने हिन्दुस्तानका महाराज बनाया है, इस प्रकार अपमान करना देवस्वापहरण है। अगर ऐसा ही है तो जाटोंको सोचना चाहिये था, कि अगर प्रत्येक कार्य्य जिसमें सफल अपहरण भी सम्मिलित है, ईश्वरकी इच्छानुसार ही होता है, इसलिये पवित्र और ईश्वरीय है, तो शिवाजीद्वारा स्थापित रायगढ़ भी, जिसका उद्देश कोई धार्मिक अन्याय या अत्याचार करना न था, बल्कि जातीय स्वतन्त्र

जीवन बिताने, आत्मरक्षा और स्वतन्त्रताकी पवित्र भावनासे परिपूर्ण था, ईश्वरीय था। लेकिन जब औरङ्गजेब अग्नि और तलवार तथा धार्मिक हठ और आक्रमणकी सारी सेनाओंके साथ दक्षिणमें हिन्दुओंके जातीय जीवनको कुचलने और इस प्रकार नवीन हिन्दूराज्यको मिटा देनेके लिये आया, तो क्या उसने शिवाजीके सिंहासनको टुकड़े टुकड़े करनेमें आनाकानी की? तो फिर वे क्यों मुगल-सिंहासनके लिये, जो समस्त हिन्दुओंके लिये जिनमें जाट भी सम्मिलित हैं, केवल एक शैतानी शक्तिका चिन्ह था, जो सहस्रों हिन्दू-शहीदोंके खूनसे रंजित तथा उनके मन्दिरों और घरोंको नष्टकर बनाया गया था, और जिसका आस्तित्व मात्र हिन्दुओंकी जातीय और राजनैतिक मृत्यु थी, इतनी फिक्र करें? औरंगजेबने हिन्दुत्वके शाही तख्तको टुकड़े टुकड़े करनेके लिये अपना फौलादी पंजा उठाया था, उस समय न्यायशील देवता तथा हिन्दुस्तानके रक्षक स्वर्गीय दूतने उसके हाथसे हथौड़ा छीन लिया—और देखो आज उसीका शाही तख्त इसके नीच टुकड़े टुकड़े होकर पड़ा है।

सिपाहियोंकी तनखाह चुकानेके बाद भाऊ कुंजपुरके लिये आगे बढ़ा। शिन्दे, होलकर और बिठल शिवदेव उसके आगे आगे थे। पठान बड़ी वीरतासे लड़े। वह क़िला और शहर बड़े मज़बूत बने थे, लेकिन अच्छी तोपों तथा सिंधिया और अन्यान्य सेना-पतियोंद्वारा संचालित महाराष्ट्र-फौजका सामना मुसलमान देरतक न कर सके। मुसलमानी सेनाके बीच कुछ रास्ता पैदा

होते ही दामाजी गायकवाड़ने 'हर हर' जयघोषके बीच अपनी सेनाको आगे बढ़नेकी आज्ञा दी और उसकी सेना अन्धाधुन्ध घोड़े दौड़ाती हुई उनके बीचसे चली। भीषण युद्ध हुआ। सहस्रों पठान मारे गये। क़िला ले लिया गया। मुसलमानोंके खीमें लूट लिये गये और उनके सैकड़ों आदमी पकड़ लिये गये। उनका सेनापति समदखां मरहठोंके हाथ गिरफ्तार हो गया। वह एक बार पहले भी अन्तिम युद्धमें रघुनाथरावद्वारा बन्दी किया गया था, पर मरहठोंने रुपया लेकर उसे छोड़ दिया था, किन्तु उसने जानकी परवाह न कर मरहठोंसे विरोध करनेमें हठ किया और फिर उनके हाथमें पड़ गया।

युद्ध-समाप्तिके निकट भाऊ खड़ा२ होल्कर और सिंधियाको कुछ बातें बतला रहा था और हिन्दू-सेनाके बलकी प्रशंसा कर रहा था, जिसने उस कामको तीन दिनमें पूरा कर लिया, जिसमें शत्रुओंको अगर उतने महीने नहीं तो कमसे कम उतने सप्ताह लगनेकी आशा थी। ठीक उसी समय हाथीपर सवार दो प्रसिद्ध युद्धके कैदी लाये गये। पहला, पठानोंके कुंजपुर फ़ौजका सेनापति समदखां, और दूसरा, नजीबका शिक्षक, पठान षड्-यन्त्रकारियोंका प्रमुख तथा मरते हुये वीर दत्ताजीको लात मारनेवाला और नीचतापूर्वक काफ़िर इत्यादि कहकर उसका अपमान करनेवाला, कुतुबशाह था।

कुतुबशाहको देखते ही मरहठा-खून खौलने लगा। दत्ता-जीका बदला लेनेका ख्याल उस दृश्यपर मंडराने लगा। "क्या

तुम्हींने हमारे मरते हुये दत्ताजीको काफिर कहते हुये लात मारी थी ?" कुतुबशाहने जवाब दिया "हां, हमारे धर्ममें मूर्तिपूजकको मारना और उसके साथ काफिरकी तरह घृणा करना पवित्र माना गया है।" "तब कुत्तेकी मौत मरो" भाऊने गर्जकर कहा। तब सिपाही उस अपराधीको थोड़ी दूर एक तरफ ले गये और उसका सिर काट दिया। दत्ताजीका बदला पूरा हो गया। समद खांकी भी वही गति हुई।

नजीब खांका परिवार भी उसके दामाद और अन्य लोगोंके साथ मरहठोंके हाथ पड़ गया। लेकिन कुतुबशाह जैसी सख्ती उन लोगोंके साथ नहीं की गई। सच तो यह है कि युद्ध करते हुए जो लोग बन्दी किये गये थे, वे यदि मार भी डाले जाते तोभी अब्दालीको इस बर्त्तावपर किसी प्रकार उनके मनुष्यत्वपर टीका करनेका कोई उचित अधिकार न था; क्योंकि वह और उसके सहायक मुस्लिम-बादशाह ऐसे निष्ठुर महापापके अपराधी थे कि वे पंजाब, बादन तथा अन्य स्थानोंमें रणभूमिमें गिरे हुए मरहठोंकी नाक काट लेते और उनके सिरोंको काटकर शाही ख़ीमेके सामने ढेर लगा देते थे और वही भयंकर चिता जय-स्तम्भ समझी जाती थी। मरहठे भी इन अमानुषिक कार्य्योंका अनुकरण कर सकते थे, पर वे ऐसा करनेसे सर्वदा बचते रहे; और न ही उन लोगोंने मसज़िदोंको ढाकर, कुरानको जलाकर और पवित्र स्थानोंपर लूट मचाकर अपनेको प्रसिद्ध किया, जैसा कि अब्दाली, औरंगजेब, नादिर और मुहम्मदने सिद्धान्ततः किया था।

कुंजपुरमें हारनेके कारण अब्दालीकी प्रतिष्ठा और भी कम होने लगी। मरहठे उसकी सेनाको जो लगभग दस हज़ारके थी,बुरी तरहसे पराजित कर उसको आंखोंके सामने ही विजया-दशमी या विजयका दिन बड़ी धूमधामसे मना रहे थे। चूंकि वह एक योग्य सेनापति था, उसने फ़ौरन सोच लिया कि यदि कोई बड़ा ख़तरा उठाकर मैं कोई साहसिक कार्य्य करके न दिखा दूंगा तो मेरा काम बिगड़ जायगा। उसी समय उसने फ़ैसला कर लिया कि मैं किसी प्रकार भी यमुना पार कर, बाघाटके स्थानपर पहुंचकर कुंजपुर-स्थित मरहठी फौजको उनके आधार दिल्लीसे जुदा कर दूं।

अपने इस कार्य्यमें वह सफल हुआ और एक लाख मनुष्यों-की सेना मरहठों और उनको देहली लाइनके बीच खड़ी कर दी। इसी समय उसे एक और मौक़ा हाथ आ गया, जो पीछे चलकर उसकी सैनिकशक्तियोंसे अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ। वह यह था कि यद्यपि मरहठोंका संबन्ध अपनी आधार फ़ौजसे कट गया था तौ भी अब्दालीका संबन्ध शुजा और रूहेलोंके देशसे अब भी जारी था। पर इसमें भी जितनी सफ-लता उसे अपनी बुद्धिमानीसे नहीं मिली उससे कहीं ज्यादा गोविन्दपन्तके भाऊकी रसद बन्द करनेवाली आज्ञा न पालन कर सकनेके कारण हुई।

अब्दालीने मरहठोंको सामना करनेके लिये भलीभाँति तैयार पाया। बाघाटपर ज्योंही उसने जमुना पार की उसी समय भाऊ

युद्ध करनेके लिये विख्यात कुरुक्षेत्रकी ओर बढ़ा और उसने पानी-पतमें खीमा डाल दिया। मरहठोंको विश्वास था कि यदि गोविन्द-पन्त और गोपाल गनेशने अपना कार्य्य अच्छी प्रकारसे किया और शत्रुकी रसद बन्द कर उसके पिछले भागपर आक्रमण किया तो हम अब्दालीको पीस डालेंगे। पर गोविन्दपन्त उस कामके करने-में बुरी तरह असफल रहा। आवश्यकीय आज्ञा, धमकियां—भाऊ-ने सभीका आश्रय लिया, पर गोविन्दपन्तने इतना भी उद्योग नहीं किया जितना वह कर सकता था। जाटोंने पहलेही मरहठोंका साथ छोड़ दिया था और दूर एक सुरक्षित स्थान भरतपुर राज-धानीसे युद्धका तमाशा देख रहे थे। तो भी ध्यान देने योग्य तथा उनके लिये अभिमानकी बात है कि वे कभी कभी मरहठोंकी रसद आदि द्वारा सहायता करते रहे। लेकिन राजपूतोंने उतना भी नहीं किया। उनमें किसीको मरहठोंका मुक़ाबिला करनेकी शक्ति न थी, पर बहुतेरे चाहते थे कि वे नष्ट हो जांय। इन हिन्दू-राजाओंकी आत्मघातिनी आशा कहांतक सफल हुई, भविष्य इतिहास बतलावेगा। इसलिये यद्यपि दोनों दल शत्रु-सम्बन्धका रास्ता काट, उसे भूखों मार हमला करना चाहते थे; तौभी ज्यों ज्यों दिन बीतते गये, यह प्रकट हो गया कि अब्दालीकी अपेक्षा मरहठे कहीं अधिक क्षुधा-पीड़ित हुए।

आखिरकार २२ नवंबरको जानकोजी सिंधियाने अपने पड़ावसे चलकर मुसलिम-फौजपर आक्रमण किया। समस्त

रास्तेपर बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। नवयुवक महाराष्ट्र-सेनापति तथा उसके पुराने योद्धाओंकी अनुपम वीरताके सामने और डटे रहनेमें असमर्थ मुसलिम-सेना शामको पीछे भागी और मरहठों-ने सरगर्मीके साथ हराकर उसका पड़ावतक पीछा किया। केवल अन्धकारने उस दिन मुसलमानोंका पूर्ण पराजयसे बचा लिया। मरहठोंने अपने शूरवीरोंका विजयकी सलामीके साथ स्वागत किया। अपने सिपाहियोंके मस्तिष्कसे पराजयके नष्ट करनेवाले असरको निकालनेके लिये अब्दालीने १५ दिन बाद चुनी हुई सेनाको आज्ञा दी कि वह अंधेरा होते ही रवाना हो और मरहठी सेनाके मध्य भागपर रातके समय अन्धेरेमें आक्र-मण करे। लेकिन आगे बढ़नेपर जब इन लोगोंने बलवन्तराव मेहेन्डेलको २० हज़ार फ़ौज़के साथ युद्धके लिये प्रस्तुत आते देखा, तो इनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। पठानोंने फ़ौरन अपनी तोपें इस्तेमाल की। पर चूंकि मरहठे तोप नहीं लाये थे, इस-लिये उनकी अधिक हानि होने लगी। शीघ्रही जान पड़ा कि मरहठे डगमगा जांयगे। लेकिन बिजलीकी तरह उनका सेनापति घोड़ा आगे दौड़ा लाया और अपनी सेनाको ललकारते हुये उसने कहा कि झंडेको अपमानित न होने देना। उन्हें चारों ओरसे बटोर कर व्यूहबद्ध किया और अपनी तलवारको भयङ्कर रूपसे ऊंची उठाकर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी। मरहठे दौड़-कर शत्रुओंपर टूट पड़े, उनकी तोपें बन्द कर दी और मौतके मूंहमें आगये। सबसे आगे उनका वीर सेनापति बलवन्तराव मेहे-

न्डेल था। घमासान युद्ध प्रारम्भ हुआ। उसमें एक गोली आ-कर सेनापतिको लगी और वह मरकर गिर पड़ा। यह देख-कर मुसलमान विजयके साथ उसका सिर काटकर ले जानेके लिये उसपर टूट पड़े; परन्तु निम्बलकरने उनकी तलवारों और सेनापतिकी लाशके बीचमें अपनेको डाल दिया और गहरी चोट खानेपर भी ढके रक्खा, जबतक कि मरहठा-सेनाने आकर उसे शत्रुओंसे न छुड़ा लिया। इस समय तक हज़ारों पठान काम आ चुके थे और मुसलमानोंने और डटा रहना दुष्कर समझा। इस-लिये पहले तो वे लोग झिझके, फिर बुरी तरह पराजित हो पीठ-की तरफ घूमे और हजारों साथियोंको मरहठोंके सामने रण-भूमिमें मुर्दा छोड़ पड़ावकी ओर भागे। मरहठोंने एक बड़ी विजय प्राप्त की, परन्तु उन्होंने एक योग्य और बड़ा सेनापति खो दिया। उसकी लाश बड़ी प्रतिष्ठाके साथ छावनीमें लायी गई और उसके स्मारकमें एक विजयीको फौजी इज़्ज़त प्रदान की गई। भाऊको औरोंकी अपेक्षा उसकी मृत्युपर अ-धिक शोक हुआ और स्वयं उसकी अन्त्येष्ठि-क्रियामें सम्मिलित हुआ। उस वीरकी धर्मपत्नीने, जो अपने पतिसे कम बहादुर न थी, स्वयं भाऊके अत्यन्त आग्रह करनेपर भी उसके साथ चिता-पर जलकर अपनेको बलिदान कर देनेका दृढ़ निश्चय किया। समस्त सेना अपने मरे हुये वीरका अन्तिम सम्मान करनेको आई और हजारों मनुष्य भक्तिपूर्वक चिताको घेरकर प्रसिद्ध मृतक तथा वीर मरहठा-कन्याको, जो अग्निकी शिखाओंमें अपने

प्रिय मृतकके सिरको हिफाजतसे गोदमें रक्खे बैठी थी, दृढ़ भक्तिपूर्वक अभ्यर्थना करते हुये खड़े रहे।

इस प्रकार अब्दाली दो लड़ाइयां लड़ा और दोनोंमें उसकी बुरी दशा हुई लेकिन इससे मरहठोंके भूखों मरनेका प्रश्न हल न हो सका। इसमें सन्देह नहीं कि गोविन्दपन्तकी निद्रा अब भंग हुई और उसने अब्दालीकी रसद-राह बन्द कर दी; फिर भी अब बहुत देर हो चुकी थी। इसके सिवा वह भी अधिक दिन तक टिका न रहा, क्योंकि अते खांने दस हजार फ़ौजके साथ झूठे झंडके नीचे गोविन्दपन्तपर आक्रमण कर दिया। मरहठोंने होल्करका झंडा देखकर आगे बढ़ते हुए पठानोंको मित्र समझ लिया; जबतक कि उन्होंने सचमुच काटकर गिराना नहीं शुरू किया। आख़िरकार गोविन्दपन्त भी काट डाला गया, और उसने वह जीवन खो दिया, जिसे अगर वह भाऊके आज्ञानुसार चार महीने पहले ख़तरेमें डालता तो बहुत संभव था कि अपनी जाति और अपनेको भी एक बड़ी विपत्तिसे बचा लेता। पठानोंने गोविन्दपन्तका सिर काट लिया और अब्दालीने बड़ी ही मनुष्यता की कि उसे बहुतसी डींगोंके साथ भाऊके पास भेज दिया। तौभी सैनिक दृष्टिसे अब भी अब्दालीको परास्त करनेकी बहुत सम्भावना थी, क्योंकि इतनी चौकसी पहारा होते हुये भी मरहठोंकी हैरानीका समाचार दक्षिणमें जा पहुंचा और बालाजी अनुमानतः ५०००० मनुष्योंकी शक्तिशाली सेनाके साथ अपने आदमियोंकी सहायताके लिये रवाना हो गया। अगर मरहठे

एक महीना और डटे रह सकते तो दोनों सेनाओं के बीच अब्दाली पिस जाता। परन्तु फाकेका क्या उपाय था? सैकड़ों बोझ ढोने-वाले जानवर तथा घोड़े प्रतिदिन भूखसे मरने लगे। उनकी सड़नेकी दुर्गन्धि सैनिकोंके स्वास्थ्यके लिये उतनी ही भयावह होने लगी जितना। फाका अब केवल एक ही उपाय कुसमय युद्ध प्रारम्भ करनेका था। उमंगभरी सेना प्रतिदिन भाऊके खीमेंपर इकट्ठी हो करुणामय प्रार्थना करने लगी कि हमें भूख और दुर्गन्धिसे प्राणत्याग करनेकी अपेक्षा रणभूमिमें जाकर मरनेकी आज्ञा दीजिये। लेकिन क्या भूखों मरनेसे बचनेके लिये अब भी एक मार्ग न था यानी "विनाशर्त हिन्दू-महान-कार्य्यसे त्याग-पत्र दे देना", जिसके लिये उनके पूर्वजोंकी कई पीढ़ियां जीवित रहीं तथा उसी कार्य्यको करते हुये मरी थीं? तो क्या वे ऐसा कर सकते थे और अब्दालीको शाहनशाह मानकर अपनी स्वतंत्रतासे त्यागपत्र दे देते? नहीं; किसी प्रकार भी नहीं। कोई भी मरहठा उसके लिये राय नहीं देगा, आपत्ति-ग्रसित और क्षुधातुर होते हुए भी वे भयंकर विषमता (अन्तर) का ध्यान न करते हुए इस बुद्धि-मानीसे शत्रुका सामना करेंगे कि चाहे युद्धमें सफल-मनोरथ न हों तौभी विपक्षीकी सफलता धूलमें मिल जाय। इस श्रेणीके मनुष्योंमें भाऊ अजेय साहस और बलका स्तम्भरूप था, जो कभी भी विचलित न होता था। उसने निर्भय होकर प्रतिज्ञा कर ली कि हार न मानूंगा और न कोई ऐसा कार्य्य ही करूंगा जिससे जातीय प्रतिष्ठामें धब्बा लगे। और विजय प्राप्त करनेके

लिये चाहे कैसा भी दुःख क्यों न उठाना पड़े—और विजय भी चाहे न हो—तौभी कम-से-कम हार ऐसी हो कि हमारे अनुत्पन्न वंशजोंको सर्वदा उत्साह और स्वाभिमानसे भरती रहे। यह बहुत-सी सफलताओंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

एक आवश्यक सैनिक सभा निमंत्रित की गई और यह निश्चय हुआ कि पूर्ण रूपसे युद्धके लिये सन्नद्ध हो दिल्लीकी तरफ चला जाय और अब्दाली अगर सामना करे तो आक्रमण किया जाय और उसकी पंक्तिको काटकर उससे युद्ध किया जाय। 'अगर' की शर्त अनावश्यक थी। अब्दाली उन्हें जाने देनेवाला आदमी नहीं था।

हज़ारों वीर "हरिभक्तों"की सेना बड़ी जरीपताका या सुनहले गेरुवा झंडके चारों ओर एकत्र हो गई। फ़ौरन उनका सेनानायक नेताओं द्वारा निर्धारित भविष्य कार्य्यक्रमकी घोषणा करनेको उठ खड़ा हुआ। ज्योंही उन लोगोंको शत्रुसे स्पष्ट युद्ध करनेका फ़ैसला बतलाया गया, उस बृहत् शस्त्रधारी जमघटने उच्च ध्वनिसे इसका समर्थन किया। तब कार्य-क्रम समझाया गया। फिर उस महान नेताने प्रतिष्ठित जातीय झंडेकी ओर संकेत करते हुए, जिसके नीचे सब लोग खड़े थे, अपने मनुष्योंके सामने एक सारगर्भित वक्तृता दी; जिसमें उसने बतलाया कि किस प्रकार मौन वाणी द्वारा वह झण्डा अपना सुविख्यात इतिहास बतला रहा है; किस प्रकार रामदासने इसे शिवाजीको हिन्दू-पाद-पादशाहीके स्वधर्मराज्यके बृहत कार्यके चिता-

वनी-स्वरूप दिया था;किस तरह हमारे पूर्वज और अमर शहीदों-ने विजय-पर-विजय प्राप्त कर समस्त हिन्दुस्तानको अटकसे अर-काट और समुद्र पर्यन्त इसके अन्दर ला दिया; और किस प्रकार हिन्दुत्वके विरोधियोंने जब कभी यह उठा, तो या तो इसके सामने सिर झुकाया या नष्ट हो गये। क्या अब हम इसे शत्रुओंको सौंप दें? झुका दें? या जिस उद्देशका यह परिचायक है,उस महत् कार्य-के लिये लड़ते २ जान देदें? एक लाख शूरवीरोंने हर-हर महादेव-का जयघोष किया और अपनी-अपनी तलवार निकालकर जा-तीय झण्डे, उनके बतलाये हुये कार्य्य तथा अपने सेनापतिके प्रति, जिसने विजय-पर-विजय प्राप्त करनेमें उनका पथप्रदर्शन किया, भक्ति रखनेकी प्रतिज्ञा की।

१४ जनवरीके सुबह सारी मरहठी फ़ौज व्यूहबद्ध होकर नि-कल पड़ी। भाऊ और विश्वासरावने मध्य भागका संचालन किया। अपनी अपनी फ़ौजोंके साथ जानकोजी तथा मल्हारराव होल्कर उनके दाहिने और दामाजी गायकवाड़, यशवन्तराव पवार, अंताजी मानकेश्वर, विट्ठल शिवदेव, और समशेर बहादुर-ने बायेंकी रक्षा की। अपने उत्तम तोपखानेको वीर इब्राहीम गार्दी-की अध्यक्षतामें, जो मुसलमान होते हुये भी अपने मालिकोंका मरते दमतक नमकहलाल रहा, सबके आगे रखा। इस प्रकार भयङ्कर रीतिसे व्यूहबद्ध महाराष्ट्र-सेनाने अपना शिविर छोड़ा और सहस्रों नरसिंहों, नक्कारों, नफ़ीरियों और युद्ध-वाद्योंको बजाते हुये कूचका डंका बजा दिया।

ज्यों ही अब्दालीको सूचना मिली कि मरहठे आ रहे हैं, वह भी मुक़ाबिला करनेके लिये निकल खड़ा हुआ। उसका मध्यभाग शाहनवाज़ख़ाँ वज़ीर संचालन कर रहा था। उसके दाहिने रुहेले तथा बायें नजीबखां और शुजा थे। उसने भी अपना रिसाला सेनाके आगे रक्खा।

शीघ्र ही दोनों सेनायें मिल गईं। बन्दूक और तोपोंने अपना प्राणघातक कार्य आरम्भ कर दिया। उन बड़ी सेनाओंके चलनेसे उठी धूल और तोपोंके धुयेंके कारण आकाशमें अन्धकार छा गया। दिन निकलनेके बहुत देर बादतक सूर्य छिपा रहा। जब शत्रुओंने भलीभांति एक-दूसरेको देखा तो यशवंतराव पवार और विट्ठल शिवदेवने पहले पहल आक्रमण किया। घमासान युद्ध होने लगा। मरहठोंने एक छलांगमें रुहेलोंको पीछे हटनेके लिये विवश कर दिया और उनके ८००० आदमियोंको मार डाला। भारी चोटसे व्याकुल होकर दाहिना भाग लड़खड़ाने लगा और पीछे हटा। मुसलमानोंके मध्य भागपर भाऊ और नवयुवक वीर विश्वासरावने इस जोरसे आक्रमण किया कि सेनायें मौतके मुखमें मिली देख पड़ने लगीं। पठान भगा दिये जाने योग्य शत्रु न थे। दूसरी ओर भाऊ तथा नवयुवक राजकुमार विश्वासराव जैसे असाधारण पुरुषोंद्वारा संचालित महाराष्ट्र-सेना भी सम्भवतः अपना स्थान छोड़ना नहीं जानती थी। एक घंटेके भयंकर युद्धके बाद भाऊ और विश्वासरावने स्वयं वजीरद्वारा संचालित और लोहेकी तरह

मजबूत पठानोंके मध्यभागकी पंक्तिको तोड़ दिया। उनमेंसे सहस्रों रणभूमिमें मरकर गिर गये। वज़ीरका लड़का मारा गया और वह स्वयं भी बिना घोड़ेका हो गया। मुसलमानों-का मध्य भाग भी टूट गया और पीछे हटा। एक स्थानसे दूसरे स्थानपर हराते हुये भाऊ और विश्वासराव शत्रुओंकी ओर आगे बढ़े। यह देखकर वज़ीरकी रक्षाके लिये नज़ीबखां शीघ्रतासे आगे बढ़ा। पर उसीके पीछे भाऊकी सहायता और उसकी स्थिति मज़बूत करनेके लिये वीर जानको-जी भी अपने पुराने योद्धाओंके साथ तेजीसे आ गया। इतनी भयंकर लड़ाई होने लगी जितनी पहले कभी नहीं हुई थी। समस्त सेना वीरतापूर्वक लड़ने लगी। अब्दालीको स्पष्ट प्रकट हो गया कि मेरा दाहिना, बायां और मध्य—मेरी सारी सेना पीछे हट गई है, और शीघ्र ही तितर-बितर होना चाहती है। जल्द ही उसके सिपाही भागने लगे। तौभी वह अटल खड़ा रहा। उसने अपनी ही फ़ौजको आज्ञा दी, कि जो लोग अपना स्थान छोड़कर भागते हैं, उन्हें मार दो। सुबह ८ बजे युद्ध प्रारम्भ हुआ। तबसे ही यह भयंकर युद्ध निर्दयताके साथ जारी रहा। अब तीसरे पहर करीब २ बजेका समय हो आया, मगर सिपा-हियोंने आराम या मुहलत नहीं ली। रणक्षेत्रमें लहूकी नदी बह निकली। मरते हुओं और घायलोंकी भयानक चिल्लाहट और कराहनेकी आवाज़, जुझाऊ ढोल, नरसिंहे तथा बन्दूकों, और वीरोंके जे जेकार घोषके साथ मिलकर चारों ओर गूंज गई।

तीसरे पहर दो बजनेका समय था। मरहठोंकी वीरता तथा अटल बाधाका मुसलमान शत्रुओंपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। अब्दाली भी जो एक पुराना योद्धा सेनापति था मैदान छोड़कर यमुनाके दूसरी पार जानेको उद्विग्न हो गया। लेकिन बड़ी चतुराईसे १०००० मनुष्योंकी एक सहायक सेना उसने तैयार रख छोड़ी थी। यह सोचकर कि इससे अच्छा अवसर न मिलेगा उसने उन्हें स्वयं भाऊपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी। यह नवीन सेना बिजलीकी भांति मरहठोंपर जा टूटी।

तौभी सुबहसे थके भाऊ और उसके सिपाही नहीं झिझके। और अब भी उनकी नवीन प्रथम टक्करका उन्होंने बड़ी निर्भीकतासे सामना किया। एक बार फिर प्रत्यक्ष हो गया कि मरहठोंने युद्धको क़रीब करीब विजय कर लिया। अब्दाली अपनी अन्तिम चालाकी चल चुका था।

ठीक उसी समय एक सनसनाता हुआ गोला यमदूतकी तरह आया और वीर राजकुमार विश्वासरावको लगा जिससे घायल होकर वह हौदामें गिर पड़ा। ऐसा सुन्दर और साहसी नवयुवक शूर, जिसपर समस्त जाति आशा लगाये हुये बैठी थी, प्राणघातक चोट लगनेके कारण बेहोश हौदेमें लेट गया। यह समाचार भाऊके पास पहुंचा जो अपनी सेनाका अध्यक्ष हो, उन्हें ललकारता, मार्ग दिखलाता तथा उत्साहित करता हुआ ऐसा अद्वितीय युद्ध कर रहा था जैसा संसारने कभी नहीं देखा था। आकाशसे वज्रकी भांति वह ख़बर भाऊपर पड़ी। सेना-

पति अपने प्रिय भतीजेके पास जल्दीसे गया और देखा कि उसे प्राणघातक घाव लगा है और वह अपने शाही हौदेमें खूनसे लथपथ पड़ा है। उद्गिर-विजेताका पत्थरसा कलेज़ा भी थोड़ी देरके लिये टूट गया और उसके गालोंपर आंसू ढुलकने लगे। दुःखसे उसका गला रुंध गया और वह सिसकते २ पुकारने लगा "विश्वास! विश्वास!!" मरते हुये नवयुवकने आंखें खोलीं और वीरोचित शब्दोंमें उत्तर दिया, "प्यारे चचा, मेरे लिये अब क्यों देर करते हैं? अपने सेनापतिके न रहनेके कारण शायद हमारी पराजय हो सकती है।" मृत्यु-दुःख भी उस वीर मरहठा-राजकुमारको उसका कर्त्तव्य न भुला सका, अब भी उसका सर्वप्रथम विचार युद्धका ही था और वह चाहता था कि मैं मर भी जाऊं तो क्या, पर युद्धमें विजय प्राप्त हो। उसकी उत्तेजना-से भाऊ फिर उत्साहित हो गया और होश संभालकर बोल उठा, "इसकी क्या परवाह है, मैं स्वयं ही शत्रुको पराजित करूंगा।" ऐसा कहकर फिर वह अपनी शक्तिशाली सेनाको व्यूहबद्ध करके दौड़ पड़ा। सत्यवादी और शूरवीर अब भी अपने स्थानपर डटे थे और विजयश्री अब भी मरहठोंके हाथ थी।

पर जंगलकी आगकी भांति विश्वासरावका मृत्यु-समाचार समस्त महाराष्ट्र-सेनामें फैल गया, जिससे उनके पहले ही से श्रमित अङ्गोंपर बड़ा बुरा असर पड़ा। उसी समय दूसरी आपत्ति आई। दो हज़ार मुसलमानोंने एक या दो महीने पहले अब्दालीकी नौकरी छोड़ दी थी और भाऊने उन्हें अपनी

सेनामें भर्ती कर लिया था। युद्धमें शत्रुओंसे भिन्न समझनेके लिये उनके शिरपर मरहठा गेरुआ झंडाकी पट्टी बंधवा दी गई थी। शायद पहले हीसे तै कर लेनेके कारण, उन्होंने एकाएक मरहठा-निशान उतार फेंका और विश्वासरावकी मृत्युकी अफ़वाह और झूठा भय फैलाते हुए पीछेकी ओर मुड़े, जहां ख़ीमेंके रक्षक थे, और आक्रमण करके लूट-मार शुरू कर दी। पठानोंके इस दृश्यको देखकर पीछेके मरहठे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, और जो लोग आगेकी ओर लड़ रहे थे यह सोचकर कि शत्रुओंने पीछेकी ओर विजय प्राप्त कर ली है, पंक्ति तोड़कर भाग निकले।

शत्रुओंको विश्वास नहीं होता था कि यह क्या हो रहा है। उन लोगोंको पहले ही यह ज्ञात हो गया था कि अब हम प्रायः सत्यानासके निकट हैं। मरहठे दाहिने, बायें और मध्यमें भी विजय प्राप्त कर चुके थे। अब्दाली, जब कि अत्यन्त सख़्तीके साथ अपने ही भागते हुए सिपाहियोंका बध करता हुआ, अकेला अपनी सेनाको तितर-बितरनेसे रोक पूर्ण पराजयसे बचानेका उद्योग कर रहा था, एकाएक यह देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ कि किसी कारण मरहठोंके पिछले भागकी सेना भयभीत होकर भागनेकी फ़िक्रमें है। उनके कारण जाननेके पहले ही अब्दाली-की फ़ौजने उस भयभीत पंक्तिपर आक्रमण कर दिया। इस अन्तिम आक्रमणका मरहठा-सेनाका पिछला भाग मुक़ाबिला न कर सका। दाहिने भागपर युद्ध रुक गया और हार हो गई।

परन्तु अब भी जिस स्थानपर भाऊ अपने कुछ चुने हुए आदमियोंके साथ प्राण रहते जातीय झण्डेकी रक्षाके लिये लड़ रहा था, घमासान लड़ाई हो रही थी। अपने योद्धाओंको मारो-काटो इत्यादि शब्दोंद्वारा ललकारते-ललकारते भाऊका गला बैठ गया। जब वह और न बोल सका तो इशारेसे उत्साहित करते और उत्तेजना देते हुए अपने घोड़ेको दौड़ाता हुआ बिल्कुल मौतके मुंहमें ही चला गया। मुकुन्द शिन्डेने उसे इस प्रकार जानपर खेलता देख थोड़ी देरके लिये उसके घोड़ेकी लगाम पकड़ लेनेका साहस किया और अत्यन्त विनीत शब्दोंमें प्रार्थना की "सेनापति ! आपका बल मनुष्योंपर हो चुका, हमारे शूरवीर योद्धाओंने उतनी वीरता दिखला दी है जितनी मनुष्यकी शक्तिके अन्दर है। पर अब हट चलनेमें ही बुद्धिमानी है।" "क्या कहा ? हट चलना !" सेनापति भाऊने चिल्लाकर कहा, "क्या आप नहीं देखते कि हमारी जातिका शृङ्गार विश्वास मर गया और खेतमें पड़ा है ? मैंने एक एक करके सेनापतियोंका नाम लेकर आज्ञा दी और शत्रुओंसे लड़ते हुये उन्होंने अपनेको उत्सर्ग कर दिया। अब मैं किस प्रकार रण-क्षेत्र छोड़कर अपनी जाति और नाना साहेबको मुंह दिखलानेके लिये जीवित रह सकता हूं ? मारो, मारो और मृत्यु-पर्य्यन्त शत्रुओंका संहार करो। यही मेरी अन्तिम आज्ञा है।"

मुकुन्द शिन्डेने सेनापतिको प्रणाम किया और उसके अन्तिम आज्ञानुसार घोड़ेसे कूदकर हर-हर महादेवका जयघोष करता

हुआ शत्रुओंके मध्यमें जा टूटा। नवयुवक जानकोजी, यशवन्त-राव पवार, वीरके बाद वीर सबोंने वही किया। और भाऊ? उसे भी मानों युद्धका भूत लगा हो, वह भी अन्धाधुन्ध शत्रु-सेनापर जा टूटा और सबसे भयङ्कर युद्ध होनेवाले स्थानकी सेनाके बीच, अपने शब्दोंको सत्य करता हुआ, मरते दमतक जातीय झण्डे-की रक्षा करता हुआ विलुप्त हो गया।

अन्तिम समाचार जो संसारके लोगोंके पास सेनापतिके—वीर हिन्दू-सेनापतिके—सम्बन्धमें पहुंचा, वह यह था कि उस लड़ाईमें जो हिन्दू-जातिकी मुख्य हानि हुई, उसकी उसने वीरता और कर्त्तव्यपरायणताकी आध्यात्मिक महिमासे क्षति-पूर्ति कर दी।

पन्द्रहवां अध्याय

हार जिससे विजयी भी विलुप्त हो गया।

पानीपतकी लड़ाईसे मरहठोंकी अपार हानि हुई। जब भाऊ और उसके साथी शूरवीर अपने राष्ट्रीय झण्डेके चारों ओर घमासान युद्ध कर रहे थे, उस समय मरहठोंकी दूसरी जगहोंकी सेना हार रही थी और शत्रु बड़े उत्साहसे उनका पीछा कर रहे थे। सहस्रों धराशायी हो गये और सहस्रोंको विजयी मुसलमान कैदी बनाकर अपने खीमेमें ले गये और प्रातःकाल उन्हें कतारमें खड़ा कराकर कत्ल कर डाला। इस लड़ाईमें पठानोंको बहुत अधिक धन मिला।

किन्तु मरहठे शूरवीरोंने जो शत्रुओंको हानि पहुंचाई, वह भी कुछ कम न थी। पठानोंने विजय लाभ की, पर इसमें शंका थी। केवल अन्तिम दिवस उनके चालीस हजारसे कम सिपाही काम नहीं आये। गोविन्द पन्तका सिर काटनेवाले अत्तेखां सेनापति और उसमान तथा अन्यान्य मुसलिम-नेताओंका बध हुआ। नज़ीबखांको गहरी चोट लगी। इसके सिवा वे जान गये कि हमारी विजयका आधार सराहनीय शक्ति और योग्य सैन्य-संचालन जितना भी हो, वह संयोगपर ही अवलम्बित रही है।

मरहठे युद्धमें हार गये, परन्तु शत्रुओंपर इतनी कड़ी चोट पहुंचाई कि सर्वदाके लिये उन्हें युद्धमें विजय प्राप्त करनेमें असमर्थ

बना दिया ; क्योंकि यदि पानीपतमें हार हो गई तो क्या हुआ ? पानीपतमें मरहठे नष्ट हो गये, पर महाराष्ट्रमें अब भी जिन्दे थे। लोग कहते हैं कि प्रत्येक घरको अपने किसी-न-किसी सम्बन्धी-के लिये, जिसने पानीपतके उस भयंकर दिनको देखा और मारा गया था, शोक करना पड़ा था। तौभी उस समय महाराष्ट्र में बिरला ही कोई घर था, जिसने अपनी राष्ट्रीय मर्यादाको पुनः स्थापित करने और अपने सिपाहियों तथा सेनापतियोंके बलि-दानको सार्थक करने तथा जिस उद्योगमें उन्होंने अपने प्राण गंवाये, उसे फिरसे प्राप्त करनेकी प्रतिज्ञा न की हो। अब्दालीकी कार्य्यक्रमावलीको रोकनेके लिये पेशवा ५०००० सेनाके साथ पहले ही नर्वदा पार कर चुका था। अपने मनुष्यों और मुख्यतः परिवारपर आये हुए विपत्ति-समाचारको सुनकर, नाना साहबने पानीपतकी दुर्घटनाका कुछ भी सोच न कर, इसके पहले कि मरहठोंकी पराजय और उससे उत्पन्न बुराइयोंका जो उत्तर-भारतकी महाराष्ट्र-सेनामें आ गयी थी, अब्दाली लाभ उठा सके, उसकी शक्तिका नाश करनेका दृढ़ विचार कर लिया। यद्यपि उसका व्यक्तिगत शोक सचमुच असहनीय था और स्वास्थ्य पहले हीसे खराब था, तौभी अपने मनुष्योंके बदले और अब्दालीके हरानेके भावको उसने और भी उत्तेजना दी। उसने समस्त उत्तर-भारतके हिन्दू-राजाओंको साहसपूर्ण पत्र लिखा, जिसमें उनकी आत्मघातिनी नीतिकी निन्दा की गई थी, और लिखा था कि उस समय जब कि आपके धर्मके शत्रु तथा हिन्दुत्वके विरोधी

हिन्दुओंकी स्वतन्त्रताके नाश करनेके लिये इस प्रकार सुसंगठित उद्योग कर रहे हैं, आप लोगोंका युद्धसे अलग हाथपर हाथ धरे रहना ठीक नहीं है। उसने उन लोगोंको हिन्दूधर्मकी स्वतन्त्रताके युद्धमें अपनी सहायता करनेके लिये निमन्त्रित किया और विश्वास दिलाया कि पानीपतकी हार होते हुए भी मैं मुग़लोंके नष्ट-राज्यके स्थानपर अब्दालीके दूसरे मुसलिम-राज्यके स्थापित करनेकी महत्वाकांक्षाको निष्फल कर दूंगा। उसने लिखा, "यह सत्य है कि मेरा नवयुवक राजकुमार विश्वासराव अभिमन्युकी तरह युद्ध करता हुआ स्वर्गगामी हुआ। मेरा भाई भाऊ और वीर जानकोजी—किसीको मालूम नहीं उनका क्या हुआ तथा कुछ अन्य सेनापति और सरदार भी मारे गये लेकिन इससे क्या? आख़िर यह युद्ध है। हार और जीतका प्रश्न बहुधा संयोग और ईश्वरेच्छापर निर्भर रहता है। अतः इसका विशेष शोक नहीं। इन सबके होते हुए भी हम इसके लिये प्रयत्न करेंगे और देखेंगे।

इस अक्षय दृढ़ता तथा डटे रहनेके गुणने जिसे मरहठोंने इस विकट जातीय सत्यानाशके समय दिखलाया, उन्हें हिन्दुस्तानका स्वामी बना दिया। अब्दाली अपने शत्रुओंके स्वभावसे भलीभांति परिचित था और उनकी योग्यताका उसे पूर्ण ज्ञान था। ज्योंही पानीपतमें विजय प्राप्त हुई, अब्दालीने सोचा कि यदि मैं शीघ्र अपने देशको नहीं लौट गया तो जो थोड़ा लाभ प्राप्त हुआ है वह भी मुझे खो देना पड़ेगा। पानीपतमें बचे हुए नाना-

साहबके तमाम सरदार और आदमी उसके चारों ओर इकट्ठे हो गये। मल्हारराव होलकर, विट्ठलशिवदेव, नरोशङ्कर जानोजी भोंसले तथा अन्यान्य मरहठे-सरदार अपनी-अपनी सेनाओंके साथ ग्वालियरमें एकत्रित होने लगे और उनके साथ नाना साहबने दिल्लीपर आक्रमण करनेका उद्योग किया। मरहठोंके इस विचारको जानकर शुजा और नजीबखां भी थरथरा उठे, क्योंकि वे जानते थे कि पानीपतके युद्धमें विजय प्राप्त करनेका यह अर्थ नहीं है कि मरहठोंपर विजय प्राप्त कर ली। अतएव उन्होंने स्वतन्त्ररूपसे सुलहकी बातचीत करना प्रारम्भ किया और चापलूसी-भरे पत्र नानासाहबके पास भेजने लगे, जो ग्वालियरतक आ पहुंचा था। शुजा इस सत्य बातको जानता था कि अब्दाली, औरोंकी सहायताद्वारा भी, न तो हिन्दुओंको कुचल ही सकता है और न मुगलराज्यके डांवाडोल राज्य-स्तंभको स्थिरही रख सकता है। इसलिये उसने अब्दालीका साथ छोड़ दिया। अब्दाली दिल्ली लौट आया और वहां एक-दो सप्ताह ठहरा। अब मुसलमानोंके खेमें उखड़ गये और प्रत्येक अपनी रक्षाकी खोजमें पड़ गया। नानासाहब ५०००० सेना लेकर दिल्लीकी ओर बड़ी तेजीके साथ आ रहा था। जब यह समाचार पहुंचा कि अब्दालीके देशपर फारसवालोंने आक्रमण किया है, तो अब्दालीका ध्यान उसी ओर गया और चिन्तित हो दिल्ली और दिल्लीके राज्यको छोड़कर सन् १७६१ ई० में मार्चके महीनेमें सिन्धुको फिर पार करके जल्दीसे वह

अपने देशको लौट गया। इस प्रकार जिन इच्छाओंसे प्रेरित होकर उसने सिन्ध पार किया था, वे सारी मिट्टीमें मिल गईं और खाली हाथ जैसे आया था वापस चला गया।

यह भारतीय मुसलमानोंका, दिल्ली-राज्यको हिन्दुओंके आक्रमणसे विदेशीय स्वधर्मियोंकी सहायताद्वारा बचानेका अन्तिम प्रयत्न था। उन्होंने पानीपतकी लड़ाईको जीता; किन्तु इस जीतके साथ जो उनकी महाराष्ट्र-मंडलको सत्यानास करनेकी इच्छा थी और उसकी पकड़से वे जो मुसलमानी राज्यके गलेको छुड़ाकर उसकी रक्षा करना चाहते थे, उसका भी अन्त हो गया।

इसके पीछे विदेशीय पठान फिर कभी भी दिल्ली न पहुंच सके अर्थात् उन्होंने सिन्ध नदी पार करना बंद कर दिया। पानीपतके सत्यानासके पश्चात् हिन्दुओंकी एक दूसरी ही प्रबल शक्ति पंजाबमें बड़ी शीघ्रतासे बढ़ गई। यह शक्ति सिक्ख-मंडल था। इन शूरवीरोंने अपने धर्मपर बलिदान हुए पुरुषोंके रक्तसे अपने गुरुद्वारेकी जोड़ाई की, जो शीघ्र ही एक शक्तिशाली राज्य हो गया। दसवें गुरु गोविन्दसिंहजी, सूरमा और अन्य धर्मपर बलिदान होनेवाले तथा बन्दा, दोनोंकी पूजा हिन्दुस्तानके जातीय हिन्दू-शूरवीरोंकी श्रेणीमें सदव होती रहेगी। सिक्ख लोग हिन्दुओंकी स्वतंत्रताके लिये पंजाबमें लड़े। बन्दाकी अध्यक्षतामें कुछ समय तक वे अपने देशके कुछ भागको स्वतन्त्र करते रहे, किन्तु मुगलराज्यको बिल्कुल सत्यानास करके पंचनदके अन्तर्गत

देशको हिन्दूराज्यके भीतर लानेका काम अब भी मरहठोंके लिये पड़ा रह गया। ऐसे कठिन कामको उन्होंने किया और हिन्दू-ध्वजाको सीधे अटकतक पहुंचाया। पृथ्वीराजके पश्चात् यह पहला ही मौका था जब हिन्दुओंकी ध्वजा वहांतक पहुंची। जिस समय वे मुसलमानों तथा उनके सहायक नादिरशाह और अब्दालीके मुग़लराज्यके पुनरुत्थानके प्रयत्नको अपनी वीरता तथा बाधक-शक्ति द्वारा असफल बना रहे थे, उन्हीं दिनों सिक्खोंको अपने तईं एक शक्तिशाली मंडलमें संगठित करनेका अवकाश मिल गया। इतनी बड़ी हानि उठाकर अब्दालीने पानीपतके युद्धसे जो कुछ भी लाभ उठाया था और पंजाबके राज्यको अपने राज्यमें मिलानेका सुख-स्वप्न देख रहा था, इस नई शक्तिने उससे उसे वंचित कर दिया; क्योंकि पंजाब महाराष्ट्रीय हिन्दुओंके हाथसे निकल जानेपर भी मुसलमांनोंके हाथमें न रह सका।

अब्दालीके प्रस्थान करते ही पंजाबके हिन्दुओंने उसके नये राज्यपर आक्रमण किया और अपनी मातृभूमिको फिर लौटा लिया। मरहठोंने एक बार फिर दिल्लीमें प्रवेश किया और सम्पूर्ण भारतवर्षके महाराजा बन गये। सिक्ख यद्यपि पूर्वकी ओर दिल्लीतक अपना शासन न बढ़ा सके, तौभी वे इतने शक्तिशाली हो गये थे कि बाहरसे आनेवाले शत्रुओंसे अपनी रक्षा भलीभांति कर सकते थे। फिर कभी भयानक हठधर्मी या लोभी पठान या तुर्कोंकी इच्छा सिन्धु पार करनेकी न हुई।

उलटे सिक्खोंने ही सिन्धु नदी पार कर अपनी जातीय ध्वजाको बड़ी धूमधामसे काबुल नदीके किनारेतक पहुंचाकर उनकी सलामोंका बदला दिया। उनके आतंकसे मुसलमान इतने भयभीत हो गये थे कि पठानोंके घरोंमें सिक्खोंका नाम लेकर छोटे २ बच्चोंको भयभीत किया जाता था।

हिन्दू-दृष्टिसे अपना स्वार्थ सिद्ध करनेमें मुसलमान सर्वथा असमर्थ रहे। उन्होंने पानीपतकी लड़ाईमें विजय प्राप्त की, पर इस विजयमें वे उस युद्धमें हार गये जिसे उन्होंने हिन्दू-पाद्-पादशाही स्थापित करनेवालोंके विरुद्ध उठाया था और पानी-पतके बजाय उन्हें सारे हिन्दुस्तान यानी अटकसे समुद्रतकका प्रबन्ध छोड़ना पड़ा। पर उन्हीं दिनों जब कि हिन्दू इस बड़ी लड़ाईको उत्तर भारतमें लड़ रहे थे, एक तीसरा लड़ाका भी धीरे २ लड़नेवालोंकी श्रेणीमें आनेका प्रबन्ध करने लगा और इस भीषण तमाशेको देखता रहा। इसे ही पानीपतकी लड़ाईपर अधिक प्रसन्न होनेका उचित कारण था, क्योंकि पानीपतकी लड़ाईसे हिन्दू और मुसलमान दोनों शक्तिहीन हो गये और जो नवीन शक्ति अभी पलासीके मैदानमें पैदा हुई थी, उसे बढ़नेका समय मिल गया। पानीपतकी लड़ाईके वास्तविक विजेता न हिन्दू थे और न मुसलमान—वरन ये अंग्रेज थे।

यद्यपि यह बात सत्य है कि पानीपतकी लड़ाईने ईस्ट-इण्डिया-कम्पनीको कुछ दिनोंके लिये और जीवन-प्रदान कर दिया और मरहठोंको विवश किया कि वे अंग्रेजोंके साथ अपने

अंतिम समझौता करनेके विचारको स्थगित कर दें, तथापि यह सोचना भूल है कि इस लड़ाईसे अंग्रेजोंका कोई बड़ा स्थायी लाभ हुआ। हम आगे देखेंगे कि मरहठोंने शीघ्र ही पानीपतकी क्षतिको पूरा कर लिया। यदि मरहठोंमें घरेलू झगड़े न उत्पन्न हुए होते, तो पानीपतमें हार होनेपर भी उन्होंने अंग्रेजोंको भी जीत लिया होता। अंग्रेजोंकी सफलता मरहठोंके पानीपतमें हारनेके कारण उतनी अधिक न हुई जितनी अन्त समय उनमें आपसमें लड़ाई हो जानेके कारण हुई।

इस विषयमें मेजर इवानसवालका लिखना है कि पानीपतकी लड़ाईमें भी मरहठोंका गौरव और विजय रही। मरहठे हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियोंके लिये लड़े, पर उनके हार जानेपर भी विजयी अफगानोंको अपने देशको लौट जाना पड़ा और उसके पीछे उन्होंने कभी हिन्दुस्तानके कामोंमें हाथ न डाला।

जब अब्दालीके शीघ्र लौट जानेका समाचार और शुजा और नजीबखांके प्रार्थना-पत्र मरहठोंके पास पहुंचे, तो उनके सुखका पारावार न रहा। नेरोशंकरने पानीपतकी लड़ाईके पश्चात् लिखा, "ईश्वरको धन्यवाद है कि धर्मके स्तम्भ मरहठे-हरिभक्तोंकी सेना अब भी हिन्दकी स्वामिनी है।" सेनापतिका यह वीरता-पूर्ण वाक्य क्रमशः एकके पश्चात् दूसरे मरहठेके कानों-तक पहुंच गया और सभी कहने लगे कि पानीपतकी लड़ाई-की पराजयकी हमें चिन्ता नहीं है, भविष्यमें हम अवश्य विजयी होंगे।

इसी बीचमें नानासाहबका स्वास्थ्य क्रमशः शोचनीय होता गया, क्योंकि अन्तिम दो वर्षोंसे वह कमजोर होते गये थे और इसी समय पानीपतका दुःखद समाचार उनको मिला। उन्होंने शूरवीरोंकी भांति इसे सहन करनेका प्रयत्न किया, अपनी व्यक्तिगत दुःख-वेदनाको छिपाकर अपनी जातिको इतना उत्साहित और इस योग्य बनाया कि वह अपनी पराजयका बदला ले सके और बढ़कर एक शक्तिशाली और विजयी जाति बन जायं; किन्तु उसके हृदयमें विश्वास, भाऊ तथा बहादुर सैनिकों और सिपाहियोंकी मृत्युका दुःख ऐसा छा गया था, जिससे कोई भी वस्तु उन्हें शांति नहीं दे सकती थी। इनका स्वास्थ्य पहलेहीसे बिगड़ता जाता था; इस चिन्ताने और भी बिगाड़ दिया और अन्तमें वे २३ जून सन् १७६१ ईस्वीको इस असार संसारसे चल बसे। उस समय उनकी अवस्था केवल ४१ वर्षकी थी। इस प्रकार मरहठोंके एक वीर नेताकी असामयिक मृत्युने सारी प्रजाको दुःखमें डुबो दिया।

उनकी योग्यता और उनके चरित्रके सम्बन्धमें कुछ लिखना व्यर्थ है; उन्हें उनके कार्य शब्दोंकी अपेक्षा अधिक बतला सकते हैं। उनका राज्यप्रबन्ध भी न्यायपूर्ण और सर्वप्रिय था। उनके शासन-कालको मरहठे अब भी धन्यवादपूर्वक स्मरण करते हैं। यह उन्हींके लिये सम्भव था कि महाराज शिवाजीके हिन्दू-पाद-पादशाही स्थापित करनेके उद्देश्यको कार्य-रूपमें परिणत करें। वास्तवमें उन्होंने सारे भारतवर्षको यवनोंके पंजेसे मुक्त किया।

पृथ्वीराजकी पराजयके बुरे दिनके छः सौ वर्ष पश्चात् आज हिन्दू-गौरव सबसे ऊंची चोटीपर पहुंचा। निःसन्देह यदि वे संसारमें अपने समयके सबसे बडे आदमी न हों, तौभी उनमेंके एक व्यक्ति तो अवश्य थे। बालाजी उर्फ नानासाहबकी असामयिक मृत्युसे हानि, पानीपतकी लड़ाईकी हानिसे यदि अधिक न थी, तो उससे किसी अंशमें कम भी न थी। ये दो बड़े भयानक आघात,जो इस जातिपर एक साथ पड़े, इनसे अच्छा होनेके लिये इस जातिको कुछ समयकी अपेक्षा करनी पड़ी।

सोलहवां अध्याय

दानवीर माधोराव

नानासाहबकी मृत्युके पश्चात् मरहठोंको बिना प्रमुखका देख और यह विचारकर कि पानीपतकी लड़ाईमें महाराष्ट्र-मण्डल बिल्कुल शक्तिहीन हो गया है, शत्रु लोग उठे और उन्हें उलट देना चाहा। हैदरअलीको अवसर मिल गया और उसने मैसूरके राज्यको हिन्दू-राजाके हाथसे छीन लिया और मरहठोंके दक्खिन राज्यपर आक्रमण किया। निजाम हैदराबाद अपनी उद्गिरकी हारका बदला लेनेके लिये धीरे धीरे तैय्यारी करने लगा। अंग्रेज भी जितना नोच-खसोटकर ले सकते थे, उसके लेनेका प्रयत्न करने लगे। उत्तरमें मुसलमान ही नहीं, बल्कि राजपूत, जाट और दूसरे दूसरे राजे भी मरहठोंसे भिड़ने लगे। हर एकका यही प्रयत्न था कि अपने राज्यको जितना अच्छा हो सके, बना लें। रघुनाथ अपनी नीच इच्छासे प्रेरित होकर महा-राष्ट्र-मण्डलको बलवाइयोंका एक दल बनाकर लड़ाई करके अपने अधिकारमें लाना चाहता था। अभाग्यवश इसी समय इस हिन्दू-जातिके ऊपर और हिन्दू-स्वतन्त्रतापर शत्रु-दलका बादल मंड़राने लगा।

ऐसे समयमें राज्यकी भारी जिम्मेवारी बाजीरावके दूसरे पुत्र माधोरावके सिर पड़ी, जिसकी अवस्था इस समय केवल १७

वर्षकी थी। हिन्दू-जातिके सौभाग्यसे वह अपूर्व गुणों और योग्यताओंसे परिपूर्ण था और हिन्दू-पाद-पादशाहीका, जिसके लिये उसके पूर्वज अपना लहू बहा चुके थे, बड़ा कट्टर भक्त था। इसलिये उसकी अध्यक्षतामें महाराष्ट्र-जातिने अनेक कठिनाइयों-को झेलते हुए भी उन लोगोंके बीचमें जो इन्हें नीचा दिखाना चाहते थे, अपने राजनैतिक अस्तित्वको दृढ़ रक्खा।

पहले-पहल निज़ाम हैदराबादने अपने भाग्यकी परीक्षा की और सीधे पूनाके लिये यात्रा करनेकी इच्छा करने लगा। मरहठे जो हिन्दूधर्मकी रक्षाका बीड़ा उठाये हुए थे,उनकी हंसी करनेके लिये उसने टोंकके हिन्दू-मन्दिरको अपवित्र और सत्यानास कर दिया, लेकिन उसे पूर्ण निराशा हो गई, जब कि उसने देखा कि मरहठे अपनी राजधानीको बचानेके लिये २० हजार वीरोंकी सेना-को लेकर चले आ रहे हैं। उसकी उरालीपर बड़ी भारी हार हुई और उसे पीछे लौटना पड़ा। लेकिन रघुनाथने अपना षड्-यंत्र बड़े नीच विचारसे उठाया था, जिससे उसने अपनेही भतीजेके विरोधमें मरहठोंके दो दल कर दिये। ठीक इसी समय निजाम मरहठोंका नाश करनेके लिये एक बड़ी भारी सेना लेकर आया। भोंसले और दूसरे मरहठे-सरदार उसके पक्षपाती हो गये।

महाराष्ट्रका इतिहास पढ़नेसे ज्ञात होता है कि कई बार लोगोंमें स्वार्थपरता तथा अराजकताके भाव फैले; किन्तु जब कभी जातीय गौरवके भंग होनेकी सम्भावना दिखाई पड़ी, वे

जातीय प्रतिष्ठाको बचानेके लिये अपनी शत्रुताओंको भूल जाते जिससे स्वार्थपरता तथा अराजकताके भाव स्वतः मिट जाया करते थे, और लोग शीघ्रही महाराष्ट्र-मंडलके पक्षपाती बनकर, उसके उद्देश्यकी पूर्तिमें लग जाते थे। यह गुण मरहठोंमें बहुत कालतक विद्यमान रहा। इस बार भी ऐसा ही हुआ। मरहठे-सरदारोंने जो गृहकलहके कारण निजामके पक्षपाती हो गये थे, उसका साथ छोड़ दिया और मरहठा-दलमें सम्मिलित हो गये। निज़ाम बड़ी भयानक परिस्थितिमें पड़ गया। सन् १७६३ ई० में रक्षाभुवनमें एक बड़ा युद्ध हुआ, जिसमें मरहठोंकी बड़ी विजय हुई। निज़ामका दीवान मारा गया। उसके २२ सरदार घायल हुए और पकड़े गये। उसकी तोपें और युद्धकी सार सामग्री मरहठोंके हाथ लगी। पहली लड़ाईमें निज़ाम अपमानित हुआ था, उसका बदला लेनेके लये और मरहठोंमें कारबार नियत करनेके अधिकारको जतानेके लिये पूना आ रहा था, किन्तु उल्टे उसे मरहठोंको अपने राज्यका कुछ भाग देना पड़ा, जिसकी वार्षिक आय ८२ लाख रुपयेसे कम न थी। यह पहिली लड़ाई थी, जिसमें नवयुवक पेशवाने विजय प्राप्त की। इस विजयके कारण सब लोगोंको विश्वास हो गया कि यह नवयुवक पेशवा अवश्य हम लोगोंका नेता होनेके सर्व गुणोंसे सम्पन्न है।

निज़ाम हैदराबादको यह दिखलाकर कि मरहठे पानीपतकी लड़ाईमें पराजित होनेपरभी शक्तिहीन नहीं हुए हैं, माधोराव

साहसी हैदरअलीको दण्ड देनेके लिये आगे बढ़ा। हैदरअली इस समय मैसूरके पुराने हिन्दूराज्यको विध्वंस करके वहांका नवाव बन बैठा था और मरहठोंके भी कृष्णा नदी तकके राज्यपर धावा किया था। सन् १७६४ ई० में माधोरावने हैदरअलीपर आक्रमण किया। मरहठोंने पुनः धारवाद्को ले लिया। घोर-पांडे, विंचकर, पटवर्धन और दूसरे मरहठे-सेनापतियोंने हैदर-अलीको चारों ओरसे घेर लिया।

यद्यपि हैदरअली बड़ा चतुर सेनापति था, तिसपर भी रत्ती-पालके मैदानमें जी तोड़कर लड़नेके पश्चात् उसने यह अनुभवकर लिया कि मैं शत्रुओंके सामने अब अधिक नहीं टिक सकता। यह विचार दृढ़ करके वह बड़ी चालाकीके साथ हट जानेके विचारसे अपनी राजधानीकी ओर लौटा, किन्तु विडनूरके पास माधोरावने उसे आगेसे रोक लिया। एक भयानक लड़ाई हुई, जिसमें मुसलमानोंकी बड़ी भारी हानि हुई। इस लड़ाईमें माधोराव स्वयं सेनापतिके पदपर था। हैदरअलीके साथ फ्रांसी-सियों द्वारा सिखाई हुई बड़ी अच्छी सेना थी, फिर भी वह बुरी प्रकार हार गया और उसके हजारों घोड़े, ऊंट, तोपें विजयी मरहठोंके हाथ लगीं। हैदरअलीने सुलहके लिये प्रार्थना की, जिसको मरहठोंने स्वीकार कर लिया। इस सुलहनामेके अनुसार जो मुल्क मरहठोंने जीते थे, अपने पास रक्खे और बाइस लाख रुपया कर और "चौथ" का बकाया वसूल किया।

यदि माधोरावकी इच्छानुसार कार्य हुआ होता तो उसने हैदर-

अलीको इस शर्तपर न छोड़ा होता। लेकिन रघुनाथरावका नीच लालच मरहठोंके लिये हैदरअली और नजीबखांकी अपेक्षा अधिक हानिकारक हुआ। उसने कई बार नवयुवक पेशवासे बगावत की। संसारकी कोई वस्तु रघुनाथरावकी शक्तिशाली होनेकी इच्छाको नहीं दबा सकती थी और जिस पदके लिये वह प्रयत्न कर रहा था, उसके लिये वह सर्वथा अयोग्य था। उतने स्वतन्त्र रूपसे अपने भतीजेके विरोधमें विधर्म्मियोंके राजाकी सहायता करनेका नीच उपाय अवलम्बन किया और जबकभी लड़ाईमें हारकर पकड़ा गया और कैद किया गया तो अन्न-जल छोड़ भूखों मर जानेकी धमकी दी तथा इसी प्रकारकी और बातें करता रहा। यदि कोई मुगल-राज्यका अधिकारी बननेके लिये ऐसा करता तो एक प्याला ज़हर देकर या उसके बदनमें हंसी हंसीमें एक तीखी तलवार घुसेड़कर उसके भाग्यका निपटारा शीघ्रही कर दिया गया होता। किन्तु यह नवयुवक ब्राह्मण-राजकुमार सज्जनता और धर्मकी मूर्ति था। उसने अपने चचा रघुनाथरावको उसके राज्यके बांट देनेके प्रस्तावपर यहांतक लिख दिया कि, "चचा! आप राज्य बांटनेके लिये कहते हैं, किन्तु सोचिये कि इस बड़े राज्यका मालिक कौन है। क्या यह किसीकी पैत्रिक सम्पति है? सहस्रों शूरवीर तथा राजनीतिज्ञोंने इसे इतना बड़ा और प्रभावशाली बनानेके लिये प्राणपणसे कार्य किया है। राज्य-की बागडोर सदैव एक पथ-प्रदर्शकके हाथमें रहनी चाहिये। लेकिन यदि इसे बांटकर खण्ड-खण्ड करके भिन्न-भिन्न राज्य

बना दिये जायं तो क्या वे राज्य इस प्रकार अपने प्रभाव और शक्तिको अक्षुण्ण रख सकेंगे? मैं सोचता हूं कि कभी नहीं। इसको बांटकर शक्तिहीन बनानेकी अपेक्षा मैं यह अच्छा समझता हूं कि अपनेको इससे बिल्कुल पृथक कर लूं और आपको बिना किसी प्रतिद्वन्द्विताके इस राष्ट्र-मण्डलका नेता समझूं। मैं अधिनायकके पदको त्यागकर अपने आपको आपकी सेनामें एक सिपाहीकी जगह भरती करके जो कुछ आप मुझे अपना जूठा फेंक देंगे उसीपर अपना निर्वाह करूंगा; किन्तु मैं आनेवाली सन्तानके सामने उन आदमियोंमें अपनी गणना नहीं कराना चाहता, जो अपने स्वार्थके लिये महाराष्ट्रके महाराष्ट्र-मण्डलको सत्यानास करनेवाले कहे जांयगे।" किन्तु मरहठोंके कुलमें रघुनाथराव जैसा दूसरा कोई अयोग्य और क्षणभङ्गुर प्रकृतिका पुरुष नहीं हुआ। इसलिये महाराष्ट्रवासी बलवान, त्यागी, शूरवीर पेशवाके रहते हुए कभी भी रघुनाथरावको अपना नेता न मानते, चाहे वह इस पदको भले ही ग्रहण कर लेता।

सतरहवां अध्याय

पानीपतकी लड़ाईका बदला मिला।

हियांगसांग, एक चीनी यात्रीने लिखा है कि मरहठे अपनी भलाई करनेवालोंके सर्वदा कृतज्ञ होते हैं। अपने शत्रुओंपर निर्दयी होते हैं। यदि उनका कोई अपमान करता है तो वे उसका बदला लेनेके लिये अपनी जान जोखिममें डाल देते हैं।

जिन लोगोंने पानीपतकी लड़ाईमें मरहठोंके विपक्षमें भाग लिया था, उनको उचित दण्ड देनेके परम कर्त्तव्यको मरहठे पारिवारिक अनबन तथा आपसकी कपट-लड़ाई और हैदरअली तथा टीपूकी नई शक्तिका सामना करते हुए भी किसी प्रकार न भुला सके। नानासाहबके मरनेके पीछे कुछ समयतक होलकर और शिन्डे—दो मरहठ-सरदार उत्तरी भारतवर्षमें मरहठोंके अधिकारकी रक्षा बड़ी उत्तमतासे करते रहे। जब रघुनाथ-रावके पारिवारिक झगड़ेका उचित प्रबन्ध हो गया, तब माधो-रावने सन् १७६९ ई० में विपक्षियोंको दण्ड देनेके लिये एक सेना विनीवेलकी अध्यक्षतामें उत्तरी भारतवर्षकी ओर भेजी। उत्तरमें रहनेवाले सारे मरहठे-सेनापतियोंको आज्ञा दी कि वे इससे मिल जांय। नर्मदा नदीको पार करनेपर हिन्दू-राज्यके प्रभुत्वको स्थापित करने और उसकी आज्ञाओंका पालन कराने और जिन

हिन्दू-राज्योंने सन् १७६१ ई० के पीछे मरहठा-राज्यको सत्यानास करनेका उद्योग और उपाय किया था; उनको शक्तिहीन बनानेके लिये मरहठोंकी शक्तिशाली सेना बुंदेलखंडमें पहुंची और छोटी छोटी अशांतियोंको दबाती हुई तथा हठी और धनी राजाओं और तालुकेदारोंको दंड देती हुई बिना किसी भारी रोक-टोकके चम्बल नदीपर पहुंची। जाट लड़नेको तैयार हुए, क्योंकि इन लोगोंने पानीपतकी लड़ाईके समय आगरा इत्यादि दुर्गोंपर अधिकार कर लिया था और अब उन्हें देनेमें आनाकानी करते थे। भरतपुरके पास एक घमासान लड़ाई हुई। जाट बड़ी शूरता और वीरताके साथ मरहठोंसे लड़े; किन्तु अन्तमें मरहठोंके आक्रमणको रोकनेमें असमर्थ होकर, लड़ाईमें अपने सहस्रों मरे हुए साथियों, अपने खेमों, अपने हाथी घोड़े और लड़ाईके सामानको छोड़कर भाग गये, जो मरहठोंके हाथ लगा। इसके पश्चात् शीघ्र ही उनके नेता नव्वाबसिंहने मरहठोंका जो भाग दबा लिया था, उसे लौटाकर और ६५ लाख रुपया लड़ाईका व्यय देकर मरहठोंसे सुलह कर ली। अब मरहठोंकी सेना दिल्लीकी ओर इस आशामें बढ़ी कि उसके शत्रु उसका वहां सामना करेंगे। लेकिन उस मक्कार और बूढ़े नज़ीबखांने बड़ी नम्रता और दीनताके साथ मरहठोंके विजय करते हुए आनेके समाचारको सुनकर उनके पास आकर प्राण-भिक्षा मांगी, जो कुछ द्वाबामें लूटा था, मरहठोंके हवाले किया और मरहठोंको दिल्लीका राजा स्वीकार कर

लिया। यदि मरहठे उसे क्षमा कर देते और वह फिर जीवित रहकर नीचता करने पाता तो जो कुछ मरहठे चाहते वह करने-को उद्यत था, किन्तु मृत्युको छोड़कर और कोई वस्तु इस पानी-पतकी लड़ाईके रचनेवाले मक्कारको, उन मनुष्योंके क्रोधसे जिनकी पानीपतमें हार हुई थी, बचानेवाली नहीं दृष्टि पड़ी।

मरहठोंने दिल्लीमें प्रवेश किया। वहांपर अकबर और औरंगज़ेबकी राजधानीमें कोई भी उनका सामना करनेवाला न निकला। अहमदशाह अब्दालीने, जिसकी अंतिम लड़ाईके अंतमें बुद्धि ठीक हो गयी थी और पेशवासे पहिलेहीसे पत्रव्यव-हार करने लगा था, अपने राजदूतको दिल्ली भेजा। बहुत वाद-विवाद होनेके पश्चात् दोनों पक्ष एक समझौतेपर पहुंचे, जिसके अनुसार अहमदशाह अब्दालीने प्रसन्नतापूर्वक संधिके निय-मोंको स्वीकार किया कि अब मैं हिन्दुस्तानके राजनतिक कार्य्योंमें कभी भाग न लूंगा और साथ ही साथ उसने मर-हठोंको भारतवर्षका संरक्षक भी मान लिया। इसी प्रकार पानीपतके विजयीने स्वयं अपनी विजय और जिन इच्छाओंसे प्रेरित होकर लड़ाई ठानी—उनकी तुच्छता स्वीकार कर ली और हिन्दुओंकी शक्तिको भारतवर्षकी महान शक्ति मान लिया। अफ़गानोंकी जड़को इस प्रकार भारतवर्षके राजनैतिक क्षेत्रसे खोद और दिल्लीपर अधिकार कर मरहठोंने अब पठान और रुहेलोंको पृथक् किया, जो वास्तवमें ऐसी मुसलमान शक्तियोंके केन्द्र थे और जो यदि हो सकेगा तो अब भी हिन्दुओंके

हाथमें भारतके शासनकी बागडोर जानेसे रोकनेके लिये जी तोड़कर लड़ेंगे; लेकिन उनकी भी परीक्षाका दिन आ गया। जो अपमान रुहेले और पठानोंने पानीपतकी लड़ाईमें मरहठोंका किया था उसकी यादगारीहीने मरहठोंकी तलवारकी धारको बदला लेनेके लिये उठवाया था। पठान और रुहेले भलीभांति जानते थे कि जिन शत्रुओंको हमने बदला लेनेके लिये उभाड़ा है, वे मरहठे कदाचित् सत्यानास हो जानेतक भुलावेमें नहीं आ सकते। इसलिये वे अपने पुराने अनुभवी नेता हाफ़िज़ रहमतखां और अहमद ख़ां बंगाशसे, जो पानीपतकी लड़ाईमें वर्तमान थे,मिल गये और दृढ़ प्रतिज्ञा की कि हम मरहठोंका हर प्रकारसे मरते दमतक सामना करेंगे।

कुछ दिन दिल्लीमें रहकर मरहठे द्वाबेमें पहुँचे। उन्हें वहां यह मालूम हुआ कि शत्रुओंकी सेना बहुत ही विशाल है। उस समय ७० हजार हथियारबंद मुसलमान-सेना तैयार थी। परन्तु मरहठोंने उनकी संख्यापर कुछ भी ध्यान न दिया और जगह २ पर लड़ाइयां छेड़ दीं, जिनमें बड़ी निर्दय-ताके साथ पठान और रुहेले काटे गये। पश्चात् क़िले-पर-किला, शहर-पर-शहर शत्रुओंके हाथसे छीनते हुए और पठानोंकी शक्तिको सारे द्वाबेसे मिटाते हुए मरहठे आगे बढ़े और रुहेल-खंडपर बड़ी निर्दयताके साथ आक्रमण कर दिया। मृत्युने नजीबखांको बदला चुकानेसे बचा लिया था, लेकिन उसका पुत्र जबेथखां अब भी अपने पिता और अपने पापोंका प्रायश्चित्त

करनेको बचा रह गया था, जिसने शुक्रतालकी अभेद् दीवालोंके पीछे शरण ली थी। मरहठे क़िलेपर चढ़ गये और प्रलयकालके बादलके समान गोलाबारी करने लगे और उन्होंने क़िलेके भीतरके सैनिक विभागपर इतनी हानि पहुंचाई कि जबेथखां उसकी रक्षा करनेसे असमर्थ हुआ। अन्तमें क रातको वह चुपकेसे भाग निकला और गंगाको पार करके विजनौर पहुंचा। यह समाचार पाकर मरहठोंकी बद्ला लेनेवाली सेना भी विजनौरकी ओर चल पड़ी और गंगाको पार करती हुई विजनौर पहुंची, जहांपर जबेथ खांके क़िलेकी रक्षाके लिये तोपखाने नियुक्त थे। ये तोपखाने मरहठों-पर गोलियां बरसाने लगे, परन्तु मरहठोंने तोपखानेपर अधिकार कर लिया और उन दोनों शक्तिशालिनी सेनाओंको, जो उन्हें रोकनेका प्रयत्न कर रही थीं, परास्त किया और रुहेलोंको काटते हुए विजनौरमें घुसे। सारा ज़िला उनके घोड़ोंकी टापोंसे कुचल उठा। जबेथखां भागकर मजीबगढ़ पहुंचा। मरहठोंने वहांतक उसका पीछा कर फतेहगढ़ ले लिया। यहां-पर उन्हें बहुत ही प्रसन्नता हुई, क्योंकि जो कुछ सामान पानी-पतकी लड़ाईमें मरहठोंका पठान और रुहेलोंके हाथ चला गया था, वह सब अब पुनः विजयी मरहठोंके हाथ आ गया, जिससे उनकी सारी इच्छा पूरी हुई। जबेथखांकी स्त्री और बच्चोंको भी मरहठोंने पकड़ लिया। जैसा पाशविक अत्याचार निर्दयी रुहेलोंद्वारा मरहटे स्त्री और बच्चोंपर पानीपतके मैदानमें किया

गया था, यदि उसी प्रकारकी निर्दयता और अत्याचार मरहठे नजीबखां और जबेथखांके परिवारके साथ करते तो अन्याय नहीं कहा जा सकता था; किन्तु शान्ति-प्रिय हिन्दुओंके परम्परागत नियमके अनुसार मरहठे न तो किसीके धर्मको ही छुड़ाते थे और न उनको अपने खेमेमें लाकर कत्ल ही करते थे। हिन्दू-वीरोंने यद्यपि इस राक्षसी कार्यपर कभी हाथ नहीं उठाया, तिसपर भी उनका डर सारे रुहेलों और पठानोंके दिलमें ऐसा समा गया था कि मरहठी सेनाको आते हुए देख सारे गाँव-के-गाँव घर छोड़कर भागना प्रारम्भ कर देते थे। रुहेलोंके जो सेनापति जीवित रहे, तराईके घने जंगलोंमें भागकर चले गये। वहांपर वर्षाकालने आकर मरहठोंकी बदला लेनेवाली सेनाकी तलवारसे उनकी रक्षा की। इस प्रकार मरहठोंने पानीपतकी हारका व्याज-सहित शत्रुओंसे बदला लेकर और उन्हें कठोर दंड देकर, अपनी धर्म-ध्वजाको हिमालयकी तराईतक पहुंचाकर, उत्तरीय भारतको भयभीत करके फौजको लौटनेकी आज्ञा दी। सन् १७७१ ई० में मरहठोंकी सेना दिल्लीके लिये चल पड़ी। वहांपर महाराष्ट्रके राजनतिक पुरुष अपने सेनापतियोंकी विजयका लाभ पहिलेहीसे उठा रहे थे और जो-जो उपाय अंग्रेज और शुजाने मिलकर सोचे थे, उन्हें निष्फल कर दिया और अन्तमें भारतकी सबसे महान शक्ति बन बैठे और शाहआलमको विवश कर सारे अधिकार और हिन्दुस्तानके राज्य चलाने तथा रक्षा करनेके उत्तरदायित्वका भार अपने हाथमें

ले लिया और इसके बदलेमें उसे केवल हिन्दुस्तानका बादशाह मानते रहे। इस तरहपर नाम-मात्रके लिये भी मरहठे उसे हिन्दुस्तानका बादशाह नहीं मानते, यदि उसने पानीपतकी लड़ाईके दिनसे आजतकका बकाया चौथ अदा न किया होता और यह प्रतिज्ञा न की होती कि जो नया राज्य फतह किया जायगा, उसे बराबर-बराबर बांट लेंगे। यद्यपि यह कार्य एक बार सन् १७६१ ई० में हो चुका था, लेकिन सन् १७७१ ई० में पूर्ण रीतिसे हो गया। रुहेले और पठानोंकी इस भयानक हारके पश्चात् मुसलमानोंका कोई ऐसा राज्य न रह गया जो मरहठोंके सारे हिन्दुस्तानके महाराजा होनेके सम्बन्धमें सिर उठावे। मानों उसी साल मुसलमानोंकी स्वतंत्रता, शक्ति और सारी इच्छाओंका अंतिम संस्कार हो गया। मुगल, तुर्क, अफ़गान, पठान, रुहेले, फारसी और उत्तरी और दक्षिणी मुसलमानोंके सारे सम्प्रदायोंने लड़कर बदला लेनेवाले हिन्दुओंके हाथसे मुसलमानी राज्यको छुड़ानेका प्रयत्न किया, लेकिन मरहठोंने उनके सभी प्रयत्नोंको असफल कर दिया और स्वयं शाही अधिकारके रक्षक-पदपर रहकर ५० वर्षसे अधिक उसे अपने हाथोंमें रक्खा तथा जो इसके लिये लड़ा, उसे नीचा दिखाया। सन् १७७१ ई० के बाद मुसलमानोंकी शक्ति भारत-वर्षके राजनैतिक क्षेत्रमें न रह गई। इस प्रकार हिन्दुओंने उनकी शक्तिका अन्त कर अटकसे समुद्रतक फिर अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की। केवल एक ही दावेदार उस समय मरहठोंके विरोधमें

थे जिनका स्वभाव, ढंग और मानसिक शक्ति मुसलमानोंसे बिलकुल भिन्न थी, अर्थात् अंग्रेज लोग।

यदि मरहठोंकी दो सेनाओंके महाराष्ट्रसे उत्तरमें चले जानेके पश्चात् शूर-वीर हैदरअली अपने भाग्यको पुनः आजमानेके लिये न उठा होता और मरहठोंके प्रभुत्वको दक्खिनमें अस्वीकार न किये होता तो यह एक बड़ी अच्छी बात हुई होती। माधोराव तुंगभद्रा नदीको पार करता हुआ एक शक्तिशाली सेनाके साथ दुर्गके पीछे दुर्ग जीतता और शत्रुओंको हर जगह हराता गया। एक दूसरी सेना उस जगहपर स्थापित की गई जहां वह हैदरअली-को अनामलीके जंगलोंमें घुसते हुए बरबाद करे। एक रात्रिको जब यह सेना मैदोके पास खेमा डाले पड़ी थी, हैदरअली अपने बीस हजार चुने वीरोंके साथ जंगलसे निकल पड़ा और भूखे शेरकी भांति अचानक मरहठा-सेनापर टूट पड़ा। किन्तु सौभाग्यवश हैदरअलीकी तोपकी पहिली ही गरजपर मरहठा-सेनापति गोपालराव जाग उठा और तत्कालही खतरेको ताड़ लिया कि यदि मैं तनिक भी हिचकूंगा तथा दीनता प्रकट करूंगा तो सारी सेना जगनेके पहिले मार डाली जायगी। वह अपने घोड़ेपर कूदकर सवार हो गया और अपने झंडेको खोल दिया और अपनी जगहपर खड़े होकर आज्ञा दी कि खतरेकी लड़ाईका डंका बजाओ। इस भयानक शब्दको सुनकर सारे सिपाही उठ बैठे और बिछौनेको छोड़कर रण-क्षेत्रमें जा डटे। अब शत्रुओंकी भयंकर अग्नि भड़की। लड़ाई घमासान होने लगी।

अश्वारोही सैनिक घायल होकर पृथ्वीपर गिरने लगे। हैदर-अलीकी तोपोंकी गरज और उसके गोले बरसानेकी बाढ़ने मर-हठोंको पीछे हटा दिया, लेकिन गोपालराव निर्भयतापूर्वक अपनी जगहपर डटा रहा और अपना झंडा ललकारते हुए फहराता रहा। पुनः लड़ाईके खतरेवाला डंका बजा। सेनापतिका सहा-यक पासमें खड़ा था। एक तोपका गोला लगा और उसका सिर टुकड़े टुकड़े हो गया। लोहू फुहारेको भांति गिरने लगा जिससे मरहठा सेनापति लोहूसे भींग गया। तिसपर भी परसु-राम भाऊ अपने स्थानपर डटा रहा। जब एक गोली लगी और उसका घोड़ा मर गया, तब वह दूसरे घोड़ेपर चढ़ा। ज्यों ही उसपर गया, त्यों ही वह घोड़ा भी तोपकी गोली लगनेसे मर गया। इसपर सेनापति चंचल हो उठा। वह फिर तीसरे घोड़ेपर चढ़ा और मृत्युके मुंहमें खड़ा रहा। यदि वह भय और घब-राहटसे ज़रा भी पीछे हटता तो शत्रु अचानक आक्रमण कर देते और सारी सेना विजयी शत्रुओंके हाथमें फंस जाती, किन्तु सेनापतिके साहसको देखकर सारी सेनामें फिर साहस आ गया। मरहठोंकी सारी सेनाने सेनापतिसे लेकर सिपाहीतक शत्रुओं-की सेनाको रुंडकी दीवालकी तरह रोक लिया। जब हैदर-अली समीप आया तो मरहठोंके अजेय साहसको देखकर हक्का-बक्का हो गया और जिधरसे आया था उसी ओर शीघ्र लौट गया। हमला जारी रहा।

पेथे, पटवरधन, पान्स और दूसरे मरहठे-सेनापति हैदरअली-

का पीछा जगह-जगहपर करते रहे और मोती तालाबपर उसे अपने हाथोंमें कर लिया और उसकी सारी सेना काट डाली और उसका खीमा, हथियार तथा अनेकों युद्धसामग्री अपने हाथमें कर ली। मरहठोंकी इस बार प्रबल इच्छा थी कि हैदरअलीके नामको राजनैतिक क्षेत्रसे निकाल दें, किन्तु ठीक उसी समय उन्हें पूनासे एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि पेशवा बहुत बीमार पड़ा हुआ है; लड़ाई बंद करके चले आओ। मरहठा-सेनापतिने इस पत्रके कारण विवश होकर हैदरअलीसे सुलह कर ली, जिसके अनुसार हैदरअलीने मरहठा-स्वराजके सारे प्रान्तोंको लौटाया और लड़ाईके व्ययके अतिरिक्त ५० हजार रुपये बतौर लगानके और दिये।

जिसके शासन-कालमें मरहठोंने अपने ऊपर किये गये पानीपतके अत्याचारोंका बदला शत्रुओंसे लिया, अपने गौरव, बड़ाई और प्रतिष्ठाको पूर्वकी भांति बनाया, उस नेताकी बीमारीका समाचार मरहठोंकी दिल्लीसे लेकर मैसूरतककी सारी छावनियोंमें पहुंचा और हर एक व्यक्तिने इसे परमात्माकी कुदृष्टि समझा। माधोरावकी सैनिक वीरताके अपूर्व गुणने ही केवल उसे इतना सर्वप्रिय नहीं बनाया था, किन्तु वह राजासे लेकर रंकतक अपनी सम्पूर्ण प्रजाकी भलाई, समदृष्टि, न्याय और निष्पक्षतासे देखता था, और वह इतना गंभीर, सत्यवादी और न्यायप्रिय था कि उसकी नीच-से-नीच प्रजा भी अपनी भक्ति और प्रेम दरसानेके लिये दौड़ आई। शक्तिशाली पुरुषोंको उसकी सत्यता और न्यायपरायणताका भय बना रहता था

और दीन व दुःखी किसानोंको उससे रक्षाका पूर्ण भरोसा था। यद्यपि घरेलू झगड़े और नाशकारी पारिवारिक युद्ध उसके स्वार्थी और मूर्ख चचाके कारण चल रहा था, इसपर भी दस वर्षके भीतर ही इसने अपनी जातिके ऊपरसे पानीपतको हारके कलंकको मिटा दिया और अपने शक्तिशाली भुजबलद्वारा उन शत्रुओंको जिन्होंने पानीपतमें हिन्दू-स्वतंत्रता और हिन्दू-पाद-पादशाहीके विरोधमें हाथ उठाये थे, हराकर कुचल डाला। जबकि वह बिल्कुल जवानीकी उमंगोंसे भरा हुआ था और अपने सौभाग्य और सर्वप्रियताके शिखरपर चढ़ा हुआ था और जिस समय जातिको यह आशा हो गई थी कि वह अपने पितासे बढ़कर गौरवशाली कार्य करेगा, वैसे ही समयमें केवल २७ वर्षकी आयुमें माधोराव तपेदिकके रोगमें पड़ा। वह महलोंमें बीमार पड़ा था, किन्तु फिर भी उसने अपने कुढंगी चचाको जो इस समय भी निजामसे मिलकर षड्यन्त्र रच रहा था, प्रसन्न करनेका बड़ा प्रयत्न किया। उसने रघुनाथरावको सब कार्य्य सौंप दिया और अपने राज्यवैद्यसे अनुरोध किया कि मुझे ऐसी दवा दो कि मैं मरते समय भी मूर्च्छित न होऊं और मुझमें बोलनेकी शक्ति वर्त्तमान रहे जिससे मैं उस समय परमात्माकी प्रार्थना कर सकूं। जबकि पेशवाकी असाध्य बीमारीका समाचार उसके दूर-दूरके राज्योंमें पहुंचा तो उसकी प्यारी प्रजा चारों तरफ़से पूनामें अपने जातीय शूरवीर और जातीय पिताके अन्तिम दर्शनके लिये आने लगी। उसने आज्ञा दे दी कि राजमहलका फाटक खोल दो और प्रजाओंमेंसे दीनसे दीन मनुष्यको भी मेरे पास आनेसे न रोको

जाय। सन् १७७२ई० में कार्तिक बदी अष्टमीको उदार राजकुमारने विद्वान और सत्पुरुषोंको बुलाया। उनकी ओर सिर झुकाकर और जो लोग उसे देवता-तुल्य समझकर घेरे हुए पड़े थे, उनकी तरफ मुंह करके उनसे अन्तिम विदा मांगी। उसने कहा कि अब मैं आप लोगोंसे पृथक् होता हूं और अपनी अन्तिम महान तीर्थ-यात्राके लिये प्रस्थान करता हूं और आप लोगोंको अन्तिम विदाका नमस्कार करता हूं। इस प्रकार राजकुमारने सबोंके बीच परमात्माका नाम लेते हुए योगियोंकी भांति गजानन-गजानन कहते हुए इस असार संसारको छोड़ा। राजमहलके लोगोंमें हाहाकार मच गया और सबलोग रोने-पीटने लगे। उसकी युवा स्त्री रमाबाई जिसके अभीतक कोई सन्तान न हुई थी, अपने सारे आभूषणों और जवाहिरातोंको साधु, ब्राह्मण और दीन-दुखियोंको दान करके, अपने सम्बन्धियों-के दबाव और प्रार्थनाको कुछ परवाह न कर प्यारे पतिको चितापर बैठ गई। आग प्रज्वलित हो गई और उस धधकती हुई अग्निमें भस्म हो कर पतिव्रता रमाबाईने ऐसे अद्भुत प्रेम,प्रणय और सौन्दर्यका परिचय दिया जैसा कि आज दिनतक कोई न दे सका। अब भी लोग महाराष्ट्रमें महाराज माधोराव और सती रमाबाईकी मृत्युपर आंसू बहाया करते हैं, और हर प्रकारसे अपना प्रेम और भक्ति उनके प्रति दर्शाते हैं। वर्त्तमान समयमें भी राज-कवि उनकी मृत्युके सम्बन्धमें कवितायें बना बनाकर पढ़ा करते हैं और कहा करते हैं कि हमारे जीवनकी ज्योति निकल गई और हमारे हृदयकी मणि खो गई।

अठारहवां अध्याय

गृह-कलह और सर्व-प्रिय आन्दोलन।

सारी जातिके आशास्वरूप माधोरावका युवा अवस्थामें मर जाना और रघुनाथराव-जैसे नीच व्यक्तिका एक पीढ़ीतक आगे जीवित रहना, ये दोनों बातें उस समयके लिये उन बातोंमेंसे एक थीं,जिनसे लोग कभी २ शंकित हो जाते हैं कि परमात्मा सर्व-शक्तिमान है यह बात सत्य है या नहीं। इसी प्रकारकी असमंजसतासे माधोरावकी मृत्युने सारे महाराष्ट्र-वासियोंको उस समय शंकित कर दिया था।

जिस प्रकार माधोरावकी अकाल मृत्यु उनकी जातिके लिये एक बड़ी आपत्ति-जनक थी, उसी प्रकार रघुनाथरावका जीवित रहना उससे कहीं विशेष आपत्ति-प्रद था।

ज्योंही निःसन्तान माधोरावकी जगहपर उनकी और जातिकी इच्छानुसार उनका छोटा भाई नारायणराव गद्दीपर बैठा त्योंही रघुनाथराव, उसके और उसके सहायकोंके विरोधमें एक नवीन हत्याकाण्डका षड्यन्त्र रचने लगा, अर्थात् उसने महलके पहरेदारोंको रिश्वत देकर अपने पक्षमें कर लिया और आज्ञा दी कि नये पेशवाको घेरकर पकड़ लो, पर इस उपायको उसकी

पिशाचनी स्त्रीने पलटकर पहरेदारोंको उभाड़ा और कहा कि पकड़नेके बजाय मार डालो। सन् १७७३ ईस्वीके अगस्त महीनेमें उसके सिपाहियोंने पेशवापर बलवा कर दिया और नारायणरावको असभ्यतापूर्वक शोर मचाते हुए घेर लिया। उस समय पेशवाके एक सच्चे सेवकने उन बलवाइयोंको उनके इस प्रकारके नीच कार्य्यपर धिक्कारा। इसपर उन्होंने क्रोधित हो तलवार खींच उस स्वामिभक्तको उसी समय मार डाला। डरा हुआ पेशवा अकेला कमरे २ अपनी जान बचानेको भागता फिरता था और हत्यारे उसका पीछा करते थे। अन्तमें वह अपने चचा रघुनाथरावके कमरेमें पहुंचा और व्याकुल होकर चचाको कमरसे लिपट गया और गिड़गिड़ाकर बड़े आर्त्तस्वरसे कहने लगा,"चचा! चचा!! मैं आपका लड़का हूं। मुझ अनाथको प्राणदान देकर कृतार्थ कीजिये। मैं आपहीको पेशवा स्वीकार करता हूं और जो रोटीका टुकड़ा आप मुझे देंगे उसके अतिरिक्त किसी वस्तुकी मांग न करूंगा, उसीपर अपना जीवन-निर्वाह सुखपूर्वक करूंगा।" पर हत्यारे बलवाई जो उसका पीछा करते आते थे वहां पहुंच गये, रघुनाथरावने नारायणरावको अपने बदनसे छुड़ा दिया और हत्यारे उसपर टूट पड़े। चाफाजी तिलेकरने अपनेको पेशवा और बलवाइयोंकी तलवारके बीचमें कर लिया और अपने स्वामीके जीवनदानके लिये प्रार्थना की; पर सब अरण्य-रोदनके समान निष्फल हुआ। अन्तमें हत्यारोंने पेशवा तथा उनके रक्षक चाफाजीपर अपनी तलवार चलाना प्रारम्भ किया।

पेशवाकी मृत्यु ध्रुव थी; उसकी आयु समाप्त हो चुकी थी। इस-पर किसीका क्या वश चल सकता है! यद्यपि चाफाजीने ढाल बनकर पेशवाकी रक्षाके लिये अनेकों प्रयत्न किये, पर सब निष्फल हुए और अन्तमें अपना प्राण अपने स्वामीके साथ दे-कर उसने स्वामि-भक्तिका अपूर्व आदर्श लोगोंको बताया।

पेशवाको मार डालनेके बाद बलवाइयोंने रघुनाथरावको अपना पेशवा मशहूर कर महलको ले लिया। यह समाचार विजलीको भांति सारी राजधानीमें फैल गया। वहांके निवासी क्रोधित होकर दलके-दल एकत्रित होने लगे और सबोंने एकमत होकर शपथ कर ली कि हम लोग नीच हत्यारे रघुनाथरावको कभी पेशवा स्वीकार न करेंगे। महाराष्ट्रमें अभी भी आत्म-सम्मान तथा आत्मिक जीवनका भाव भलीभांति शेष रह गया था, जिससे इस भयानक षड्यन्त्रसे डरकर वे लोग उनका आधिपत्य स्वीकार करनेके लिये तैय्यार न थे, जिनको उन्होंने अपना अधिनायक या स्वामी नहीं चुना था। इसलिये नेता तथा राज्यके प्रमुख लोगोंने राज्य-परिवर्तनके लिये एक गुप्त सभा स्थापित की और राज्यके प्रधान न्यायाधीश रामशास्त्रीके पास पेशवाकी हत्याका अभियोग चलानेकी प्रार्थना की।

रामशास्त्रीने शीघ्र ही रघुनाथराव और उसकी स्त्री आनन्दी-बाईके इस नीच कर्मको जान लिया तथा उसे पूर्ण विश्वास हो गया कि इस नवयुवक पेशवाकी हत्याका मूल कारण ये ही लोग हैं। वह क्रोधित होकर सीधे उस महलमें चला गया,

जहां रघुनाथराव अपने साथियोंके साथ बैठा था और बड़ी नि-र्भयताके साथ मुंहपर साफ २ कह दिया कि अपने भतीजे अर्थात नये पेशवाकी हत्या करनेवाले आपही हैं। इस महापापके लि-ये आपको अवश्य प्रायश्चित्त करना पड़ेगा और ऐसे नीच कर्मके लिये सिवाय प्राणदण्डके और क्या प्रायश्चित्त हो सकता है; अतएव आप शीघ्र मार डाले जायंगे। इसपर रघुनाथरावके सा-थियोंमेंसे किसीने कहा कि आप ऐसा न कहें। रामशास्त्रीने पुनः गम्भीर स्वरसे कहा, "मुझे रघुनाथरावका भय नहीं है, मैं राजका प्रधान न्यायाधीश हूं; इसलिये अपना उचित कर्त्तव्य पालन किया है। यदि रघुनाथराव चाहे तो मुझे भी मारकर अ-पना पाप बढ़ा ले। मैं ऐसे राज्यमें एक क्षण भी न रहूंगा और न अन्न-जल ग्रहण करूंगा, जिसपर ऐसे अन्यायी राजा राज्य करते हैं।" इस प्रकार क्रोधाग्निसे जलता हुआ अशंक ब्राह्मण महलसे बाहर निकला, शहर छोड़ दिया, और अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार तब-तक अन्न-जल ग्रहण न किया जबतक पवित्र कृष्णानदीके तटपर न पहुंचा। रघुनाथराव अवाक्-सा देखता रह गया, उसके मुख-से एक शब्द भी न निकल सका। पर अपने साथियोंके सामने इन सारी बातोंका उसे पूर्ण अनुभव हो गया कि वास्तवमें पापका फल बुरा होता है।

ठीक उसी समय यह बात सबको विदित हो गई कि मृत पेशवा नारायणरावकी विधवा स्त्री गर्भवती है और उसे अवश्य कोई सन्तान-रत्न पैदा होगा। इस समाचारको पाकर राज-

परिवर्त्तन करनेवाली सभाकी शक्ति और भी बढ़ गई तथा भावी सुखकी आशा लहलहाने लगी।

इसके पश्चात् मोरो बाबाक्ष, कृष्णराव केल, नैरो अप्पाजी, हरीपन्त फाटके, त्र्यम्बक राव, मामारस्ती, तोपखानेके सरदार पटवर्धन, धामगुड़े प्रभृति और भी दूसरे दूसरे राजकर्मचारियोंने नाना फड़नवीस तथा सुखराम भाऊ ऐसे महान नेताकी अध्यक्षतामें प्रथम यह तय किया कि रघुनाथरावको लड़ाईमें ले चले और पीछे उसके विरोधमें बलवा कर दें। इस प्रकार सबोंने विचार निश्चित कर रघुनाथरावको शीघ्र ही दक्खिनपर चढ़ाई करनेके लिये विवश किया। ज्योंही रघुनाथने दक्खिनके लिये कूच किया, त्योंही इन लोगोंने अवसर पाकर बलवा कर दिया, पूनाको ले लिया और भावी पेशवाकी माता गंगाबाईको राजनेत्री ठहराया।

यह सर्व-प्रिय राज्य-परिवर्त्तनकारी आन्दोलन शीघ्र ही सारे देशमें व्याप्त हो गया। इस नये राज्यशासनको, जो वास्तवमें प्रजातन्त्र राज्य था और जिसे महाराष्ट्रमें "बार भाई राज" कहते हैं, सारे दुर्ग और नगरने सहर्ष स्वीकार कर लिया। जब इस आश्चर्य्यजनक बलवेका समाचार रघुवाको मिला तो, उसने अपनी सारी सेनाके साथ पूनाको लौट चलनेका विचार किया; लेकिन जब उसे यह बात विदित हो गई कि बलवाइयोंकी सेना उससे सामना करनेके लिये पहिले ही पूनासे रवाना हो चुकी है, तो भयभीत होकर कुछ स्वार्थी, घूसखोर

तथा चापलूस साथियोंके साथ उत्तरक ओर मुड़ा और रास्तेके गांव और शहरोंको विदेशीय लुटेरोंकी तरह लूटता-पीटता और जलाता हुआ आगे बढ़ता गया। उसे अब भी यह आशा बनी हुई थी कि यदि गंगाबाईको पुत्र न पैदा होगा तो सभी लोग पुनः मेरे पक्षपाती हो जायंगे। उसने कारागांवमें बलवाइयोंकी सेना-का सामना कर उसे परास्त किया और उनके सेनापति त्र्यम्बक राव मामापेथेको मार डाला, जिससे राजपरिवर्त्तनवादियोंकी बड़ी क्षति हुई, क्योंकि उनका एक वीर एवं कट्टर नेता मारा गया। इतनेपर भी प्रसिद्ध नेता नाना फड़नवीस और भाऊने महाराष्ट्र-जातिकी सहायता पाकर लड़ाई बराबर जारी रक्खी।

इस समय भारतवर्षके सभी लोगोंका ध्यान पुरन्धरके कि-लेकी ओर आकर्षित था, जहां गर्भवती नवयौवना राजकुमारी गंगाबाई अत्यन्त आराम और सुरक्षित दशामें रक्खी गई थीं। ज्यों ज्यों इनका प्रसव-काल सन्निकट आता जाता था, त्यों त्यों लोगोंकी उत्सुकता बढ़ती जाती थी। सभी लोग सर्वदा पुरन्दरके नवीन सुखदायक समाचार सुननेके लिये लालायित हो रहे थे। धार्मिक जन-समुदाय एकत्रित होकर मंदिरों, देवालयों और तीर्थ-स्थानोंमें प्रार्थना-हेतु भेजा गया, जिससे इनकी शुभ कामनायें पूर्ण हों अर्थात् महारानीजीको पुत्र-रत्न प्रसव हो और रघुबा का नीच आशा और अभिलाषापर वज्रपात होवे। झोपड़ियोंसे लेकर राजभवनोंतकके रहनेवाले सर्वदा पुरन्दरके शुभ समाचार सुननेके लिये कान फैलाये रहते थे और अपनी शुभाशाकी

चिन्तनामें सर्वदा निमग्न रहते थे। इतना ही नहीं, दिल्ली, इन्दौर, ग्वालियर, बड़ौदा, हैदराबाद, मैसूर तथा कलकत्ता आदि प्रधान-प्रधान भारतके राजनैतिक केन्द्रोंके लोग भी पुरन्दरके समाचारके लिये उत्सुक थे। उनका मन भावी सुखकी प्रबल आशामें निमग्न रहता था। अन्तमें सन् १७७४ ई० का १८ वीं अप्रेलको सारे भारतवर्षमें यह समाचार पहुंचा कि गङ्गाबाईने एक पुत्ररत्न प्रसव किया है। सारे महाराष्ट्रने इस प्रसवका स्वागत किया और इस शिशुको अपना नेता माना तथा अपने राज्यके लिये उसे सेनापति समझा। दूसरे देशवालोंकी सभायें भी जनताके उत्साहसे उत्साहित होकर उस दुध-मुंहे बच्चे पर धन्यवादकी वर्षा करने लगीं। जो सुख परिवर्त्तनवादी सारे महाराष्ट्रवालोंने अनुभव किया; उसका और उनको देशभक्ति-पूर्ण आशाओं और मनोरथोंका पता उस समयके हस्तलिखित इतिहासोंसे भलीभांति जाना जा सकता है। शावाजी भोंसला अपनी छावनीसे लिखता है कि ज्योंही राजकुमारके जन्मका समाचार पहुंचा, मानों सारे संसारका सुख मिला। परमात्माने हमारी प्रार्थनाओंको सुना। सारी सेनामें प्रसन्नता छाई हुई है, लड़ाईके नक्कारे बज रहे हैं। तोपोंकी गरज बादशाही स्वागत कर रही है। परमात्मा हमारे पेशवाको दीर्घायु बनाये। यह समाचार जहांकहीं राजपरिवर्त्तनवादियोंके पास पहुंचा, वहींपर वे बड़ी प्रसन्नता मनाने लगे। हरीपन्त सेनापतिने शीघ्र आज्ञा दी कि सारी सेनामें उत्सव मनाओ। मनुष्य इतने अधिक प्रसन्न थे कि

उनके शब्दोंके ऊपर लड़ाईके नक्कारे, सहनाइयों और तोपोंकी घड़घड़ाहट बड़ी कठिनाईसे सुन पड़ती थी। इस शुभोत्सवको मनानेके लिये हाथीके ऊपरसे चीनी उतारकर लोगोंको बांटी गई। इसमें शंका नहीं कि परमात्मा सानुकूल है, हिन्दूधर्मकी रक्षा और वृद्धिके लिये उसने पेशवाको पैदा किया है— इस तरहकी अनेक बातें लोग किया करते थे। शिशु पेशवा दीर्घायु हो और महान शक्तिशाली बने, इस प्रकारका आशीर्वाद लोग देते थे।

इस लड़केका नाम माधोराव रक्खा गया, क्योंकि लोग इस नामको बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे लिया करते थे। किन्तु थोड़े ही दिनोंके पश्चात् लोगोंने इसे सवाई माधोराव कहना प्रारम्भ कर दिया। इनके जन्मके कारण पूनामें राज्यपरिवर्त्तनवादियोंकी शक्ति प्रबल हो गई, जिसके कारण भारतवर्षके राजनैतिक कार्योंकी काया पलट गई। ये लोग अब विशेष साहस और उत्साहपूर्वक कार्य करने लगे। इस दलके नेताने मरहठे सरदारोंको आज्ञा दी कि रघुनाथराव उपद्रवकारी है, इसलिये उसका पीछा करो और जहां कहीं मिले, पकड़ लो। ऐसा हो जानेपर वे लोग जो हिन्दू-पाद-पादशाहीकी परम्पराके अनुसार भाऊ और नानासाहबकी अध्यक्षतामें काम करते चले आये थे और जो उस गौरवशाली भारतके सबसे महान हिन्दूराज्यके पदको, जिसे मरहठोंने प्राप्त किया था और संभालनेकी योग्यता रखते थे, इस योग्य हो गये कि शासनकी बागडोर अपने हाथमें रक्खें और अपने जातीय

कर्तव्यका पालन कुछ और समयतक कर सकें। यदि ऐसा न हुआ होता तो राज्यका प्रबन्ध उन लोगोंके हाथमें चला गया होता, जो अपनी स्त्रीका भी प्रबन्ध नहीं कर सकते थे। किन्तु नारायणके जिस लड़केकी पैदाइशके समाचारका स्वागत सारे महाराष्ट्रने बड़ी धूमधामसे किया था और जिस दुधमुहे राजकुमारको लोगोंने बड़ी श्रद्धा और भक्तिके साथ अपने राज्यका भावी पेशवा स्वीकार किया था, उसी राजकुमारको एक नीच प्रकृतिवाला पुरुष, रघुवाने घृणाकी दृष्टिसे देखा, क्योंकि रघुवा इस समय अपना जीवन पशुसे भी अधिक असभ्यतापूर्ण व्यतीत कर रहा था। उसका पीछा साम्राज्यपरिवर्त्तनवादी बड़ी बुरी प्रकारसे कर रहे थे। अन्तमें रघुवाने हार खाकर और अपने साथियों-द्वारा परित्यागकर दिये जानेपर अपनी जातिके सबसे कुटिल-शत्रुकी शरणमें जानेमें कुछ भी हिचकचाहट और लज्जा न की।

सारी जातियों और सारी रियासतोंमें, जिनकी इच्छा अब भी थी कि हम भारतवर्षमें प्रधान शक्तिशाली बनें, किसीने भी मरहठोंके सबसे बड़े होनेके पदको अस्वीकार नहीं किया। जबतक सारा महाराष्ट्र इस महान हिन्दूसाम्राज्यके अन्तर्गत संगठित होकर काम करता रहा, तबतक जिस किसीने मरहठोंको ललकारा, वह या तो बिलकुल सत्यानास कर दिया गया या उसको ऐसा नीचा दिखा कर दबाया गया कि वह क्रोधसे भरा हुआ जमीनपर पड़ा धूल चाटने लगा, अर्थात् मरहठोंकी पराधीनताम भलीभांति

जकड़ दिया गया। मुसलमान, चाहे वे पठान, पारसी, मुगल, तुर्क विदेशी या भारतवर्षके रहनेवाले थे, ऐसी भलीभांति कुचल दिये गये कि उन्होंने पीछे फिर कभी हिन्दूराज्यके सामने सिर न उठाया और वे अब भारतवर्षके राजनैतिक क्षेत्रसे एक प्रकार मिट गये। प्रतिद्वंदी शक्तियोंमें एक पुर्तगीज शक्ति थी; जिसने एक बार अपना प्रभाव अर्द्ध एशियाके ऊपर जमा लिया था। अब वह भी अधःपतनकी दशाको प्राप्त हो गई, क्योंकि पुर्तगीज कोकनकी स्वतन्त्रताकी लड़ाईमें इतने निर्बल कर दिये गये थे कि फिर कभी अपनी पूर्व शक्ति न प्राप्त कर सके। फ्रेंचोंने भी कभी मरहठोंका खुली तौरपर सामना करनेका साहस न किया। यद्यपि उन्होंने कई बार हैदराबाद और अरकाटद्वारा पूनापर प्रभाव जमानेका प्रयत्न किया, किन्तु हर बार असफल होते रहे। इसके दो कारण थे। प्रथम यह था कि यूरुपमें उनका दूसरोंके साथ युद्ध हो रहा था, जिसके कारण वे भारतमें हिन्दूसाम्राज्य-के मार्गमें कंटक नहीं बनना चाहते थे। दूसरी बात यह थी कि वे भलीभांति जानते थे कि यही एक शक्ति है जो उनके प्रति-द्वंदी अंग्रेजोंकी नीच इच्छाको पूरी न होने देगी। अंग्रेजोंको भी भलीभांति ज्ञात था कि हम पश्चिमी किनारेपर शिवाजीके समय-से शान्तिपूर्वक आबाद हैं, उसका मुख्य कारण यह नहीं है कि मरहठे हमसे प्रसन्न हैं और हमारा यहांका रहना उन्हें पसन्द है, वरन् हम यहां शांतिपूर्वक इसलिये पड़े हुए हैं कि इस समय मरहठे अपने शक्तिशाली शत्रुओंसे लड़नेमें उत्तरी भारतवर्षमें

लगे हुए हैं और हमें एक साधारण शत्रु समझकर इस समय कुछ ध्यान नहीं देते हैं। जिस समय हम सिर उठायेंगे, वे अवश्य हमारा सत्यानास कर देंगे।

इसलिये वे भी हर समय मरहठोंको हानि पहुंचानेके लिये उद्यत रहते थे, किन्तु डरसे इसको प्रकट रूपमें काममें नहीं लाते थे। ऐंगरकी शक्तिके नाश करनेमें नानासाहब उनकी सहायता काममें लाये थे। यदि ईश्वरकी इच्छा प्रतिकूल न हुई होती तो ऐंगरके सत्यानासके पश्चात् मरहठोंकी जलसेना भी बड़ी शक्तिशाली हो गई होती।

इतना सब होते हुए भी अंग्रेजोंको अपने अधिकारमें कमसे कम पश्चिमी किनारेपर भी कुछ विशेष सफलता न हुई। शिवाजीके समयमें जो कुछ उनके अधीन था, वही उनके अधीन रह गया, लेकिन बङ्गालमें उन्हें अनायास बड़ी भारी सफलता हो गयी। क्लाइवके समयमें अंग्रेज प्रथम बड़े शान्त थे, किन्तु जब विजय प्राप्तकर जगे, तब यदि मरहठे न होते तो, उन्होंने अपनी विजय-श्रीको दिल्लीतक बढ़ा दिया होता। हम यह नहीं कहते कि बङ्गालमें अंग्रेजोंकी सफलता किसी प्रकार अनुचित और अन्यायपूर्ण थी।

यह बात स्वतः सिद्ध है कि जो लोग संयोगवश या शत्रुकी कापुरुषता या अयोग्यतावश या और भी किसी प्रकारसे अपने शत्रुओंकी शक्तिके ऊपर विजय प्राप्त करते हैं, यह सिद्ध कर देते हैं कि वे शत्रुओंसे शक्तिशाली हैं। अंग्रेजोंने, फ्रांसवालोंपर भी जो

सफलता मद्रासमें प्राप्त की, वह भी केवल उनका साहस था। इस प्रकार अंग्रेजोंके भाग्य और साहसने उन्हें बङ्गाल और मद्रासमें शक्तिशाली बनाया और उन्होंने मरहठोंकी प्रभुताको इस भयसे कभी अस्वीकार नहीं किया कि इसके कारण मरहठोंसे शत्रुता खड़ी हो जायगी। लेकिन अंग्रेज जो बङ्गाल और मद्रासमें छिपे छिपे प्रभावशाली हो रहे थे, उससे मरहठे अनभिज्ञ न थे। नाना साहब और भाऊ इनसे बहुत होशियार रहते थे और सदैव उनपर ध्यान रखते थे। इन लोगोंका विचार था कि हिन्दुओंके अतिरिक्त कोई भी आगे न बढ़ने पावे। अंग्रेजोंके अधिकारको बंगालमें बढ़ते हुए देखकर ही भाऊने सन् १७६० और १७६१ में यह कार्यक्रम बनाया कि दो शक्तिशाली सेनायें बङ्गालमें भेजी जांय, जो किसी विधर्मीके शासनसे दुःखी हिन्दुओंको मुक्त करें। यहांकी प्रजा अन्तिम हिन्दूराजा लक्ष्मणसिंहके शासनकालके पश्चात् विधर्म्मियोंद्वारा अत्यन्त सताई जा रही थी।

मरहठी सेनाका उत्तरी भाग दत्ताजीकी अध्यक्षतामें सन् १७६० ई० में इस लड़ाईके लिये चल पड़ा था। लेकिन जैसा कि पहले लिखा गया है, अहमदशाह अब्दाली जैसे भयानक शत्रुके घोर आक्रमणने मरहठोंके बङ्गाल-विजय करनेके विचारको स्थगित कर दिया। इसके पश्चात् पानीपतकी लड़ाई हुई, फिर नाना साहबकी मृत्यु हुई, और इस तरह मरहठोंपर क्रमशः दुःखका पहाड़ टूटता गया; जिससे अंग्रेजोंकी शक्तिका जीवनकाल बढ़ता गया और उन्होंने ऐसा शुभ अवसर पाकर बड़ी चालाकी

और परिश्रमके साथ अपनेको बङ्गाल और मद्रासमें पूर्ण शक्तिशाली बना लिया और यह निश्चय कर लिया कि ज्योंही अवसर मिले, दिल्लीके शासनकी बागडोरको मरहठोंके हाथसे छीनकर दिल्लीपर भी अपना प्रभुत्व स्थापित करें। लेकिन पानीपतकी हारके पीछे उन्हें ऐसा अवसर हाथ न लगा कि जबतक मरहठे एक शक्तिके भीतर संगठित रहे तबतक वे खुले प्रकार मरहठोंको लड़ाईके लिये ललकारें, जो कि उस समयमें भारतकी सबसे प्रधान शक्ति थी। थोड़े-से लालरङ्गने, जो बङ्गालके मानचित्रमें था, बढ़कर आज आधे बङ्गालको घेर लिया। छोटा-सा लालरंगका टुकड़ा जो मद्रासमें था, उसने फैलकर आधी मद्रास प्रेसिडेन्सीको अपनी गोदमें छिपा लिया। लेकिन जो लाल निशान बम्बई प्रेसिडेन्सीमें शिवाजीके कालमें था, उतना ही निशान नाना फड़नवीसके समयतक रह गया। एक इञ्च भी भूमि वे पश्चिमी किनारेपर अपने राज्यान्तर्गत न ला सके, जब कि दूसरे प्रान्तोंमें सारी प्रेसीडेन्सी लाल रंगसे रंग उठी। मरहठे सह्याद्रिकी चोटीपर पहरेदारकी नाईं अपने तेज भालेसे उन लोगोंको छेद देनेके लिये तैयार थे, जो उधर पैर रखनेका साहस करते। इसलिये यूरुपीय या एशिया-देशवासी; या मुसलमान—किसी भी अहिन्दूका साहस नहीं पड़ा कि मरहठोंके हिन्दू-साम्राज्यको भारतवर्षका सर्वोपरि राज्य स्वीकार करनेमें किसी प्रकारकी आनाकानी करे, और यह बात तबतक दृढ़ रही जबतक कि मरहठे छिन्न-भिन्न होकर बँट नहीं गये।

यद्यपि इसमें कोई शंका नहीं है कि अंग्रेजोंमें वे जातीय गुण जिनके कारण लोग उनके अनुयायी बन जाते हैं, अर्थात् अपने स्वार्थको जातीय स्वार्थकी अपेक्षा तुच्छ समझकर त्याग देना और अपनी जाति तथा समाजके प्रति विश्वासघात करनेको धार्मिक दृष्टिसे पाप समझना या स्वतन्त्रतापूर्वक एक ग्रास मधुर भोजनपर ही संतोष कर लेना इत्यादि, मरहठोंसे बढ़े-चढ़े थे, तथापि हमें वर्त्तमान समयको देखकर भूत कालका बिल्कुल ठीक-ठीक पता चलानेमें बहुत कुछ बुद्धिमानीसे विचार करना चाहिये। कामको देखकर प्रत्येक मनुष्य बुद्धिमानी दिखलाता है; पर यदि हम उन्हीं कार्य्य और कारणोंपर ध्यान दें जिनका ठीक अनुभव कार्य पूर्ण होनेके पहिले हुआ था, तो वे दो सेनायें जो सुसज्जित होकर लड़ने जा रही हैं, उनमेंसे कौन पराजित और कौन विजयी होगी, इस बातको जाननेवाले केवल भविष्य-वक्ताही हो सकते हैं, कोई भी राजनैतिक पुरुष इसे ठीक ठीक नहीं बता सकता। जितनी वैज्ञानिक तथा संगठन-शक्ति उस समय अंग्रेजोंकी थी, वह इतनी बढ़ी-चढ़ी न थी कि मरहठोंको भारतवर्षके राजनैतिक क्षेत्रमें सदैवके लिये या बिलकुल अयोग्य ठहरा सके। इसके अतिरिक्त अंग्रेजोंको स्वाभाविक बड़ी-बड़ी कठिनाइयां उपस्थित थीं। यहांतक कि उनको एक विदेशीय शत्रुकी रणभूमिमें लड़ना था जो कि उनकी मातृभूमिके मुख्य केन्द्रसे कई हज़ार मील दूर थी। जापानने, जिसने कि अपनी कमर एक शताब्दीसे कसनी शुरू की है, अपनी वैज्ञानिक और राजनैतिक शक्ति-

की बड़ी भारी त्रुटिको आधी ही शताब्दीके भीतर अपने योरोपीय प्रतिद्वंद्वियोंके मुकाबिलेमें बहुत अंशोंमें पूरा कर लिया है। मरहठे भी और बातोंमें जापानियोंके बराबर होनेके कारण ऐसे हीसफलीभूत हुए होते और विशेषतः जिस समयकी बात लिखी जा रही है, उस समय अंग्रेज मरहठोंसे इतने बढ़े-चढ़े न थे कि वे मरहठोंको भारतकी प्रधान शक्तिके पदसे, जिसके द्वारा उन्होंने उस समयके मुगल, अफ़गान, फारसी, पुर्तगीज और अंग्रेजोंको घोर लड़ाइयोंमें सामना करके परास्त किया था, हटा देते।

अंग्रेज स्वयं भलीभांति इस बातको जानते थे। इसलिये वे कभी भी खुल्लम-खुल्ला मरहठोंके अधिकारपर हस्तक्षेप नहीं करते थे, जबतक कि मरहठे एकताके सूत्रमें बन्धे रहे। जब आपसमें विरोध पैदा हो गया और उन्होंने लड़ना आरम्भ कर दिया तब भी अंग्रेजोंके अतिरिक्त और किसीका साहस न हुआ कि उनकी शत्रुताकी क्रोधाग्निको जगायें, पर अंग्रेज अपनी सफलताका अवसर समझकर उनका सामना करनेको उद्यत हो गये। बङ्गाल और मद्रासमें बढ़कर वे इतने बलशाली हो गये थे कि जिससे उन्हें साहस हो गया था औरवे बम्बई-प्रान्तमें भी मरहठोंको आपसमें लड़ते देखकर शीघ्र ही उनसे लड़नेको उद्यत हो गये। यह बात रघुनाथरावको मालूम ही थी; इसलिये जब वह हार गया और उसके साथियोंने उसका परित्याग कर दिया और उसके देशवासियोंने उसे निकाल दिया तो उसके सरमें महाराष्ट्रके ऊपर राज्य करनेका

भूत सवार हुआ। इसी धुनमें उसने अंग्रेजोंकी शरण लेनेका विचार दृढ़ किया और इस प्रकार अपनी जातीय स्वतन्त्रताको अपने सबसे बड़े शत्रुके हाथ बेचनेपर तुल गया, और उन्हें अवसर दिया कि वे मरहठोंके ही हाथसे; जिसे उन्होंने इस समय अपने भाइयोंका लहू बहानेको उठाया था, मरहठा-राज्यके दुर्गकी पनाहगाहको तोड़ दें। अंग्रेजोंने बड़ी उत्सुकताके साथ अपने भाइयोंकी हत्या करनेवाले रघुनाथरावके हाथको इस शर्त-पर पकड़ा कि सालसिट, बसीन और भड़ौचके जिले जिनकी वार्षिक आय ३० लाखसे कम न थी, हमें दो और इसके बदले हम तुमको पूनाका पेशवा बना देंगे। यह सन्धि हो जानेपर अंग्रेज सेनापतिने खुले दिलसे शीघ्र ही रघुनाथरावको साथ लेकर मर-हठोंसे लड़ाई ठान दी और उनके राज्यपर आक्रमण कर दिया। जितने भी छोटे-छोटे राज्य मरहठोंके अधीन थे उन्होंने यह समाचार पाकर कि अंग्रेज और मरहठोंमें युद्ध प्रारम्भ हो गया है, मरहठोंके साथ सारे भारतवर्षमें बगावत कर दी। लेकिन नाना फड़न-वीस, जो इस समय राज्य-परिवर्त्तन-वादियोंकी शक्तिका बाग-डोर अपने हाथमें लिये हुए था, बड़ी दृढ़ताके साथ सारी कठि-नाइयोंका सामना करनेके लिये तैयार हुआ। यद्यपि पूनाका नवीन राज्य-प्रबन्ध बहुत असंगठित दशामें था तिसपर भी जो कुछसेना एकत्रित हो सकी, उसे नाना फड़नवीसने इकट्ठी करके हरिपन्त पाड़केकी अध्यक्षतामें अंग्रेजी सेनाको जो मिस्टर कीटीङ्गके सेनापतित्वमें बढ़ी आ रही थी, रोकनेके लिये भेजा।

इस कार्यको हरीपन्त और उसकी सेनाने बड़ी योग्यताके साथ पूर्ण किया। दूसरी जगहोंमें उन्होंने शत्रुओंको बड़ी हानि पहुंचाई और उन्हें बड़ी बहादुरीके साथ आगे बढ़नेसे रोक रक्खा। सन् १७७७ ई० में अंग्रेजोंके भारतके राज्य-प्रबन्धमें कुछ परिवर्त्तन हुआ जिसके अनुसार बंगालका गवर्नर सारे भारतवर्षके अंग्रेजी राज्यका प्रधान समझा जाने लगा। उसने बम्बईके गवनरके इस कार्यको अर्थात् मरहठोंके साथ लड़ाई छेड़नेको नापसन्द किया और मरहठा-राज्यके साथ सन्धि करनेके लिये अपने राजदूतको पूना भेजा। नानाने, जो सम्प्रति महाराष्ट्रकी सारी अशांतियोंको रोकनेके लिये अवसरकी ताकमें अत्यन्त उत्सुक हो रहा था, तुरन्त अंग्रेजोंके साथ सुलहनामा कर लिया जिसके अनुसार अंग्रेज सालसीट और भड़ौंच पा गये और उन्होंने रघुनाथरावका साथ छोड़ दिया।

ज्योंही अंग्रेजोंसे सुलह हुई कि नानाने महादाजी शिन्डेको महाराष्ट्रके अन्तर्गत पैदा हुए विप्लवको दबा देनेके लिये नियुक्त किया और पाडके और पटवर्धनको हैदरअलीको, जिसने मरहठोंके राज्यपर आक्रमण किया था, दंड देनेके लिये भेजा।

जबकि सारे मरहठे-सेनापति भिन्न २ कार्यों पर नियुक्त कर उन्हें पूरा करनेके लिये भेजे गये, अंग्रेजोंने सन्धिकी अवहेलना कर रघुनाथरावको मरहठोंके हवाले करना अस्वीकार किया और फिर शत्रुताकी घोषणा इस विचारसे कर दी कि जबतक

बाहर भेजी हुई मरहठी सेनायें आकर नानाकी सहायता करेंगी, उसके पहिले ही हम पूनामें चलकर उसे कुचल डालेंगे। मरहठोंको भयभीत और व्याकुल करनेकी इच्छासे सन् १७७६ ई० में कर्नैल ईगरटनकी अध्यक्षतामें कुछ फ़ौजें पूनाके लिये रवाना हो गईं। मरहठोंने भी जोकि पूनाके सुलहनामेको पसंद नहीं करते थे, भीतरी सारी बगावतोंसे, जिन्हें महादाजीने दबा दिया था, छुट्टी पाकर अंग्रेजोंको ललकारा और अपनी परम्पराकी लड़ाईकी व्यूह-रचनाके आधारका अवलम्बन किया। अंग्रेजोंको लालच देकर आगे बढ़ाते चले गये :और उनका लगाव बड़ी चालाकीसे बम्बईसे विच्छेद कर दिया। भाऊराव पानसे अंग्रेजी सेनाके किनारे २ लगा हुआ आगे बढ़ता चला जाता था और लगातार उसे ऐसा लाचार करता गया और ऐसी चालाकीके साथ अपनेको बचाये रखा कि अंग्रेजी सेना उसपर धावा नहीं कर सकती थी, परन्तु मरहठे जब कभी उन्हें पहाड़ोंके किनारे पाते थे तो अचानक उनपर आक्रमण कर देते थे, जिसे अंग्रेज बचा भी नहीं सकते थे। उनकी सेना बारम्बार छितर-बितर कर दी जाती थी और उनकी रसदके पहुंचनेमें भी हस्तक्षेप होता था। अन्तमें जब वह घाटीके सिरेपर पहुंच गई तो उसका सम्बन्ध बम्बईसे बिलकुल टूट गया। तिसपर भी वह निर्भयतासे आगे बढ़ती गई जिससे मरहठोंकी भी इच्छा ज्यों-ज्यों शत्रु पास आते जाते थे उनपर आक्रमण करनेकी प्रबल होती जाती था। इन लोगोंने यहांतक निश्चय कर लिया था कि

तेलगांवसे पूनातककी सारी भूमि उजाड़ और सुनसान कर दी जाय और यदि आवश्यकता पड़े तो राजधानीतकको भी फूंक दिया जाय, किन्तु उसे किसी प्रकार शत्रुके हवाले न किया जाय। इस भयानक जातीयताके दृढ़ विचारका असर अंग्रेजों-पर बिना पड़े न रहा। खान्डालाके युद्धमें कर्नैल केको मरहठोंने बड़ी बुरी तरह घायल किया और किर्कीकी लड़ाईमें कैप्टेन स्टूआर्टको मार डाला जिससे अंग्रेज बहुत दुःखी हुए। पग-पगपर अंग्रेजोंकी हानि होने लगी। लेकिन योग्यतापूर्ण और नियमोंके पालनमें अद्वितीय अंग्रेज आगे बढ़ते ही गये और अन्तमें तेलगांवमें घुसे। लेकिन वहां पहुंचनेपर उन्हें महादाजी शिन्डे और हरीपन्त पाडकेकी बड़ी सेनाका सामना करना पड़ा। अंग्रेजोंने बड़े उत्साहके साथ आक्रमण किया। अन्तमें मरहठोंकी सेना पीछे हटी और भिन्न २ हिस्सोंमें बट गई और फैले हुए अंग्रेजोंपर चारोंओरसे आक्रमण करती रही, तिसपर भी वे बिल्कुल रक्षित रहे। न तो उनको खाना मिलता था, न उनके घोड़ोंको चारा मिलता था। अंग्रेजोंके पास किसी प्रकार यह अफ़वाह फैल गई कि ज्यों २ हमारी सेना आगे बढ़ती जायगी, हमें और भी सुनसान स्थान मिलते जांयगे। उद्यत, बहादुर, हठी अंग्रेज तब भी आगे बढ़नेका प्रयत्न करते रहे। लेकिन चपल मरहठोंने उन्हें अच्छी प्रकार घेर लिया था तथा उन्हें भलीभांति आगाह कर दिया कि हम अपनी राजधानीको फूंक देंगे, किन्तु अंग्रेजोंके हाथ न जाने देंगे। अंग्रेज

सेनापतिने मरहठोंके कार्य्योंको देखकर भलीभांति जान लिया कि पूनाकी ओर बढ़ना फ़ांसीकी ओर बढ़ना नहीं है। उसने अब इस उलझनसे निकलनेका केवल यही उपाय देखा कि हम बम्बई लौट चलें,पर यह उनके लिये बड़ा अपमानजनक विचार था। सीधे दिल्लीकी ओर लौट जाना भी दुष्कर था; इसलिये अंग्रेज-सेनापतिने अपनी फौजको मरहठोंपर आचनक आक्रमण करनेकी आज्ञा दी और कहा कि इसके पश्चात् धीरे-धीरे पीछे हटो। लेकिन मरहठोंके ऊपर अचानक आक्रमण करनेका विचार करना वैसा ही था,जैसा कि बच्चा अपनी दादी-को दूध पिलाना सिखावे। मरहठे यह सब बातें जानते ही थे। ज्योंही अंग्रेजोंने आक्रमण किया, वे कतारोंमें खड़े हो गये और इशारा करनेपर बड़े वेगसे शत्रुओंपर टूट पड़े। अंग्रेज बड़ी ही वीरताके साथ लड़े, लेकिन मरहठे तिलमात्र भी न हिले। अन्तमें हारकर और बड़गांवमें छितर-बितर होकर अंग्रेजोंकी ६ हजार सेनाने बिना किसी शर्तके मरहठोंके सामने अपने हथियार रख दिये।

नाना, बापू और शिन्डेने कहा कि रघुवाको शीघ्र हमारे हवाले करो और उन सारे ज़िलोंको, जो तुम्हें पुरंधरके संधि-पत्रके अनुसार मिले हैं, हमारे हवाले कर दो। इसपर दो अंग्रेज-अधिकारियोंको कि जबतक अंग्रेज इस सुलहनामेकी पाबंदीको काममें नहीं लाते, रोक लिया गया। अंग्रेज-सेनापतिने जो लगभग एक महीनातक मरहठोंके हाथमें कैदी रह चुका था,

सुलहनामेकी सब शर्तोंको स्वीकार कर लिया ताकि उसकी सेना किसी प्रकार बम्बई लौट जाय। इस बड़ी विजयके समाचारको सुनकर सारे महाराष्ट्रके भीतर प्रसन्नता बिजुलीकी तरह दौड़ गई। विशाल "यूनियन-जैक" (अंग्रेजी झंडा) मरहठोंके पीले झंडेके सामने झुक गया। यद्यपि पारिवारिक झगड़े हो रहे थे और मरहठे असंगठित दशामें थे, तथापि उनकी जातिने उनका पूरा साथ दिया और इस स्वतंत्र-राज्यने अपने इतने वीर और बलवान शत्रुको भलीभांति हरा दिया। केवल यही एक बचा हुआ विपक्षी था, जिसने इसके पहिले मरहठोंकी प्रधानताके सम्बन्धमें कभी भी किसी प्रकारका प्रश्न नहीं उठाया था; ज्यों ही उसने ऐसे प्रश्न करनेका साहस किया कि उसे इसके लिये नीचा देखना पड़ा। उस समयके पत्रोंके देखनेसे ज्ञात होता है कि मरहठा जातिने अंग्रेजोंको वह पाठ पढ़ाया जैसा दूसरे किसीने कभी नहीं पढ़ाया था। इतना बड़ा अपमान उनका कभी भी नहीं हुआ था। इससे सब लोग पेशवाको और भी प्यार करने लगे जो कि उनकी विजयका सगुन था और इस विजयसे लोग पेशवाको बड़ा भाग्यवान सोचने लगे। जन्मकालहीसे हमारे प्यारे शिशु-राजकुमारका जीवन ऐसा ही आश्चर्य-जनक हुआ जैसा कि महाराज आनंदकंद श्रीकृष्णजीका हुआ। मरहठोंके शत्रु मिट गये और उनका मनोरथ परमात्माने पूर्ण किया और हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्मकी इस पवित्र युद्धमें विजय हुई।

———

उन्नीसवां अध्याय

अंग्रेजोंको नीचा देखना पड़ा।

एक बड़ी अंग्रेजी सेनाके पराजित होकर हथियार रख देनेका समाचार ज्योंही कलकत्ता पहुंचा,अंग्रेज बहुत क्रोधित हो उठे। उन्होंने मरहठोंको बिलकुल सत्यानास कर देनेका पक्का विचार कर लिया और उनका सेनापति घिर जानेपर बड़ागांवमें जो संधि करके जान बचाकर बम्बई आया था, उसे अस्वीकार कर दिया और मरहठोंके साथ नई शत्रुता अधिक द्वेषके साथ करनेके लिये उद्यत हो गये। रघुनाथराव यदि किसी दूसरे राज्यमें होता, तो राज-विद्रोही होनेके अपराधमें मार डाला गया होता; किन्तु सब कुछ होते हुए भी उसके साथ एक राज-कुमारके जैसा व्यवहार किया जाता था, परन्तु वह अपने नीच स्वभावके कारण फिर भागकर अंग्रेजोंसे जा मिला। युद्ध आरम्भ हो गया। गोथार्ड गुजरातसे आया और बसीनकी ओर बढ़ा। उसको रामचन्द्र गणेश मरहठे-सेनापतिने रोका और घमासान युद्ध होने लगा। अन्तिम बार उसने बड़ी वीरता और साहसके साथ ऐसा आक्रमण किया कि विजय होना ध्रुव था,किन्तु अभाग्यवश एक गोला इस बहादुर सेनापतिको लगा, वह घोड़ेसे गिर पड़ा जिससे गोथार्डने समय पाकर सन् १७८०

ई० में बसीन ले लिया। इसके पश्चात् अंग्रेजोंने जो पहिली लड़ाईमें हथियार रख दिया था, उस अपने कलंकको मिटानेके लिये मरहठोंकी सर्वप्रिय राजधानी पूनाहीको लेनेका विचार किया; जिसके लेनेमें पहिली बार वे बुरी तरह असफल हो चुके थे। इसलिये अंग्रेजी सेना शीघ्र ही पूनाके लिये चल पड़ी ताकि वह नानाके हाथसे हथियार रखवाले। लेकिन महाराष्ट्रके निपुण राजनैतिक नानाने पहिले ही एक ऐसा जाल बना लिया था, जिसमें अंग्रेज सारे भारतवर्षमें फँस गये। उसने हैदरअलीसे मद्रास और भोंसलेसे बंगालपर आक्रमण करनेकी प्रतिज्ञा करा ली थी, और स्वयं उन्हें बम्बईमें सत्यानास करनेका विचार ठान लिया था। तदनुसार हैदरअलीने फ्रांस-गवर्नमेण्टकी सहायतासे मद्रासमें अच्छी तरह सफलता प्राप्त की। परसुराम भाऊ १२ सहस्र सेनाके साथ उस अंग्रेजी सेनाके पीछे पड़ा था,जो पूनाकी ओर आ रही थी। नाना,तुकोजी होल्कर और हरीपन्त पाडकेने तीस सहस्र सेना लेकर अंग्रेजी सेनाका सामना किया। अब जनरल गोथार्डको यह अनुभव होने लगा कि मैं भी उसी दाँवमें फंसा जिसमें जनरल ईगरटन फंसा था। उसे आगे बढ़नेका साहस न होता था और वह इतना आगे बढ़ आया था कि पीछे लौट जाना उसके लिये हानिकारक और अपमानजनक दोनों था। इसलिये वह उसी जगहपर जमकर अपनी शक्ति बढ़ाने लगा। लेकिन यह भी देरतक न कर सका। मरहठोंने कैप्टेन मेके और करनेल

ब्राउनको, जो गोथार्डकी सहायताके लिये आ रहे थे, आक्रमण कर हैरान कर दिया और ऐसी स्थिति प्रकट कर दी कि जिससे अङ्गरेजी सेनाका लगाव ही बम्बईसे टूट गया। अन्तमें लज्जित होकर करनैल गोथार्डने पूनापर धावा करनेका विचार त्यागकर लौट जानेकी इच्छा की। ज्योंही चोटीसे गिरी हुई अङ्गरेजी सेनाने पीछेकी ओर मुड़कर चलना आरम्भ किया त्योंही भाऊ और तुकोजी मरहठी सेना लेकर उनपर टूट पड़े। यद्यपि अङ्गरेज बड़ी शूरता और वीरताके साथ लड़े तथापि मरहठोंने उन्हें बुरी प्रकार हराया। जो सेना-पति मरहठोंका राजधानीपर विजय प्राप्त करके अपनी बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिये आया था, वह किसी प्रकार लड़ाईसे भागकर अपनी लगभग सारी बारूद, बन्दूक, खीमें तथा सामान, हजारों तोपोंके गोलों और सहस्रों बैलोंको छोड़कर बम्बईमें पहुंचा। ये सारे सामान विजयी मरहठोंके हाथ लगे। दो बार अंग्रेजोंने पूनाको जीतनेके लिये जी तोड़कर प्रयत्न किया, किन्तु दोनों ही बार बुरी तरह हार खाई और अन्तमें सभी अपमानित होकर बम्बई लौट गये। इसके पहिले अंग्रेज इतने अपमानित होकर कभी भी घर नहीं लौटे थे।

उत्तर भारतमें भी अङ्गरेज इससे किसी विशेष अच्छी दशामें न रहे। प्रारम्भमें गोहादके रानाकी सहायतासे अंग्रेजोंने सेंधियाके—ग्वालियरके किलेको घेर लिया; किन्तु महादाजी सेंधियाके घोर आक्रमण करनेपर इसे देरतक अपने हाथमें न रख

सके। करनैल मूर भी अपने मित्रकी सहायताके लिये शीघ्र वहां पहुंचा, किन्तु कुछ न कर सका। दक्खिनमें हैदरअलीसे हारकर और बम्बईमें तुकोजी और पटवर्धनसे नीचा देखकर और उत्तरमें सेंधियासे परास्त होकर अङ्गरेजोंने उस मित्रताकी जंजीरको, जिसे नानाने तैयार किया था, तोड़नेका प्रयत्न किया और महादाजी सेंधियासे प्रार्थना की कि आप अपने राज्यसे हम लोगोंके साथ एक अलग सुलहनामा करानेका प्रयत्न करें। नाना फड़नवीसने अलग सुलह करनेसे साफ़ उत्तर दे दिया और कहा कि बिना हैदरअलीकी रायके हम किसी प्रकारकी संधि नहीं कर सकते।

मरहठोंकी जलसेनाने भी अच्छी सफलता प्राप्त की थी। उनके सेनापति आनन्दराव धुलापने अंग्रेजी रेंगर नामी वेड़ाको पकड़ लिया। ठीक उसी समय जबकि संधिकी बातचीत हो रही थी, हैदरअली मर गया। इसलिये नानाने १७८३ ई० में संधि कर ली। इस संधिके अनुसार अंग्रेजोंने रघुनाथरावको मरहठों-के हवाले किया और सालसिटको छोड़कर जो देश वे मरहठों-के दबा बैठे थे तथा पुरन्धरके सुलहनामेमें पाये थे, मरहठोंको लौटा दिये और यह प्रण किया कि हम किसी भी राजाको मरहठोंके विरोधमें सहायता न देंगे और मरहठोंने भी प्रतिज्ञा की कि हम कोई कार्य ऐसा नहीं करेंगे जिससे अंग्रेजोंको हानि पहुंचे। सबसे आवश्यक बात यह हुई कि दिल्लीके राज-नैतिक क्षेत्रमें अंग्रेज़ हस्तक्षेप न करेंगे—इसका पूर्ण अधिकार मरहठोंको है कि वे जो चाहें करें।

इस प्रकार मरहठों और अंग्रेज़ोंकी पहिली लड़ाईका अन्त

हुआ। मरहठोंने यूरपकी उस शक्तिके साथ, जो अभीतक मरहठोंसे नहीं लड़ी थी, रणमें लड़कर उनके सामने अपनेको दिल्लीका वजीर रहना प्रमाणित कर दिया, जिससे अंग्रेज़ोंको बड़ी भारी शिक्षा मिली, कि यद्यपि हम बङ्गाल और मद्रासमें शक्तिशाली हैं तथापि यदि हमलोग शह्याद्रिकी ओर कुदृष्टि फेरेंगे और मरहठोंके हिन्दू-साम्राज्यका अनभल देखगे तो हमें अवश्य नीचा देखना पड़ेगा।

सालवाईके संधि-पत्रके थोड़े ही दिन बाद रघुनाथरावने भी अपनी चालको बदल दिया अर्थात् अपनी जातिको शत्रुओंके हाथमें फसाना उचित न समझा। इसने अपने नीच विचारों और कर्मोंद्वारा मरहठोंको उनके उस उच्च आदर्शसे गिरा दिया था जिसके लिये उनके पूर्वज लड़ते हुए मरे थे; सम्प्रति वे आपसमें ही लड़नेके लिये तत्पर हो गये थे। उसका जीवन महाराष्ट्रके लिये वैसा ही हानिकारक हुआ जैसी पानीपतकी लड़ाई। सालवाईकी संधिके थोड़े ही समय बाद रघुनाथराव अपनेसे भी नीच उत्तराधिकारी छोड़कर मर गया। जिस समय रघुनाथ अंग्रेज़ोंसे मिलकर षड्यंत्र रच रहा था, उस समय मरहठोंके अभाग्यवश रघुनाथरावके एक पुत्र पैदा हुआ जिसका नाम उसके पितामहके नामपर द्वितीय बाजीराव रक्खा गया। यह लड़का उन नीच कर्मोंके करनेमें तत्पर हुआ जिनको छोड़नेके लिये इसका पिता विवश किया गया था। यह महाराष्ट्रकी स्वाधीनताको एक ठीकरेके मूल्यपर बेचकर महाराष्ट्र-राज्यके सत्यानाशका कारण हुआ। लेकिन जबतक नाना फड़नवीस और महादाजी जीवित थे, तबतक ऐसा नहीं हो सका था।

बीसवां अध्याय

सवाई माधोराव
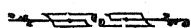
सर्व-प्रिय पेशवा

जिस योग्यतासे नाना और महादाजीने ऐसे महा शक्तिशाली राज्यका विशाल भार अपने कंधोंपर वहन किया, उसका विचार करते हुए यह कहनेमें किसीको संकोच न होगा कि वे आदर्श राजनीतिज्ञ और वीर पुरुष थे। इङ्गलण्ड, फ्रांस, हालैण्ड और पुर्त-गालने राज्य-स्थापनके लिये जितने भी राजनीतिज्ञ भेजे उनमेंसे कोई भी इन दोनों महापुरुषोंको बल और बुद्धिमें नीचा न दिखा सका। हेस्टिंग्स, वेलजली और कार्नवालिसकी उनके सामने एक भी न चली। दोनोंने ही हिन्दू-राज्यके बढ़ते हुए वैभवको देखा था। दोनोंने ही महाराष्ट्रकी नीति, उसका उद्देश्य, और अपने कर्त्तव्यकी शिक्षा नाना साहब और सदाशिवराव भाऊसे पाई थी। दोनोंने ही पानीपतका मैदान देखा था और वहांसे लौट-कर उस रक्त-रञ्जित भूमिपर पड़े हुए वीर पुरुषोंके उद्देश्यको पूरा करनेका निश्चय किया था। किन्तु उन्हें ऐसे राज्यका भार उठाना पड़ा जो उस समय गृह-कलहसे जर्जर हो रहा था; जिसके

शासनके लिये एक नाममात्रका राजा और प्रधान मन्त्रीकी जगह एक बालक था, और जिसको नष्ट करनेके लिये एक महा शक्तिशाली यूरोपीय शत्रु अपनी राज्यलिप्साके लिये समग्र शक्तियोंका उपयोग कर रहा था। फिर भी उन्होंने अदम्य उत्साह और विचक्षण बुद्धिसे सम्पूर्ण कठिनाइयोंका सामना किया; राज्यके सब विद्रोहियोंको शान्त किया और अपने विशाल बाहु-बल तथा सुदूरदर्शितासे समस्त यूरोपीय और एशियाई शत्रु-ओंको पराजित करके नीचा दिखाया।

राज्यकी दशा सुधारनेके लिये उन्हें एक ऐसी क्रान्ति पैदा करने तथा उसे संयत रखनेका कठिन उत्तरदायित्व लेना पड़ा, जिसका परिणाम बिल्कुल अनिश्चित था। किन्तु इस क्रांतिने सारे शत्रुओं और सरकारपर विजय पाई। राष्ट्रने इसे स्वीकार कर लिया और युद्ध-क्षेत्रमें इसकी परीक्षा भी हो चुकी। अतः यह सर्वथा स्वाभाविक और राजनीतिके अनुकूल था कि इस विजयको किसी महोत्सवद्वारा संसारपर विदित किया जाय। बालक पेशवा—सवाई माधोराव—का विवाहोत्सव इस राष्ट्रीय आनन्दको मनानेके लिये अत्यन्त उपयुक्त अवसर था। वह प्रजाका मनोनीत पेशवा था, उसीके लिये राष्ट्रने युद्ध भी ठाना था। जिस पेशवाकी हत्याके लिये शत्रुओंने युद्ध ही नहीं किया वरन् उसे गुप्त और नीच प्रयत्नोंद्वारा विष देकर मार डालना चाहा, आज उसे सब संकटोंसे सुरक्षित पाकर राष्ट्रके आनन्द-का क्या ठिकाना! जिस प्रकार कंसके अत्याचारोंसे कृष्णको

सुरक्षित पाकर गोकुलवालोंने आनन्द प्रकाशित किया था, अपने प्यारे पेशवाको जीवित पाकर प्रजा भी वैसे ही आनन्दमें मग्न हो उठी। इस राजकीय महोत्सवमें सम्मिलित होनेके लिये लोग चारों ओरसे झुंड-के-झुंड आने लगे। राजकुमारों, सरदारों, कवियों, सेनापतियों तथा राजनीतिज्ञोंसे पूना शहर आन्दोलित हो उठा। संसारपर महाराष्ट्रसंघकी धाक जमानेके लिये और विदेशियों तथा शत्रुओंकी इस दुराशाको कि,महाराष्ट्र-मण्डल शीघ्र ही गृहकलहसे छिन्न-भिन्न होकर नष्ट-भ्रष्ट होनेवाला है, दूर करनेके लिये, नानाने स्वयं महाराष्ट्र-छत्रपतिको निमन्त्रित किया था, और जब वे पूनाके पास पहुंचे, तो अत्यन्त राजकीय समारोहके साथ उनका स्वागत किया।

भव्य राज-भवनमें छत्रपति सिंहासनपर आसीन थे, उनके चारों ओर वाइसराय, सेनापति, जेनरल, राजनीतिज्ञ और राजकुमारगण बैठे थे। इनमेंसे कितने तो इतने बड़े प्रान्तोंके शासक थे जो दूसरे महाद्वीपोंके एक राजके बराबर थे। उस सभामें पटवर्धन, रास्ते, फड़के और होलकर, सिन्धिया, पवार, गायकवाड़ और भोंसलाके प्रतिनिधि उपस्थित थे। वहांपर हरद्वारसे लेकर रामेश्वर तकके विद्वानोंका जमघट लगा हुआ था। जयपुर, जोधपुर और उदयपुरके महाराजे सादर निमन्त्रित किये गये थे और उनके प्रतिनिधि सभामें उपस्थित थे। निजाम, मुगलराज और भारतकी यूरोपीय शक्तियोंने अपने २ राजकुमार और राजदूतोंके द्वारा भेंट भेजी थी। राजधानीसे मीलों दूरतक

घोड़ों, तोपों और पैदल सेनाओंका पड़ाव पड़ा था, जिसके देखनेसे महाराष्ट्रकी सामरिक शक्तिका अच्छा परिचय मिलता था। अगरे और धुलाप जलसेनाके अधिनायक थे। पेशवाकी ओरसे धुलाप अतिथियोंके स्वागतका प्रबन्ध बड़ी योग्यतासे कर रहा था। उस विशाल जनसमुदायके ऊपर बड़े-बड़े सुनहले गेरुआ झण्डे फहराते थे मानों राष्ट्रको स्वधर्म-राज्य अथवा हिन्दू-पाद-पादशाहीके महान कर्त्तव्यकी ओर संकेत कर रहे थे।

एक नियत संकेतपर पैदल, अश्वारोही और तोपोंकी सेनाके बाजे बजने लगे और "प्यारे राजकुमारकी जय हो, जय हो" के उच्च निनादसे दिशायें भर गईं। इसी समय सुन्दर बालक पेशवाने राज-कर्मचारियोंके साथ अत्यन्त धूमधामसे धीरे २ राजभवनमें प्रवेश किया। सारा राज-समाज खड़ा हो गया और शिर झुका-कर पेशवाको राष्ट्रकी दृढ़ राज-भक्तिका परिचय दिया। किन्तु लोगोंके आश्चर्यकी सीमा न रही, जब उन्होंने बालक पेशवाको, जो भारतका वास्तविक शासक था, सितारापति छत्रपतिकी ओर, जो सभाके मध्यमें सिंहासनपर बैठे थे, फूलोंकी मालासे तीन बार लपेटे हाथोंको जोड़कर जाते हुए देखा। यही नियम था कि पेशवा महाराष्ट्रके राजाके सामने उपस्थित हो और हाथ जोड़कर उसकी अधीनता स्वीकार करे। इस दृश्यसे बड़े बड़े वीरोंकी आंखोंसे आनन्दाश्रु बहने लगे; यहांतक कि तटस्थ मन्त्रीके गम्भीर मुखपर भी प्रसन्नता झलकने लगी और उनकी आंखोंसे आंसुओंकी बड़ी २ बूंदें टपकने लगीं।

इस महोत्सवने फिरसे मरहठोंमें नवीन जान फूंक दी और महाराष्ट्र फिरसे एकताके सूत्रमें बंध गया। अन्य भारतीय राजा और यूरोपीय शक्तियां, जो मराठोंकी फूटपर फूले न समाती थीं, आज नाना और अन्य महाराष्ट्र नेताओंकी सफलता देखकर निराश हो गयीं। इस उत्सवका महाराष्ट्रके नेताओंपर भी कम प्रभाव न पड़ा। प्रजातन्त्रके गौरवने उनमें एक तरहका अभिमान भर दिया और अकेले २ राज्यस्थापनकी महत्ता इसके आगे कितनी तुच्छ है—इसे उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया।

जैसे २ गृहकलहकी अग्नि बुझती गई, महाराष्ट्र उन्नतिके शिखरपर चढ़ता गया। नाना फड़नवीस और उनके सहायकोंने शासन, आय-व्यय और न्यायकी ऐसी व्यवस्था की थी कि सारे भारतवर्षमें महाराष्ट्र तथा उसके अन्तर्गत प्रान्तोंका शासन ही सर्वोत्तम था। भूमि-कर नियत करने और उसके वसूल करनेकी विधि, न्यायालयोंमें छोटे-बड़े सबके साथ समान व्यवहारका समुचित प्रबन्ध और इन सबके उपरान्त लोगोंको यह अनुभव कराना कि उस महान कर्तव्यकी पूर्ति, जिसके लिये उनके पिता-पितामह और देवताओंतकने अपना रक्त बहाया था, आवश्यक है; और उनका संबन्ध एक ऐसी जातिसे है जो हिन्दू-धर्मकी रक्षा और स्वाधीनताके लिये अपने विशाल कन्धेपर एक महान राष्ट्रका भार वहन कर रही है—इन सब विचारोंको लेकर कोई भी हिन्दू ऐसा न था जो ऐसे शुभ समयमें पैदा होनेमें अपना अहोभाग्य न समझता रहा हो। राष्ट्रका प्रत्येक हृदय एक ऊंची

भावनासे प्रभावान्वित हो रहा था। नित्य प्रति एक-न-एक विजय अथवा कोई अन्य सुसम्वाद पहुंचा ही रहता था। तुच्छ-से-तुच्छ मनुष्य भी इसे देशके लिये अत्यन्त गौरवका समय समझता था और उसके विचारसे यह सब उन्नति बालक पेशवा सवाई माधोरावके शुभ-ग्रहकी कृपाका ही परिणाम थी। यह प्रसिद्ध जनश्रुति थी कि स्वयं पहले माधोराव पेशवाने ही मुसलिम तथा अन्य विदेशी अत्याचारियोंको नष्ट करके आ-समुद्र शक्तिशाली हिन्दू-साम्राज्य-स्थापनकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये दूसरे माधोरावके रूपमें जन्म ग्रहण किया है। यही कारण था कि जबसे बालक पेशवाका जन्म हुआ, राष्ट्रीय झण्डेपर भाग्यदेवीकी सदैव कृपा रहती थी। ऐसे प्रचलित अन्धविश्वास भी कभी २ राष्ट्रकी आत्माके अस्पष्ट उद्गार होते हैं और राष्ट्रीय कार्य्यों एवं उसकी विजयोंपर उनका प्रभाव भी कम नहीं पड़ता।

सालवाईके सुलहनामेके पश्चात् ही नानाने हैदरअलीके उत्तराधिकारी और महाराष्ट्रके भयानक शत्रु टीपूको ठीक करने-के लिये परसराम भाऊ और पटवर्धनको आज्ञा दी। सन् १७८४ ई० में युद्धके कारण उपस्थित होने लगे। टीपूने नारगुन्दके हिन्दू-राज्यपर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया और राजाने मरहठोंसे सहायता मांगी। पटवर्धन और होलकरके सेनापतित्वमें निजामकी सहायतासे मरहठोंने टीपूको हराया और उसे सन्धि करनेपर विवश किया। इसके अनुसार टीपूको चौथका पिछला

सारा बकाया चुकाना पड़ा और उसने नारगुन्दपर अत्याचार न करनेकी प्रतिज्ञा की। किन्तु मरहठोंके पीठ फेरते ही उसने सारी प्रतिज्ञापर पानी फेर दिया। नारगुन्दका किला ले लिया और अपने पूर्वजोंका अनुकरण करते हुए राजा तथा उनके समस्त परिवारको निर्दयतापूर्वक मरवा डाला और राजाकी लड़कीको अपने हरममें पकड़वा ले गया। तत्पश्चात् मानों बिहिश्तके समस्त सुखोंपर एकाधिपत्य प्राप्त करने और पाक मौलवियों तथा इतिहास-लेखकोंसे दीनरक्षक, ग़ाज़ी, औरङ्गजेब और तिमूर इत्यादि महान पदवियां लेनेके लिये उसने कृष्णा और तुङ्गभद्राके बीचकी हिन्दू-जनतापर घोर अमानुषिक अत्याचार करने आरम्भ कर दिये। इसलाम मज़हब कबूल करनेके लिये जितने प्रकारके कष्ट देते बन पड़े, टीपूने एकको भी न छोड़ा और हिन्दूधर्म-रक्षामें तत्पर मरहठोंको मानों धत्ता बतानेके लिये ही उसने बलपूर्वक हजारों मनुष्योंकी सुन्नत करा डाली तथा उनपर हर प्रकारके पाशविक अत्याचारोंका प्रयोग किया। हमें इस बातकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये कि जो लोग मुसलमानोंद्वारा युद्धमें मारे गये, यद्यपि उन्होंने अपने प्राण शिवाजी और श्रीस्वामी समर्थ रामदासजीके उपदेशानुसार लड़ते हुए समर्पण न किये थे तथापि यह तो अवश्य था कि इन लोगोंने अपमानित होनेकी अपेक्षा मृत्युमुखमें जाना अधिक अच्छा समझा, क्योंकि एक दो नहीं बल्कि दो सहस्रसे भी अधिक ब्राह्मणोंने, जिन्हें टीपू हठात् मुसलमान बनाना चाहता था, अपने

धर्मसे च्युत हो घृणास्पद बननेकी अपेक्षा बलिदान हो जानेमें गौरव समझकर अपनेको धर्मपर निछावर कर दिया। मरहठोंकी आन्दोलनके प्रथमसे हो धर्मपर बलिदान होना प्रतिदिनकी दिनचर्या थी अर्थात् उन्होंने हिन्दुओंके लिये मुसलमानी धर्म ग्रहण करनेकी अपेक्षा शरीर त्याग कर देना उचित समझ रक्खा था। श्रीस्वामीजीने सह्याद्रि पर्वतकी चोटीपर खड़े होकर उच्च स्वरसे कहा कि ऐसा करना भूल है; क्योंकि यद्यपि यह बात सत्य है कि मुसलमान होनेकी अपेक्षा मर जाना अधिक श्रेयस्कर है तथापि इससे भी बढ़कर यह बात है कि हमलोग प्रयत्न करें कि हमें कोई मुसलमान न बना सके और न हम मारे जायं। हमें अत्याचार करनेकी शक्तिको ही नाश कर देना चाहिये। मर जाना अच्छा है, पर धर्मके ऊपर लड़कर प्राण दे देना ही श्रेष्ठ है। उनके सैकड़ों चेले इस सिद्धान्तको छिपे २ मठोंसे जा-जाकर लोगोंको समझाने लगे। घर २ में इसका प्रचार होने लगा और उन्होंने लोगोंको समझाया कि केवल कांटेके छत्रकी ही इच्छा मत रक्खो, बल्कि असली विजयके ताजके लिये भी उसके साथ ही प्रयास करते जाओ। इन सब बातोंको जानते हुए भी टीपू सुल्तानने औरंगजेबकी भांति ज़बर्दस्ती हिन्दुओंको मुसलमान बनानेका कार्य आरंभ कर दिया जबकि महाराज शिवाजीके वंशज अभीतक पूनामें राज्य कर रहे थे। सहस्रों ब्राह्मणों तथा आन्ध्र, करनाटक और तैमिल प्रान्तके हिन्दुओंका करुण आर्तनाद पूना पहुंचा;

जिससे दुखी होकर उन लोगोंने मुसलमानोंके हाथोंसे मुक्ति दिलानेकी प्रार्थना की थी। क्या ब्राह्मण-राज्य इस बातको सहन कर सकता था? क्या मरहठोंका हिन्दू-राज्य अपने धर्मावलम्बियों-की इस दुर्दशाको सुनकर कभी चुप बैठा रह सकता था? नहीं; कभी नहीं;सर्वथा असम्भव था। टीपूका ऐसा करना मरहठोंको युद्धके लिये प्रचारित करना था; जिसे उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लिया और यद्यपि उनकी सेना उत्तरी भारतवर्षमें लड़नेमें व्यस्त थी, तोभी नानाने सहधर्मियोंके सहायतार्थ तुरन्त ही करनाटककी ओर पयान कर दिया। निजामको भी उसने अपनी ओर इस शर्तपर मिला लिया कि टीपूके राज्यका जो भाग हम जीतेंगे, उसका आधा आपको देंगे। इसके बाद उसने मर-हठी सेनाको अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे हठी टीपूको रोकनेकी आज्ञा दी, जिसके अनुसार पटवर्धन,वहो तथा अन्य मरहठे सेनापतियों-ने एकत्रित होकर अपनी सेनाको भिन्न २ भागोंमें विभाजित कर दिया, तथा बहामी आदि शत्रुओंके दृढ़ किलोंपर आक्रमण कर उनपर अपना अधिकार कर लिया। शत्रु ऐसे विवश हो गये कि बेचारोंने भागकर पर्वतोंकी खोहोंमें शरण ली; पर हिन्दू-सेनाने उस मुसलिम धर्मवीर टीपूको, जिसने हिन्दू-स्त्रियों, बच्चों और शांतिप्रिय साधुओंको सताने तथा उनकी बालि-काओंको धर्मभ्रष्ट करनेमें भारी ख्याति प्राप्त कर ली थी, वहांपर भी सुखपूर्वक न रहने दिया। जब टीपूने देखा कि एक शक्तिशाली हिन्दू-राज्य मेरा सत्यानास कर संसारमें कहीं भी

मुझे शान्तिपूर्वक नहीं रहने देता तो उसने सुलहकी प्रार्थना की। यद्यपि सहस्रों हिन्दू और उनकी बालिकाओंने धर्मरक्षाके लिये अपने प्राण निछावर कर दिये तथापि टीपू सुलतानकी तलवारकी धार मुड़नेका अपेक्षा और तेज़ होती गई, यहांतक कि विवश होकर उनके (हिन्दुओंके) धर्मरक्षकको उनकी सहायताके लिये सेना भेजनी पड़ी। इस प्रकार हर तरहसे विवश होकर टीपूने नरगुंड, कितूर और बादमीकी रियासतोंको मरहठोंके हवाले किया तथा बक़ाया लगानका तीस लाख रुपया भी उसी समय दे दिया और भविष्यत्‌में पन्द्रह लाख रुपया प्रतिवर्ष देनेकी प्रतिज्ञा की। अगर चाहते तो मरहठे भी अपनी शक्तिके ज़ोरसे मुसलमानोंको हिन्दू बना और उन मौलवी-मौलानाओंको, जो टीपूके आज्ञानुसार हिन्दुओंपर भांति-भांतिके अन्याय और अत्याचार कर उनकी शिखा कटवा रहे थे, शिखा धारण करनेपर विवश करते, परन्तु उन्होंने न तो मसजिदें गिरवायीं और न बलपूर्वक मुसलमान-लड़कियोंको उनके घरोंसे निकाला या अन्य धर्मावलम्बियोंको संगीनोंके ज़ोरसे हिन्दू-धर्ममें लानेका प्रयत्न किया। ऐसे सभ्यता और वीरताके काम मुसलमानोंकी शक्तिसे बाहर थे। इन लोगोंने अब तैमूर, टीपू, अल्लाउद्दीन और औरंगजेबके वाक्योंको ही कुरान समझ लिया था, इसलिये वे न्यायोचित सत्कार्य्योंके करनेमें भी धर्मकी हानि समझते थे। धर्मरक्षक मुसलमानोंको छोड़कर ऐसे निष्ठुरता और अत्याचारके कामोंको करनेका भला कौन काफ़िर हिन्दू साहस कर सकता है?

दक्षिणके हिन्दुओंको दुराग्रही टीपूके क्रोधसे मुक्त करनेके बाद अपनी सम्पूर्ण सैनिक शक्तिको एकत्रित कर मरहठोंने उत्तरके शत्रुओंको दबानेका सावकाश पाया, जिन्हें अकेले महादाजी सिंधिया ही अबतक रोके हुए थे। सालवाईके सुलहनामेके अनन्तर महादाजी उत्तरको चले गये थे। उनके हृदयमें अंग्रेज सेनापतिके मातहत सुशिक्षित फ़ौजका बड़ा प्रभाव था। उन्होंने भी पानीपतके वीर सदाशिवराव भाऊके उपायको प्रयोगमें लानेका निश्चय किया और डे० वो० आने० नामक एक फरांसीसी जेनरलको रखकर एक विशाल सेना इस भांति सुसज्जित की जो किसी भी यूरोपियन सेनाका भलीभांति सामना कर सके। इस प्रकार सुरक्षित रहकर उन्होंने अपनेको इस योग्य बना लिया कि उत्तरके सारे विरोधी अपनी शर्तोंको उनपर प्रकट करें। यद्यपि अङ्गरेजोंने दिल्लीमें यह प्रतिज्ञा की थी कि भारतवर्षके बादशाह अर्थात् दिल्लीकी राजनीतिसे हमारा कोई संबन्ध न रहेगा और मरहठे जो चाहे कर सकेंगे; तोभी वे लोग असन्तोष फैलाते रहे और छिपे २ शाहआलमको अपने हाथमें रखने और उसे मरहठोंके पास जानेसे रोककर महादाजीके रास्तेमें रोड़े अटकानेसे बाज़ न आते थे।

यह सब कुछ होते हुए भी महादाजी बादशाही राजनीतिकी बागडोर बड़ी मज़बूतीके साथ अपने हाथोंमें पकड़े रहे। उन्होंने बादशाहको दिल्लीमें लाकर वज़ीरकी जगहके लिये लड़नेवालोंको हराया। मुसलमान और अङ्गरेजोंको यह

जानकर बहुत ही अधिक दुःख हुआ कि अन्तमें बादशाहने महादाजीको ही अपना वजीर घोषित कर दिया और शाही सेना भी उन्हींके अधिकारमें कर दी तथा दिल्ली और आगरेके दो सूबोंका समस्त प्रबन्ध उन्हींके हाथमें सौंप दिया। इतना ही नहीं, बल्कि पेशवाको उसने "वज़ीरए मुतलिक"के पदसे विभूषित किया, जिससे महाराजाधिराजके पदपर मुगल-सम्राट् की ओरसे राज्य करे और इसके बदलेमें ६५०००) पैंसठ हजार रुपये उसके आनन्दके लिये मिल जायं। इस चकित कर देनेवाली घटना और राज्य-प्रबन्धके परिवर्त्तनका वर्णन उस समयके एक मरहठा सम्वाद-दाताके शब्दोंमें जो इस प्रकार हैं, भलीभांति वर्णन किया जा सकता है। "राज्य हम लोगोंका हो गया; मुग़ल बादशाह प्रसन्नतापूर्वक पेंशनर होकर हमारे हाथमें हैं; वह अब भी बादशाह कहलाते हैं और उनकी इच्छा है कि मेरा पद कुछ समयतक और ऐसा ही बना रहे।"

अंग्रेजोंको जब समय मिला तो सन् १८५७ ई० तक उन्होंने भी केवल दिखलानेके लिये ही उन्हें बादशाह बनाये रखना उचित समझा। महादाजीकी इच्छा इस घटनाको हिन्दुओंपर किसी उच्च आदर्शके रूपमें रखनेकी थी। इस परिवर्त्तनके बाद पहली आज्ञा जो निकली, वह यह थी कि भारतमें कहीं गोवध न हो और महादाजीने इसे केवल काग़ज़पर लिखा हुआ रहना ही न छोड़ दिया; क्योंकि मरहठे केवल गद्दीके गधे न थे। उन्होंने सारे बुरे और हानिकारक नियमोंको कम करना प्रारम्भ कर दिया और उनके स्थानपर महाराष्ट्र-मण्डलके हिन्दू-साम्राज्यके नियम प्रचलित करने लगे।

महादाजीका सबसे पहला काम अंग्रेजोंसे बादशाही-कर,मरहठोंकी चौथ और सरदेशमुखीका मांगना था। उसके बाद उन्होंने उन सूबेदारों और जमींदारोंपर लगान लगाई जो कई वर्षोंसे स्वतन्त्र राजाकी भांति कार्य्य कर रहे थे, जिससे समस्त भारतवर्ष में तूफान मच गया। सरदार,अमीर,खां-बहादुर—सब-के-सब मरहठोंसे युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये। इतना ही नहीं, बल्कि हिन्दू-राजे और राव भी मुसलमानों और अंग्रेजोंकी सहायतासे मरहठोंका विरोध करने लगे। हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करनेवाले मरहठोंको मुसलमानोंके विरोधका सामना करना अस्वाभाविक न था, पर अभाग्यकी बात तो यह थी कि जयपुर और जोधपुरके दो बड़े हिन्दू-राज्य भी एक संगठित दल तैयार करके, जितना बड़ा वे आजतक कभी न बना सके थे, मरहठोंके विरोधमें आ डटे। इस प्रकार मुसलमानी सेनाओंसे मिलकर इन लोगोंने लालसोटके स्थानपर मरहठोंकी फौजसे भीषण युद्ध किया। जिस समय घमासान युद्ध हो रहा था, उसी समय बादशाहकी सारी मुसलमानी सेना एक इशारेपर, जो पहिले हीसे नियत था, महादाजीका साथ छोड़ राजपूतोंसे जा मिली। इस धोखे और विश्वासघातके कारण मरहठोंको घोर पराजय उठानी पड़ी। पर वीर मरहठा-सेनापति महादाजी इससे तनिक भी विचलित न हुए और निर्भयतापूर्वक फ़ौरन अपनी सेनाको एकत्रित करने लगे। लोकोबा दादा आगरेके क़िलेको घेरे पड़ा था, जिससे कुल मुसलमानी सेना उमड़कर महादाजीपर आक्रमण करनेमें असमर्थ थी।

ठीक इसी समय नज़ीबखांका पोता गुलामक़ादिर, जिसे मरहठे न अबतक भूले थे और न क्षमा ही किया था, दिल्लीको महादाजीके हाथोंसे रक्षा करनेके लिये रुहेलों और पठानोंकी फ़ौज़ लिये आ पहुंचा। मूर्ख बादशाहके प्रोत्साहनसे वह दिल्लीमें घुस आया। महादाजी उस समय राजपूत और मुसलमानोंकी संयुक्त-शक्तिसे आगरेमें युद्ध कर रहे थे। उन्होंने पहलेसे ही इन दुर्घटनाओंकी सूचना नानाको लिख भेजी थी और स्पष्टतया बतला दिया था कि इन सब आफ़तोंकी जड़ केवल अंग्रेज ही हैं। अंग्रेज मरहठोंका सामना करनेका साहस न रखते थे। उन्होंने कई बार सामना करनेका प्रयत्न भी किया पर सर्वदा असफल रहे। अंग्रेज इस बातको भलीभांति जानते थे कि यदि मरहठे कुछ समयतक और वज़ीरके पदपर वर्त्तमान रहे, तो अवश्य ही कुछ दिनोंमें खुल्लम-खुल्ला खुद महाराजाधिराजके पदपर आरूढ़ हो जायंगे। पर मरहठे तो प्रायः पहले ही ऐसा कर चुके थे। इन सब कारणोंसे मुग़लबादशाहके अधिकारोंको अपने हाथमें करनेके लिये अंग्रेज बड़े ही व्यग्र हो रहे थे।

अब हम अपने पाठकोंका ध्यान मरहठा-सेनापतिके उस उत्साहवर्द्धक पत्रकी ओर आकर्षित करना चाहते हैं जो उन्होंने पूनामें नानाके यहां भेजा था। उसने लिखा था कि हमलोग बृहत् साम्राज्यकी हितकामनाके लिये ही जीवित तथा प्रजातन्त्र-राज्यके अधिपतिके भक्त हैं। हमें व्यक्तिगत डाह और द्वेषका परित्याग कर देना चाहिये। यदि किसीको मेरे सम्बन्धमें किस

प्रकारका सन्देह हो तो उसे वह अपने दिलसे निकाल दे। मैंने जो सेवा इस प्रजातन्त्र-राज्यकी की है, वह उन निन्दकोंको चुप करा देनेके लिये काफ़ी है जो हमलोगोंको तितर-बितर करके लाभ उठाना चाहते हैं। अब हमलोगोंको समयानुसार काम करनेके लिये उद्यत तथा बादशाही झण्डेके चारों ओर एकत्रित हो जाना परमावश्यक है, जिससे हम अपने उस जातीय कर्तव्य-को, जिसे हमारे पूर्वजोंने हमारे लिये रख छोड़ा है, सारे भारत-वर्षमें फैला सकें और हमारी संगठित शक्ति छिन्न-भिन्न होकर हमारे प्रजातंत्र-साम्राज्यका नाश न कर डाले।

नाना अपने सेनापतिकी इस प्रार्थनाको उस समय अनसुनी करनेवाला मनुष्य न था, जब कि जातीय काय संकटमें पड़ा हुआ था। हमलोग ऊपर पढ़ आये हैं कि वह टीपूके साथ युद्ध कर रहा था। किन्तु ज्योंही वह टीपूको भलीभांति नीचा दिखा चुका, त्योंही होल्कर और अलीजाबहादुरको महादाजीकी सहायताके लिये भेजा। राजपूतों और मरहठोंको उस समय युद्धके लिये उद्यत और शत्रुओंका सिर उठानेका मौका देते देखकर, जबकि उनके पूर्वजोंकी इच्छित हिन्दू-पाद-पादशाही स्थापित हो चुकी थी और सारा भारतवर्ष उसकी छत्रछायामें आना ही चाहता था, उसे बड़ा ही दुःख हुआ। नानाने राजपूतों और ख़ासकर जयपुरके राजाके साथ पत्र-व्यवहार करना प्रारम्भ किया। उसने पेशवाकी तरफ़से पत्र लिखा जिसमें महाराज जयपुरको समझानेका प्रयत्न किया गया

था कि मुसलमान हिन्दू-मात्रके शत्रु हैं और मरहठा-राज्य प्रायः स्थापित हो चुका है, अतएव आपलोग इससे सहानुभूति रखिये।

पूनासे भेजी हुई मरहठा-सेनाकी सहायतासे महादाजीनें शत्रुओंको भलीभांति पराजित कर दिया। उन्होंने बानाखां अप्पा, खांडेराव और अन्य मरहठे-सेनापतियोंके साथ डे० बो० आनेकी अध्यक्षतामें दो सेनायें नजीबखांके पोते गुलाम-कादिरका सामना करनेके लिये भेजीं। मुसलमानोंने भी युद्ध करनेकी ठान ली। दो बड़ी घमासान लड़ाइयां हुईं। मुसलमान ऐसी बुरी तरह पराजित हुए जैसे पहले कभी नहीं हुए थे और इधर उधर भाग निकले। इस्माइल वेग और गुलामक़ादिर दिल्लीकी ओर भागे। मरहठोंने उनका पीछा किया। बादशाह भयसे कांपने लगा। गुलामकादिरने रुपया मांगा, पर बादशाह न दे सका। इसपर निर्दयी और असभ्य रुहेले सरदारोंने क्रोधसे पागल होकर अत्याचार करना प्रारंभ कर दिया। गुलाम-कादिरने बादशाहको सिंहासनसे खींचकर पृथ्वीपर दे मारा और अपने दोनों घुटनोंको उसकी छातीपर रखकर, तलवारसे उस बूढ़े, बेबस, अकबर और औरंगजेबकी सन्तानकी आंखें निकाल लीं। इतनी ही निर्दयतासे उसे संतोष न हुआ, उसने उसकी स्त्रियों और लड़कियोंको पकड़वा मंगाया और अपनी आंखोंके सामने अपने नौकरोंद्वारा उनका अपमान कराया। गुलाम क़ादिरके क्रोध करनेके कारणोंमें एक कारण यह भी था कि

वह अपनी जवानीके समयमें शाहआलमकी आज्ञासे नपुंसक बनाया गया था।

राजधानीमें लूट मच गई। मुसलमान मुसलमानोंके ऊपर वह अत्याचार करने लगे, मानों इस्लामके नामपर अन्य धर्मावलम्बियोंपर कर रहे हों। इसी भांति जो पहले बाहर अन्याय करता है कभी न कभी घरपर भी अवश्य करेगा। अतः अन्यायी कभी-न-कभी अपना ही सत्यानास करते हैं, इसमें संदेह नहीं।

अब बादशाह तथा नगर-निवासी मुसलिम-कन्याओंकी, अपने ही धर्मावलम्बियोंद्वारा किये गये क्रूर तथा राक्षसी कृत्यों और अपमानोंसे कौन रक्षा करेगा? काफ़िरों यानी हिन्दू और मरहठोंके अतिरिक्त ऐसा और कोई नहीं कर सकता था। इन मुग़लों और इनके पूर्वजोंका यही नियम था कि हिन्दुओंके मन्दिरोंको जलाकर राख कर देते और मूर्तियां तोड़ डालते थे। उनकी रानियों और राजकुमारियोंको पकड़कर अपने महलोंमें ले जाते तथा धर्मभ्रष्ट करते और उनके पुत्रोंको मुसलमान बनाते थे। माताको बच्चेसे, भाईको भाईसे जुदा करते और हिन्दुओंके लोहूसे अपने हाथोंको लाल कर प्रसन्न होते थे; और ऐसा करनेपर उन्हें ग़ाज़ीकी प्रतिष्ठा तथा दुनियांमें धर्म-रक्षककी पदवी मिलती तथा उनके विचारानुसार मरनेपर ईश्वर उनसे बहुत प्रसन्न होता था।

अब वह समय आ गया कि हिन्दू दिल्लीमें आ रहे हैं; लेकिन

मसजिदोंको तोड़नेके लिये नहीं; उनके झंडोंको टुकड़े टुकड़े करनेके लिये नहीं; मीनारोंको धराशायी करनेके लिये नहीं; और न उन्हें अपवित्र करनेके लिये। वे किसी राजकुमारी या दीनसे दीन मुसलमान-कन्यापर हाथ लगाने या उसे हिन्दू बनानेके लिये, माताओं और बच्चोंको जुदा करने और पिताका पुत्रसे वियोग करानेके लिये नहीं आये थे। वे सत्यानासिनी शराबमें पागल होकर खून बहाने या अपनी प्रतिष्ठा और गौरवका अंदाजा लगानेके लिये मनुष्योंके सिर काटकर इकट्ठे रखकर नापने भी नहीं आये थे। उनका उद्देश्य राजधानीको जलाकर राख कर डालनेका भी न था। वे ऐसा कर सकते थे; और अगर करते भी तो मुसलमानोंको इसके लिये उन्हें दोषी ठहरानेका कोई हक़ न था। पर वैसा न कर हिन्दू इसलिये आ रहे हैं कि बादशाह, उसके परिवार और दिल्लीनिवासियोंको उन्हींके सहधर्मियोंके अन्याय और अत्याचारसे रक्षा करें! समस्त नगरनिवासी मरहठोंके आगमनके लिये ईश्वरसे प्रार्थना कर रहे थे और उनके पहुंचनेपर क्या हिन्दू क्या मुसलमान—सबोंने एक हृदय होकर स्वागत किया। अलीजा बहादुर, अप्पा खांडेराव, राना खां और ड० वो० आनेने शहरपर अधिकार कर लिया। लेकिन जब उन्हें मालूम हुआ कि गुलामक़ादिर भाग गया तो वे बड़े दुखी हुए; क्योंकि वह नजीबखांका पोता और मरहठोंका स्वाभाविक शत्रु था और उसे कुछ दण्ड न मिले, यह बिल्कुल असम्भव था। मरहठोंने

औरंगज़ेबकी सन्तानोंके सुखके लिये मनुष्योचित समस्त उपायोंका उपयोग किया, यद्यपि अब भी यह परिवार मरहठोंके सत्यानासके लिये, गुलामक़ादिरके साथ मिलकर मुसलमानोंका षड्‌यंत्रकारी दल बनानेसे बाज़ न आता था !

गुलामक़ादिरका पीछा करनेके लिये, जो भागकर मेरठके क़िलेमें छिपा हुआ अपनी रक्षा करनेके विचारमें था, एक बड़ी सेना पहले ही भेजी जा चुकी थी। गुलामक़ादिरने थोड़ी देर-तक इस सेनाका मुक़ाबिला किया, पर जब देखा कि अब बचना कठिन है तो एक घोड़ेपर चढ़कर भाग निकला। लेकिन घबरा-हटमें घोड़ेसे गिर पड़ा और बेहोश हो गया। गांववालोंने उसे पहचान लिया और उसे मरहटोंके पास ले आये। उस अधमको दंड देनेके लिये मुसलमान-जनता जितनी लालायित थी उतना और कोई भी न था। वह शिन्देके सामने लाया गया और गुलामको उन सब शत्रुताओंका बदला चुकाना पड़ा जो कि उसकी तीन पीढ़ी और शिन्देके मध्य थी। उसकी बड़ी दुर्दशा की गई और चूंकि अब भी वह गाली देनेसे बाज़ न आता था इसलिये उसकी जीभ काट ली गई और आंखें फोड़ दी गईं। इस प्रकार निर्दयता-पूर्वक सताये जानेके बाद नजीबका पोता मुग़लबादशाहके पास भेज दिया गया, जिसकी इच्छा अपने सतानेवालेको भी उसी दशामें देखने या सुननेकी थी। वहां उसे मृत्युदंड मिला। इस प्रकार पानीपतके युद्ध-समयमें मरहठोंका सत्यानास करनेकी प्रतिज्ञा करनेवाले नजीबके परिवारका स्वयं मरहठोंके हाथों ही

ऐसा सत्यानास हुआ कि उसके वंश या राज्यका निशान भी अवशेष न रहा।

सन् १७८६ ई० में दूसरे मरहठे-सेनापतियोंके साथ महादाजीने अपने शत्रुओंपर विजय पानेमें सफलता प्राप्त की और मुसलमानों तथा उनके सहायक राजपूतोंको हराकर उनका सत्यानास कर दिया और ऐसी वीरतापूर्वक अङ्गरेजोंका सामना किया कि वे उसकी बहादुरीका लोहा मानकर दब गये। बूढ़ा मुग़लबादशाह फिर उसके हाथमें आ गया और जब उसने महादाजीको वकील-ए-मुतलिकका पद देना चाहा तो उसने एक बार फिर इस पदको अपने स्वामी पेशवाके लिये प्राप्त किया।

जिन दिनों मरहठी सेनायें इस प्रकार काममें फँस रही थीं, टीपूके हृदयमें फिर गुदगुदी पदा हुई और उसने एक बार और अपनी शक्तिकी परीक्षा करनेका विचार किया। सन् १७६८ ई० से ही उसने धमकाना शुरू किया, पर वह सीधे मरहठोंपर हमला करना नहीं चाहता था। वह किसी प्रकार अपना राज्य बढ़ाना चाहता था, और यही कारण है कि उसने सोचा कि अगर मरहठोंके कारण मैं अपना राज्य कृष्णा नदीकी ओर नहीं बढ़ा सकता तो ट्रावनकोरके हिन्दू-राज्यपर आक्रमण कर उसीपर क्यों न अधिकार कर लूं। इसलिये नानाने निजाम और अङ्गरेजोंको साथमें मिलाकर टीपूसे युद्ध ठान दिया और पटवधनने भी टीपूके राज्यपर आक्रमण कर दिया। ध्यान देनेकी बात है कि मरहठोंके पहुंचनेपर उस प्रान्तके निवासियोंने

अन्यायी टीपूके विपक्षमें उनकी सहायता की। यहांतक कि उन लोगोंने टीपूके सरदारोंको वहांसे निकाल बाहर किया और मरहठोंके बाक़ी पड़े करोंको वसूल करनेमें सहायता करने लगे। डुबली, द्राब और मिश्रीकोटके ले लेनेपर मरहठे बड़ी तेजीसे आगे बढ़े। टीपूका हाल हीका जीता धारवाद् घेर लिया गया। मुसलमान-सेनापतिने बड़ी वीरतापूर्वक क़िलेकी रक्षा की। मरहठोंकी सलाह न मानकर अङ्गरेजोंने चाहा कि धावा मारकर क़िलेको ले लें, पर बुरी तरह असफल रहे। बड़ी वीरतापूर्वक कुछ दिनोंतक युद्ध होता रहा। अन्तमें बार २ आक्रमण करके मरहठोंने उसे ले ही लिया। पानसे, रास्ते और दूसरे सेनापतियोंने तुंगभद्रा नदी पार करके शान्ती, बदनूर, मैकोडा, हैपेनूर, शेनगिरी इत्यादि स्थानोंको जीतकर अपने अधिकारमें कर लिया।

मरहठोंकी जलसेना भी बेकार न बैठी थी। इसने समुद्र तटकी रक्षा करनेके साथ-ही-साथ करवार तथा हंसार इत्यादि स्थानोंसे मुसलमान सेनापतियोंको निकाल बाहर किया। नरसिंह राव देवजी, गनपति राव हेन्डेल तथा अन्य सेनापतियोंने बन्दवार, होनवार, गिरिसापा, धारेश्वर और उदुगिनी आदि स्थानोंको ले लिया और इसके बाद मरहठी फ़ौज श्रीरंगापट्टमकी ओर बढ़ी, जहां दूसरी ओरसे लार्ड कार्नवालिसकी अध्यक्षतामें इङ्गलिश सेना भी आ रही थी, जो टीपूकी चालबाजियोंसे व्याकुल हो गई थी और दाना-पानी बिना मर रही थी। घबराहट और भूख-प्यासके मारे उसका बुरा हाल था और अश्वा-

रोही सेना पैदलकी भांति हो रही थी, क्योंकि जहां आदमियोंका यह हाल था वहां घोड़ेको कौन पूछता ? चारे बिना घोड़े मर गये थे।

भूखों मरती हुई अङ्गरेज़ी सेनाके सुखका पारावार न रहा जब उसने सम्पूर्ण सामानोंसे लैस तथा सुसज्जित महाराष्ट्र-सेनाको आते देखा। हरिपन्त फाडकेने मित्रोंको सब आवश्यक वस्तुएं देकर निश्चिन्त किया और यह संयुक्त सेना दस दिनतक वहां ठहरी रही। मरहठे इस समय चाहते तो टीपूके राज्यका नाम-निशान भी शेष न रह जाता, पर नानाके विचारके अनुसार उसका सर्वनाश करना उचित न था। वह चाहता था कि टीपू कुछ दिन और इसी प्रकार मद्रासमें अङ्गरेज़ोंकी इच्छा-पूर्त्तिके मध्य कंटक-स्वरूप बना रहे। इसी लिये घमासान लड़ाईके बाद जब टीपूने अपनेको सर्वथा मरहठों और अङ्गरेज़ोंके हाथमें समझकर सुलहकी प्रार्थना की तो परसुराम भाऊ और हरि-पन्त फाडकेके कारण अङ्गरेज़ोंको विवश होना पड़ा। इस संधि-के अनुसार टीपूने मरहठोंको अपना आधा राज्य तथा लड़ाईका ख़र्च तीन करोड़ रुपये दिये और प्रतिज्ञा की कि भविष्यमें ट्रावनकोरके राजाको न सताऊँगा। उसके दोनों लड़कोंको मरहठे और अङ्गरेज़ोंने अपने पास रखा और जो कुछ टीपूसे मिला उसे दोनोंने निजामके साथ बराबर २ तीन भागोंमें विभा-जित कर लिया। मरहठोंको एक करोड़ रुपये क्षतिपूर्त्ति और नब्बे लाख सालाना आयकी ज़मीन मिली। इस प्रकार टीपूके

साथ तीसरी लड़ाईका अन्त हुआ और मरहठी सेना सन् १७९२ ई० में बड़ी प्रतिष्ठा और नामके बाद पूना पहुंची।

महाराष्ट्र राज्यके उत्तरी विभागकी सेनाका सेनापति भी उसी समय पठान और रुहेलोंके साथ नाम प्राप्त कर राजधानीकी ओर लौटा। फाडके और रास्ते, तथा महादाजीका सेनायें भी, जिन्होंने क्रमशः दक्षिणभारतके हिन्दुत्वकी टीपूके क्रोधसे रक्षा की; और अङ्गरेज़ों तथा फ़रांसीसियोंके परोक्षमें मुग़लबादशाह-को हिन्दू-साम्राज्यका पेन्शनर मात्र बना छोड़ा था, पूनेमें आ मिलीं और विदेशियोंके कार्य्योंको भारतवर्ष तथा इसके बाहर भी भविष्यके लिये बन्द कर दिया।

इस बड़े जमावका क्या अर्थ था और इसके पश्चात् महा-राष्ट्र-मंडल कौन कार्य अपने हाथमें लेगा तथा अब इसका शिकार कौन होगा—इत्यादि बातोंको जाननेके लिये सब लोगों-की दृष्टि पूनाकी ओर लग रही थी। पूनाके अन्तर्गत हो जानेके कारण अब दिल्लीकी कुछ गणना न रह गई थी। लेकिन मरहठे अपने ही तईं झूठी बातोंके भ्रममें पड़कर परेशान होने लगे। नाना और महादाजी अब आमने सामने हो गये थे। सब लोग जानते थे कि इन दोनों व्यक्तियोंमें पारस्परिक द्वेष बढ़ रहा है, जिसे ये दोनों देशभक्त "हिन्दू-प्रजातन्त्र" स्थापित करनेकी लालसा और भक्तिके कारण ही रोके और दबाये हुए थे, और इस प्रजातंत्रकी स्थापना, रक्षा और इसको प्रभावशाली बनानेमें इन दोनोंसे बढ़कर शायद ही किसी व्यक्ति-

ने अधिक परिश्रम किया हो। क्या वह द्वेषाग्नि जो आजतक छिपी थी भड़ककर गृहकलह पैदा कर देगी? अगर ऐसा किया तो हिन्दू-राज्यके लिये इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है? सारा महाराष्ट्र इस ख़यालसे कांप उठता था और सब लोग बड़ी चिन्तापूर्वक अपने दोनों बहादुरों और राजनीति-विशेषज्ञोंकी भारी लड़ाईको देख रहे थे।

पहले ही लिख चुके हैं कि बूढ़ा मुग़लबादशाह, जो अब भी बादशाहकी भांति ही रहा करता था, महादाजीको सबसे बड़ा पद अर्थात् वकील-ए-मुतलिक और महाराजाधिराजका पद देना चाहता था; किन्तु उन्होंने अपने लिये अस्वीकार कर उसे अपने स्वामी बालक पेशवाके लिये प्राप्त किया। यह कार्य केवल दिखलानेमात्रको न था। यद्यपि एक बेबस और अयोग्य व्यक्तिके लिये उन पदोंका मूल्य ऊपर लिखे गये काग़ज़के जितना भी न था, तोभी इनका पदाधिकारी मुग़लबादशाहके नामपर सम्पूर्ण मुग़लसाम्राज्यपर राज्य करनेका अधिकारी हो गया और मुग़लबादशाहने अपने बादशाही अधिकारोंसे त्याग-पत्र दे दिया। मरहठों, अङ्गरेजों और दूसरे विधर्मियोंके बीच बादशाही ताजके लिये मुक़ाबिला था, इसलिये यही उचित समझा गया कि ताज और पद बूढ़े मुग़लबादशाहके पास पहले हीकी भांति बने रहें।

लेकिन अङ्गरेज़ और मरहठे भी जानते थे कि ये पद अगर एक बार भी मरहठोंके हाथमें चले गये तो ऐसे सुरक्षित हो

जायँगे कि उनके पास फटकना भी दुस्तर हो जायगा। अतः द्वेष-भावसे प्रेरित हो, मरहठोंको नीचा दिखानेकी इच्छासे, अङ्गरेज़ों-ने पुराने मुग़लबादशाहको अपना बादशाह साबित करनेकी कोशिश की और इस बातको सर्वसाधारणपर विदित करनेके लिये उत्तरी सरकारको (जिसे अपने बाहुबल द्वारा उन्होंने बहुत पहलेसे जीत लिया था) अपने पास रखनेके लिये शाहआलमसे आज्ञा मांगी।

किन्तु मरहठे भी अपने प्रतिद्वंदियोंसे पीछे रहनेवाले न थे, अतएव बादशाही पदकी तनिकसी प्राप्त छायाको इतने विशाल रूपमें प्रकट करने लगे, जितनी अभी बहुत दिनोंमें उन्हें प्राप्त हो सकी थी। और यही कारण महादाजी सेंधियाके महाराष्ट्र-मंडलके प्रमुखके लिये "महाराजाधिराज" पदवीको मुग़लसम्राटसे प्राप्त करनेका था। अब बहुत दिनोंके बाद एक अत्यन्त आदर्श जीवन व्यतीत करनेके पश्चात् वह अपने छोटे सरदारको नव-युवक भगवानके रूपमें देखनेके लिये लालायित होकर आया था; इसलिये प्राप्त किये हुए पदोंसे उसे विभूषित करनेके लिये महादाजीने एक महान उत्सवका आयोजन किया।

जिस समय महाराष्ट्र-सेनापति महादाजीकी यह इच्छा हुई कि पेशवाको जो पहलेसे ही राजाधिराज हैं महाराजके पदसे विभूषित करूं, उसी समय नानाने एक दल तैयार किया, जो इस-पर यह कहकर आपत्ति करता था कि इससे महाराज-सितारा-का अपमान होगा। ऐसे बहुतसे उदाहरण मिल सकते हैं, जिनसे

सिद्ध होता है कि एक राज्यके निवासियों या रक्षित राज्योंके पदाधिकारियोंने दूसरे राजाओंके दिये पदोंको स्वीकार किया है और उससे उनके राज्यकी कोई हानि भी नहीं हुई है। यही नहीं, कितने तो ऐसे भी उदाहरण हैं कि दूसरे राज्यवालोंके दिये पदोंको लोगोंने यह सोचकर स्वीकार कर लिया है कि उनके राज्यकी उन्नति होगी। इन बातोंके यथार्थ होते हुए भी, इस विचारसे कि जातीय आन्दोलनमें किसी प्रकारका भेदभाव न उपस्थित हो, महादाजीने महाराज-सितारासे प्रार्थना की; जिसके उत्तरमें छत्रपतिने स्वयं पेशवाको महाराजाधिराज-पदसे विभूषित करना स्वीकार किया। इन राजनैतिक कठिनाइयोंके दूर हो जानेपर बड़ी धूमधामसे पेशवाको महाराजाधिराज की पदवी दी गई।

अब पेशवाको मुग़लबादशाहके नामपर काम करनेका अधिकार मिल गया। यही नहीं, बल्कि उसके सेनापति महादाजीको यह भी अधिकार मिल गया कि मुग़लबादशाहके जिस पुत्रको चाहें उसका उत्तराधिकारी बनाय। अब सारे भारतवर्षमें घोषणा कर दी गई कि कोई गोवध न करे। सेंधिया, नाना फड़नवीस तथा अन्यान्य महाराष्ट्र-सेनापतियों और नेताओंने इस पवित्र कार्यके लिये उन्हे धन्यवाद दिया। अब मरहठोंने अपने अधिकारोंको इस योग्य बना लिया था कि उनके द्वारा अपने प्रतिद्वंदियों—चाहे वे यूरोपियन हों या एशियाई—तथा मुग़लबादशाह हीको वास्तविक महाराज माननेके बहाने उनके (मरहठोंके) अपमान करनेवालोंका समूल नाश कर सकें।

शासन-कार्यमें भी मरहठोंने मुग़लबादशाहके स्थानापन्न समझे जानेका दावा पेश किया। वे शाही फ़ौजके सेनापति तथा राज्यके मंत्री थे; मुग़लराज्यके उत्तराधिकारी चुननेके लिये स्वतंत्र थे; और सबसे बड़ी बात तो यह थी कि वकील-ए-मुतालिक (महाराजाधिराज) का पद सदाके लिये उनका हो गया था।

जब उत्सव समाप्त हो गया तो मनुष्योंकी बड़ी भारी भीड़ उस जुलूसके महलमें लौटकर जानेका दृश्य देखनेके लिये एकत्रित हो गयी। मनुष्योंकी जयध्वनि, और तोप-बन्दूकोंकी गरजसे आकाश ऐसा गूंज उठा जैसा इस उत्सव मनानेवालोंकी इच्छा थी। जुलूसके महलके सामने पहुंचनेपर पेशवाने इसके संयोजकोंकी बड़ी प्रतिष्ठा की। हिन्दू-पाद-पादशाहीके सेनापति तथा इस उत्सवके विधाता महादाजीने अपनी सारी शक्ति और सजावटका ध्यान छोड़, आगे बढ़, पेशवाका जूता उठा लिया और धीरेसे बोला, "हिन्दू-साम्राज्यके अधिपति महाराजाधिराज! समस्त राजकुमार, राजे, राने, तुर्क, मुग़लबादशाह, रुहेले, नवाब और फिरंगी राजनीतिक क्षेत्रसे मिट गये और आपके आज्ञापालक हो गये। आपका यह दास अपना जीवनकाल खड्गहस्त रहकर इस प्रजातंत्रके हितके लिये दूर देशोंमें व्यतीत करता रहा। राजाओंपर विजय प्राप्त कर सारा मान, गौरव और प्रतिष्ठा जो मैंने पाई है, वह चरणोंके पास बैठकर आपकी जूतियोंकी रखवाली करनेकी मेरी तृष्णाको न बुझा सकी। महाराष्ट्रमें पटेल बनकर

रहना दिल्लीमें प्रधान मन्त्री होकर रहनेकी अपेक्षा मुझे अधिक पसंद है। अतएव कृपा कर दूर देशोंमें जाकर काम करनेसे मुझे मुक्त कर दें और यहीं सेवा करनेकी आज्ञा प्रदान करें। मुझे भी मेरे पूर्वजोंकी भांति सेवामें समय व्यतीत करनेका सुअवसर दें।"

महादाजी वाक्-पटु था। पेशवा सवाई माधोराव नवयुवक, अच्छी प्रकृतियुक्त और सच्चा मनुष्य तथा राजनीतिके सम्पूर्ण अंगोंका ज्ञाता था। महादाजी वस्तुतः पेशवाका भक्त था और शीघ्र ही उसने उसे अपनी ओर आकर्षित कर लिया। इसके बाद उसके हृदयमें हिन्दू-पाद-पादशाहीके प्रधान मन्त्री बननेकी इच्छा उत्पन्न हुई, जिस पदपर इस समय नाना फड़नवीस था। कुछ काल व्यतीत हो जानेपर स्वयं प्रधान मंत्री नाना द्वारा निश्चित कार्यक्रममें हस्तक्षेप करने लगा और एक बार जब सुअवसर मिला तो उसने नानाके विचारोंका घोर विरोध किया। लेकिन उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ जब उसने पेशवाको गम्भीरतापूर्वक यह कहते सुना, "नाना और महादाजी मेरे राज्यके दो हाथ हैं। प्रथम दाहिना और दूसरा बायां हाथ है और प्रत्येक अपने २ कार्यमें दक्ष हैं। उनके संगठित कार्यसे ही राष्ट्रकी उन्नति है। इनमेंसे कोई अगर अपने पदसे जरा भी हटा दिया जाय तो मैं शक्तिहीन हो जाऊंगा।"

यद्यपि महादाजीने बड़ी बुद्धिमानी दिखलाई, पर तोभी नानासाहबके चतुर और बुद्धिमान मित्रवर्गसे यह बात छिपी न रह

सकी। इस समाचारको पाकर नाना, हरिपन्त फड़के और समस्त मंत्रिवर्ग चौंक पड़े। उनके जीवनका मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण भारतको महाराष्ट्रके हिन्दू-साम्राज्यके अन्तर्गत करना, जिसमें कोई भी स्वतन्त्र राज्य स्थापित न हो सके,अब अन्धकार-मय देख पड़ने लगा। वे भलीभांति जानते थे कि अपने पदोंसे हट जानेके प्रश्नका निबटारा तो हम त्यागपत्रद्वारा कर लेंगे, पर जनतापर इसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा और वह असंतुष्ट हो जायगी, जिससे अनिवार्य रूपसे परस्पर युद्ध आरम्भ हो जायगा।

अपना बयान देनेके लिये नाना पूना पहुंचा। अपनी सारी सेवाओंका वर्णन करनेके बाद उसने पेशवासे निवेदन किया कि "यदि आप सिंधियाके हाथके खिलौने बन जायेंगे तो राज्यपर इसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा। महादाजीके परामर्शसे यदि कोई काम सहसा कर बैठेंगे या कोई नवीन प्रबन्ध शीघ्र करेंगे तो आपसमें लड़ाई छिड़ जायगी और हैदराबादमें तैयारीमें लगे हुए मुसलमान तथा इस राज्यके सत्यानासके इच्छुक अंग्रेजोंकी अभिलाषा पूर्ण हो जायगी और वे इस राज्यको छिन्न भिन्न कर डालेंगे।" नेत्रोंमें आंसू भरकर प्रधान मन्त्रीने कहा, "यदि केवल मुझे अपने पदसे हटानेका प्रयत्न है तो मैं प्रसन्नतापूर्वक हटनेको तयार हूं; और यह मेरा त्यागपत्र है। यदि इतनेसे राष्ट्रका भला हो और पारस्परिक युद्ध टल जाय तो कृपा करके मुझे आज्ञा दीजिये कि अब काशीजी जाऊं और इस संसारसे संबन्ध

विच्छेद करनेकी कोशिश करूं।" नवयुवक पेशवापर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा और महाराष्ट्र निर्माता नानाके इस नम्र निवेदनपर उसका भी हृदय द्रवीभूत हो गया और उच्च स्वरसे कहने लगा, "किन कारणोंसे आप ऐसा कह रहे हैं, और किस प्रकार ऐसे विचारोंने आपके हृदयमें स्थान पाया ? आप केवल मेरे मंत्री ही नहीं, किन्तु, पथप्रदर्शक, राजनैतिक गुरु और मित्र हैं। इस राज्यका सम्पूर्ण भार आपके कंधोंपर है और ज्योंहीं आप हट जायँगे यह फिसलकर टुकड़े २ हो जायगा।" नानाका गला भर आया और लगे कहने, "महाराज! आपके जन्मकालसे ही नहीं; किन्तु इसके पहलेसे भी आपके अधिकारों और इस राज्यकी भलाईके लिये मैंने लाखों मनुष्योंसे शत्रुता उत्पन्न की। अब मेरी उन सेवाओंकी गणना नहीं है और शत्रुओंकी बात सुनी जाती है।"

उदारचित्त नवयुवक इन बातोंको सुन इतना दुखी हुआ कि अपने राज्यके प्रधान होनेकी सुधि भी उसे न रही और प्रेमसे अधीर होनेके कारण नानाके केवल मंत्री होनेका कुछ भी विचार न कर उसके गलेमें अपना हाथ डालकर सिसकते हुए कहने लगा, "मेरा त्याग न कीजिये; दुखित होनेका कोई कारण नहीं है, आप न केवल मेरे प्रधान मंत्री ही हैं प्रत्युत मेरे बालपनसे ही एकमात्र पिता हैं। यदि मैं अपने मार्गसे पथभ्रष्ट हुआ हूं तो उसके लिये क्षमा कीजिये। कदापि मैं इसकी आशा आपको नहीं दिला सकता कि आप अपने पदसे त्यागपत्र दे दें

और पृथक् हो जांय। मैं आजीवन आपको नहीं छोड़ सकता।"

पेशवाके इन दयायुक्त विश्वासपूर्ण शब्दोंपर विश्वास कर नाना, भाऊ, हरिपन्त फाडके तथा मंत्रिमण्डलके अन्यान्य नेता उसी समय एकाएक महादाजीके यहां जा पहुंचे। चाहे व्यक्तिगत इच्छा जो कुछ भी रही हो, पर इसमें कुछ संदेह नहीं कि महादाजी हिन्दू-साम्राज्यके उतने ही बड़े भक्त और शुभचिन्तक थे जितना उनके कोई भी सहयोगी कार्यकर्ता, और वे सर्वदा अपने प्राण बलिदान करके उसे सर्वोपरि रखनेमें प्रयत्नशील रहनेवाले थे। वह रघुनाथराव नहीं थे। यद्यपि उनका विचार महाराष्ट्र राज्यको अपने हाथमें रखनेमें था, पर वह कभी यह नहीं चाहते थे कि आपसमें युद्ध हो। अतएव प्रसन्नतापूर्वक मंत्रिमंडलके साथ सहमत हो पेशवाके इच्छानुसार चलनेपर तैयार हो गये। अचानक हरिपन्त फाडके इत्यादिकने उनको घेरकर सूचित किया कि आपकी, मन्त्रिमण्डलके समस्त अधिकारोंको अपने हाथमें रखनेकी इच्छाके कारण, हमलोगोंमें प्रतिद्वंदिता होने लगेगी, जिससे बाहरी शत्रु प्रबल होकर उस हिन्दू-साम्राज्यको, जिसके लिये सहस्रों वीर आत्मायें बलिदान हो गईं, बड़ी हानि पहुंचायेंगे। नानाने त्याग-पत्र दे देना उचित समझा है, कारण, वे गृहकलह पसन्द नहीं करते।

इन बातोंका महादाजीपर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने प्रण

किया कि भविष्यमें अब मैं कभी नाना और उसके दलका विरोध न करूंगा। जैसा मरहठे इतिहासमें कई बार पहिले भी हो चुका है, इस बार भी हुआ और जातीय हितके सामने व्यक्तिगत स्वार्थ-को ठुकराकर दो बड़े नेता सहयोगपूर्वक काम करनेको फिर उद्यत हो गये। दोनोंने पेशवाके चरणोंके पास बैठकर शपथ खायी कि आजसे हमलोग अपनी पुरानी बातोंको भूल जायगे और आप तथा इस प्रजातंत्रकी, जो हिन्दुओं और उनके धर्मका रक्षक है, सेवामें जीवन सफल करेंगे।

नाना फड़नवीस और महादाजीके मनोमालिन्य दूर हो जा-नेका समाचार सारे महाराष्ट्रमें फैल गया और सब लोगोंने इस बातसे बड़ी प्रसन्नता प्रकट की, जिसका अन्दाजा गोविन्दराव केलके पत्रसे, जो उस समयके महाराष्ट्र-मण्डलका एक बड़ा भारी विद्वान और देशभक्त राजनीतिज्ञ था और निजाम-राज्यमें रेजी-डेन्ट नियुक्त था, लग सकता है। यह पत्र निजामकी राजधानीसे इस प्रकार लिखा गया था, "आपके पत्रने मुझे पुलकित कर दिया और मेरे आनन्दका पारावार न रहा। जब सारा विवरण पढ़ चुका तो हृदयमें अनेकों विचार उठने लगे। सारे विचारोंमें एक यह भी था कि अटकसे लेकर हिन्दमहासागरपर्यंत सारा देश हिंदुओंका होनेके कारण हिंदुस्तान है, न कि तुर्किस्तान। पांडवोंके समयसे लेकर महाराज विक्रमादित्यतक ये हमारे सीमान्त प्रदेश थे और उन्होंने उनकी रक्षा तथा उनपर शासन किया। परन्तु उत्तराधिकारियोंकी अयोग्यताके कारण भारतके

शासनकी बागडोर यवनोंके हाथमें चला गई और हमारी स्वाधीनताका नाश हो गया। बाबरको सन्तानने हस्तिनापुर या देहलीका राज्य जीता और अन्तमें औरङ्गजेबके शासनकालमें हम इतने दबा दिये गये कि हमें अपने धार्मिक कार्य्योंके करनेका भी अधिकार न रहा और यज्ञोपवीत धारण करनेके निमित्त विवश होकर पोल-टैक्स देना पड़ता तथा अपवित्र भोजन करना पड़ता था।

ऐसे नाजुक समयमें महाराज शिवाजीका जन्म हुआ जो धर्मके अवतार थे। उन्होंने भारतवर्षके एक कोणको स्वतन्त्र करके हिन्दू-धर्मको शरण दी। इसके पश्चात् नाना और भाऊसाहब हुए, जिनका तेज सूयको भांति चमका। जो कुछ गया था महादाजी सेंधियाको बुद्धिमत्ताद्वारा हमलोगोंने महाराज पेशवाके शासनकालमें फिर लौटा लिया। यह सब कार्य किस प्रकार सम्पादित हुए यह सोचकर आश्चर्य होता है। एक बार भी सफलता प्राप्त कर लेनेपर हम अन्धे हो जाते हैं और उसके भारी परिणामको नहीं देखते। यदि ऐसी सफलता मुसलमानोंने प्राप्त की होती तो कई इतिहास उनके गुणानुवादसे तैयार हो जाते। मुसलमान एक छोटे कामको भी आसमानतक चढ़ा देते हैं, पर हिन्दू इसके विपरीत कितना भी गौरवपूर्ण कार्य क्यों न करें उसे प्रगटतक नहीं करना चाहते। किन्तु वास्तवमें आश्चर्यजनक घटनायें हुई हैं; अजेय जीता गया है। मुसलमान राज्यको काफ़िरोंके हाथ जाने और काफ़िरशाही

आनेकी बात सोच २ प्रत्यक्ष रो रहे हैं। वास्तवमें जिन जिन लोगोंने भारतवर्षमें हमारे विरुद्ध सिर उठाया महादाजीने सबोंको चकनाचूर कर दिया। हमलोगोंने जितनी सफलता प्राप्त की है वह मानव शक्तिके बाहर है। बहुत अंशोंमें सम्पूर्ण होते हुए भी अभी हमें बहुतसे कार्य करने शेष हैं। कोई नहीं जानता कि कब और कहां हमारे गुण हमें असफल बनायंगे और दुष्टोंकी क्रूर दृष्टि हमारे लिये हानिकारक होगी। हम लोगोंका गौरव राज्य प्राप्त करनेतक ही परिमित नहीं है, हम-सांसारिक सुखोंसे ही सन्तुष्ट नहीं हो सकते ; वरन् वेद, पुराण और शास्त्रोंकी रक्षा, धर्म और हिन्दू-सभ्यताकी वृद्धि और गौ-ब्राह्मणकी सेवा करना भी हमारा मुख्य कर्तव्य है; और इन सब उद्देश्योंकी पूर्तिकी कुञ्जी आप और महादाजीके हाथोंमें है। आप लोगोंके बीचका ज़रा-सा भी मनो-मालिन्य शत्रुओंकी शक्तिको प्रबल बना देगा। किन्तु अब आपलोगोंके आपसमें मेल हो जानेके समाचारने हमलोगोंकी सारी शंकाओं-का अन्त कर दिया। अब अपनी सेनाओंको हम लाहौरमें पड़ी रहने दें और सीमान्तकी ओर बढ़नेके लिये तैयार हों। हमारे शत्रुओंको यह आशा थी कि हमलोग आपसमें लड़कर सत्यानास हो जायंगे; अब उनकी इन आशाओंपर पानी फिर गया। मुझे इसकी बड़ी चिन्ता थी; आज वे सारी चिन्तायें मिट गईं। अच्छा हुआ; बहुत ही अच्छा हुआ, अब मुझे शान्ति है।” सच्चे उत्साही कार्य्यकर्त्ताद्वारा लिखा हुआ

उपरोक्त पत्र, कई दर्जन नीरस इतिहासोंकी अपेक्षा, मरहठोंका आत्मा, स्वभाव और उत्साहका कहीं ठीक चित्र खींच देता है।

महाराष्ट्रके अभाग्यवश इसी समय महादाजी ज्वरसे पीड़ित होकर पूनाके समीप वानावादीमें १२ वीं फरवरी सन् १७९४ई०-को इस संसारसे चल बसे।

शक्तिशाली सरदार और सेनापति महादाजीकी मृत्युको देखकर महाराष्ट्रके शत्रुओंमें नवीन जीवनका संचार हो गया, और वे महाराष्ट्रमंडलको सत्यानास करनेके लिये प्राण-पणसे प्रयत्न करने लगे। इन शत्रुओंमें अग्रगण्य निजाम हैदराबाद थे, जिनको मरहठोंने बिल्कुल निर्बल करके अच्छी प्रकार अपने हाथोंमें कर लिया था। अब वे मरहठोंसे बदला लेनेका सुअवसर समझकर उत्तेजित हो उठे। इस समय इन्होंने अपनी सेना पहलेकी अपेक्षा बारहगुनी कर ली थी; और उसे एक फरांसीसी सेनापतिकी अध्यक्षतामें रक्खा था। निजामका मंत्री मिसरुलमुल्क एक कट्टर मुसलमान था। महादाजीने, जो बादशाही अधिकार मुगलसम्राट्से अपने पेशवाके लिये प्राप्त किया था, वह उसे असह्य हो गया था। मुसलमान गांव-गांव और घर-घर घूमकर डींग मारते फिरते और कहा करते थे कि शीघ्र ही युद्ध होगा; जिसमें काफिरशाहीका अन्त होगा और पूनामें मुसलमानी ध्वजा फहरायगी। निजामका मंत्री इतना ढीठ हो गया कि जब मरहठा रेज़िडेण्टने उससे चौथ मांगी तो उसने उत्तर दिया कि नाना स्वयं हैदराबाद आवें और हमें बत-

लावें कि उन्हें "चौथ" लेनेका क्या अधिकार है। यदि वे यहां स्वयं न आवेंगे तो मैं शीघ्र ही उन्हें मंगा लूंगा। फिर वह सोचने लगा कि सम्भव है कि इतने ही अपमान करनेपर मरहठे लड़नेको उद्यत न हों। इसलिये उसने एक बादशाही उत्सव किया; जिसमें दूसरे देशोंके भी राजदूत बुलाये गये थे। उन राजदूतोंके समक्ष अपने दो दरबारियोंको नाना और माधोराव पेशवा बनाकर उनका हर प्रकारसे हास्य उड़ाया गया। इसपर मरहठे राजदूत गोविन्दराव पिंजे और गोविन्दराव केल क्रोधभरे उठ खड़े हुए और निजामके इस असभ्यतापूर्ण कार्यका घोर विरोध और निन्दा करते हुए कहने लगे, "ऐ मिसरुलमुल्क ! तूने कई बार अपनी शक्तिपर अभिमान करके नानाको नीचा दिखलानेका प्रयत्न किया और चाहा कि उन्हें हैदराबाद आनेके लिये विवश करूं, किन्तु स्वयं अपमानित हुआ। इस बार भी तूने इस राजदरबारमें हमारे स्वामीका अपने दरबारियोंद्वारा अपमान कराया है। हम आज ही ललकारकर कहे देते हैं कि यदि मरहठे तुमको जीते पकड़कर महाराष्ट्रकी राजधानीमें तमाशा बनाकर न घुमायें तो हम सच्चे मरहठे नहीं।" इन बातोंको कहकर मरहठे-राजदूत निजामके दरबारसे निकलकर पूनाके लिये चल दिये और पूना पहुंचकर लड़ाईकी घोषणा कर दी। अंग्रेज दोनों विपक्षियोंके हितकारी बननेका ढोंग दिखानेके लिये सुलह करानेका प्रयत्न करने लगे; किन्तु मरहठोंने उन्हें डांटकर कह दिया कि महाराष्ट्रके कार्य्योंमें आपलोग कभी भी

हाथ न डाला करें। इस भावको जानकर अंग्रेज ऐसे भयभीत हुए कि यद्यपि निज़ामने उनकी सहायता चाही, किन्तु अंग्रेजोंने इसे देनेका साहस न किया।

निज़ामने लड़ाईकी बड़ी तैयारी की थी। उसका मंत्री बड़ी बड़ी डींगें मारता था और उसने कुछ मुसलमान मौलवियोंको आज्ञा दे दी थी कि घूम-घूम यह प्रचार करो कि यह धार्मिक युद्ध है और इसमें भाग लेना प्रत्येक मुसलमानका परम कर्त्तव्य है। काफिरोंका सत्यानास करके पूनाको लूटकर जला देना हमारा परम धर्म है। वजीर मिसरुलमुल्क स्वयं कहा करता था कि मैं मुगलराज्यको मरहठोंकी पराधीनतासे मुक्त करूंगा और इस बार नवयुवक पेशवाको भिक्षुक कर दूंगा, ताकि वह महाराष्ट्र छोड़कर बनारस जाकर द्वार-द्वार भिक्षा मांगे। जबकि हैदराबाद-का वजीर इस प्रकारकी डींगें मारनेमें चूर हो रहा था, उस समय मरहठोंका मंत्री अपनी सेनाओंकी गणना कर रहा था, और आक्रमण करनेका उपाय सोच रहा था। यद्यपि सरदार और प्रधान सेनापति महादाजीकी मृत्यु हो गई थी, फिर भी मरहठोंने उस समयपर पूर्ण उत्साह दिखलाया। नानाकी बुद्धि, और अपने समाजके लोगोंपर जैसा अद्भुत प्रभाव इस बार दिखाई दिया पहले कभी देखनेमें न आया था। उसकी आज्ञापर महाराष्ट्रकी दूर देशोंमें फैली सेना, हिन्दूपादशाहीके नामपर पूनामें एकत्रित होने लगी।

महादाजीका उत्तराधिकारी दौलतराव सेन्धिया, आगरेका रक्षक जीवादादा बक्सी, दूसरे सेनापति, और जो सेनायें

उत्तरी भारतवर्षमें पठानों, रुहेलों और तुर्कोंको अधीन किये हुए थीं, बुलाई गईं। तुकाजी होल्कर अपनी सेनाके साथ वहांपर पहलेसे उपस्थित था। राघोजी भोंसला एक शक्तिशाली सेना लेकर नागपुरसे चल पड़ा। गायकवाड़ भी बड़ौदासे चलकर पूनामें आ पहुंचा। पटवर्धन, रस्ते, राजेबहादुर और विनचुर-कर, घाटके,चयावन, डाफिले, पावर, घोराट और पठानकर आदि बहुतसे सरदार और सेनापति इस स्थानपर एकत्रित हो गये। पेशवाने स्वयं अपने मंत्रीको लिये हुए सेनाके साथ प्रस्थान किया। यह पहला अवसर था जबकि नवयुवक पेशवाने स्वयं युद्धमें भाग लिया था। प्रिय राजकुमारको अपने साथ देखकर मरहठे-सिपाही, शूरता और वीरतासे भर उठे और इस आक्र-मणको बहुत आवश्यकीय समझने लगे। निज़ाम पहलेसे रण-क्षेत्रमें डटा था। उसके साथ एक लाख दस हज़ार घुड़सवार और पैदलसेना और बहुत बड़ा तोपखाना था। उसकी सेना इस प्रकार सुसज्जित थी जिससे ज्ञात होता था कि वह अवश्य विजयी होगा। मरहठोंकी बहुत-सी सेनायें सीमान्त प्रदेशकी रक्षाके लिये रोक दी गई थीं। तथापि एक लाख तीस हजार सेना इकट्ठी हो गई। यह दोनों सेनायें महाराष्ट्रके सीमान्तपर परन्धा स्थानमें मिलीं। नानाने परशुराम भाऊ पटवर्धनको सारी सेनाके सेनापतिके स्थानपर नियुक्त किया। ज्योंहीं दोनों सेनायें इतनी दूरीपर आ गईं कि गोली एक दूसरेतक पहुंच सके, लड़ाई प्रारम्भ हो गई। पठानोंने कई बार मरहठोंकी सेनाको पीछे

हटनेके लिये विवश किया। चूंकि इस लड़ाईमें परशुराम भाऊ भी सम्मिलित था; इसलिये मुगलों और पठानोंकी प्रसन्नताका पारावार न रहा और उन्होंने इस सफलतापर अपने खेमेमें एक दरबार किया। किन्तु जब मरहठोंकी मुख्य सेना पहुंची तब निजामको अपनी भूल मालूम हुई। अहमदअलीखांने ५० हजार चुनी सेना लेकर मरहठोंकी सेनाका सामना करके बड़ी वीरतासे वार करना आरम्भ कर दिया। मरहठोंकी भी भोंसलाके अन्तर्गतकी सेना उनपर गोलाबारी करने लगी। जल्दी ही सेंधियाके तोपखाने एक दूसरी तरफसे गोलाबारी करना आरम्भ कर दिया, लड़ाई बड़ी धूम-धामसे होने लगी। मुसलमान अल्लाह-अकबरकी ध्वनिसे आकाशको फाड़ने लगे, किन्तु फिर भी वे अपने स्थानपर डटे न रह सके। वे तितर-बितर हो गये और उनकी सेनाकी बहुत बुरी पराजय हुई। निजाम भी बहुत डर गया और लड़ाईके मैदानसे भाग गया और रात्रि हो जानेके कारण मरहठोंके हाथ न आया। छोटी २ लड़ाइयां सारी रात होती रहीं। घबराहटके कारण मुसलमानी सेना तहस-नहस होती रही। मौलवी लोगोंद्वारा धर्मके नामपर उत्साहित किये जानेपर भी मुगल घबराहटमें पड़कर अपने ही खेमे लूटते थे और शीघ्रतासे भाग निकलते थे। मरहठे-खेमोंके रखवाले तम्बूमें थे। जो कुछ लेकर वे भागे जाते थे ये सब ले लिया करते थे। प्रातःकाल निजामकी सेना पहिली जगह छोड़कर कुरदा गांवके दुर्गके पीछे जाकर खड़ी हुई। उस समय उसकी सेनामें केवल दस हजार

सीपाही रह गये थे। मरहठे पार्श्ववर्ती पहाड़ोंपरसे उनपर गोलाबारी करने लगे। दो-तीन दिनतक मुग़ल उनको सहते रहे। निजामका साहस मरहठोंकी गोलाबारी देखकर छूट गया। तीसरे दिन प्याससे सूखे गले, धुएंसे गला घुंटे हुए, शत्रुओंने लड़ाईको बन्द करनेकी प्रार्थना की। मरहठोंने कहा कि पहले मिसरुलमुल्कको हमारे हवाले करो तब कोई दूसरी बात होगी। लम्पटतापूर्वक उसने मरहठे-राजदूतका,नहीं नहीं,महाराष्ट्रके मंत्रीका जो अपमान किया है, उसको अपनी वह बड़ी भूल अवश्य ठीक करनी पड़ेगी। मुसलमानोंका झण्डा गिर पड़ा। उन्होंने अपने राजमन्त्रीको मरहठोंके हवाले किया और यह इच्छा प्रकट की कि आप जिस शर्तपर कहें हमलोग सुलह करनेको तैयार हैं। परिन्दा और ताप्तीके बीचका सारा देश और तीन करोड़ रुपये चौथका बकाया मरहठोंको मिले। इसके अतिरिक्त भोंसलाने १६ लाख रुपया लड़ाईका हरजाना अलग लिया। इन शर्तोंपर मरहठोंने निजामकी सेनाको लौट जाने दिया, जो कि मरहठोंकी राजधानी पूनाको जलाने, लूटने और पेशवाको काशी भेजकर भीख मंगाने आई थी।

मिसरुलमुल्कको मरहठोंकी सेनाके बीच कैदी बनाकर घुमाया गया। जब वह कैदीकी दशामें मरहठोंके खेमे-खेमे घुमाया जाता था तो काफ़िर उसे देखकर हर-हर महादेवकी ध्वनिसे आकाश गुञ्जाते थे। उन्होंने उस आदमीको पकड़ा था, जो नानाके पकड़नेकी डींग मारा करता था। मरहठोंने अपने राजदूतके प्रणको

पूरा किया। सज्जन मंत्री और सर्व-प्रिय पेशवाने अपने शत्रुको यह दिखला दिया कि अगर वे चाहें तो उसे पूनाके द्वार-द्वार घुमा सकते हैं। किन्तु उन्होंने उसका और अधिक अपमान करना उचित न समझा। नानाने उसे क्षमा कर दिया। मरहठोंने यह दिखला दिया कि वे जिसे चाहें दण्ड दे सकते हैं, किन्तु वे बहुधा लोगोंको क्षमा ही कर दिया करते हैं।

पेशवाने सारे सेनापतियोंके साथ बड़े धूमधाम और उत्सवके साथ अपनी राजधानीमें प्रवेश किया। चारों ओरसे झुण्ड-के-झुंड मनुष्य पूनामें अपने पेशवा और बहादुर सैनिकोंको बधाई देनेके लिये आने लगे। पूना अपने विजयी सपूतोंके स्वागतके लिये अति उत्तमतापूर्ण सजाया गया था। स्त्रियां बादशाही शहरके महलोंकी छतों-झरोखों-पर बैठी हुई विजयी शूरवीरों, सेनापतियों, राजनीतिज्ञों तथा अपने प्रिय पेशवाके ऊपर पुष्पकी वर्षा करती थीं। कुमारी-कन्यायें तथा भद्र महिलायें,भक्ति और श्रद्धापूर्वक, अपने २ द्वारों-पर खड़ी होकर, अपने नवयुवक पेशवाकी आरती उतारती थीं। अपनी राजभक्त और श्रद्धालु प्रजाद्वारा सम्मानित होता हुआ पेशवा अपने राजमहलकी ओर बढ़ता गया। बहुतसे सेनापति और सरदारगण अपनी बड़ी २ सेनायें लिये हुए राजधानीके चारों ओर बहुत दिनोंतक पड़े रह गये। नानाके मंत्रित्व और भाऊके सेनापतित्वमें मरहठोंने हिन्दू-महा-राष्ट्रके सबसे अच्छे दिनोंको देखा।

प्रिय पाठको ! हम कुछ समयतक यहीं रुक जांय और अपने नवयुवक, भाग्यशाली और सुप्रसन्न पेशवाको अपनी प्रजाकी अपार भक्ति और सर्वप्रियताके आनन्द लेनेके लिये,बलवान मन्त्रिगणों द्वारा जीते हुए राज्यको प्रजातन्त्रराज्यके उचित विभागोंमें विभाजित करके उनका सुप्रबन्ध करनेके लिये,भविष्य कार्यक्रम बनानेके लिये, प्रान्तोंके प्रतिनिधियों और सेनापतियोंसे परामर्श करनेके लिये, महाराष्ट्रके निवासियोंको विजयकी प्रसन्नतापर आनन्द मनानेके लिये, भाट और राजकवियोंको अपने पूर्वजों और सन्तानोंके गुणगान, जिनको सुनकर अब भी मनुष्य आनन्दसे विह्वल हो जाता है, करनेके लिये, किसानोंको नानाके सुप्रबन्धसे प्रसन्न होकर अपने हलोंके पीछे गाना करनेके लिये, छोड़ दें। हम उन मन्दिरोंके दृश्यको देखें जहांपर सहस्रों मनुष्य भेंट लेकर नाना प्रकारसे पूजा करनेके लिये एकत्रित हुए हैं और अपने पूजनमें मग्न हैं। देशोंके भिन्न-भिन्न भागोंके यात्री, संन्यासी, योगी, यती और वैज्ञानिक हरिद्वारसे लेकर रामेश्वरतक, अपने-अपने कार्यों में निश्चिंत होकर संलग्न हैं। धनी लोग शास्त्रों और वेदोंके पढ़ानेमें करोड़ों रुपये व्यय कर रहे हैं, जिससे अध्यापक और विद्यार्थी गुरुकुल और महाविद्यालयोंमें विद्या-अध्ययन कराते और करते हैं। सैनिक लोग अपने कार्यों के लिये सफलतानुसार पुरस्कार प्राप्त कर अपने-अपने गृहोंमें आनन्द कर रहे हैं। इस समय सारा महाराष्ट्र स्वतन्त्र है और आनन्दके सागरमें डूबा हुआ है

पाठको! हमें इनको ऐसे आनन्दमें छोड़ देना उचित है; क्योंकि मनुष्य आनन्दहीकी इच्छा सदैव करता है । यद्यपि उसे परमात्माने यह ज्ञान दिया है कि सुख क्षणिक है, तथापि वह सदैव वैभवकी चोटीपर रहना चाहता है । अब हम, जो कुछ पहिले लिख आये हैं उसीको संक्षेपमें दूसरे अध्यायमें लिखेंगे; जिससे हम महाराष्ट्रके इतिहासको भारतके इतिहासमें उचित स्थान देनेमें समर्थ हों ।

उत्तरार्द्ध

सिंहावलोकन

पहिला अध्याय

आदर्श

महाराष्ट्रके प्रभुत्वमें अखिल भारत हिन्दू-साम्राज्य

ग्रंथकर्त्ताने मरहठा-इतिहासका सिंहावलोकन इस अभिप्रायसे कराया है कि मुख्य २ घटनायें भारतके विस्तृत इतिहाससे निकलकर जनताके सम्मुख हों। ये घटनायें,जो विस्तृत इतिहासमें अपने स्थान और क्रमको छोड़ देनेसे विशेष प्रभाव नहीं रखतीं, यदि अपने वास्तविक रूपमें भलीभांति जनताके सामने आ-जायंगी, तो लोग महाराष्ट्रके इतिहासको हिन्दू-हितकी दृष्टिसे विशेष मान्य करने लगेंगे। उन घटनाओंके परस्पर सम्बन्ध और विस्तृत विवरणको पढ़कर लोग महाराष्ट्रके इतिहासको भारतका इतिहास मान लेनेमें कोई आनाकानी न करेंगे। यद्यपि भारतवर्षका इतिहास बहुत बड़ा है, जिसका मरहठा-इतिहास केवल एक अध्यायमात्र है, तथापि यह अध्याय परमावश्यकीय और सर्वोपरि है। इस विचारको लेकर ग्रंथकर्ताने मरहठा आ-न्दोलनका संक्षिप्त वर्णन किया है। साथ-ही-साथ उसने मरहठों-के उस पवित्र ध्येय और आदर्शका पता लगानेका प्रयत्न किया

है, जिसे सामने रखकर मरहठे इस आन्दोलनमें अग्रसर हुए और लगातार परिश्रम, प्रयत्न और आत्मसमर्पण करते हुए अन्तमें एक विशाल हिन्दू-साम्राज्यकी स्थापना कर ही डाली। मरहठोंके इतिहासके प्रथम भागको लोग महाराष्ट्रके बाहर भी भलीभांति जानते हैं और उसका विशेष मान भी करते हैं; किन्तु इसके दूसरे भागसे, जो बालाजी विश्वनाथरावके समयमें महाराष्ट्र-मण्डलकी स्थापनाके पश्चात् आरम्भ हुआ है, लोगोंकी जानकारी बहुत कम है।

प्रातःस्मरणीय राणाडेजीने शिवाजी तथा राजारामके वंशजोंके पूर्ण वृत्तान्तोंको उनके वास्तविक रूपमें वर्णन किया है। इसलिये हमने उनके समयकी केवल एक दो घटनाओंको संक्षेपतः वर्णन किया है। दूसरे भागको हमने विशेष विस्तार दिया है, यद्यपि यह भी पूर्ण नहीं है। जहांसे महाराष्ट्र इतिहासका दूसरा भाग प्रारम्भ होता है वहांसे वास्तवमें यह इतिहास महाराष्ट्रका ही इतिहास नहीं रह जाता, किन्तु ऐसा रूप धारण कर लेता है कि सारे भारतवर्षका इतिहास बन जाता है।

मरहठा-इतिहासका सिंहावलोकन हिन्दू-हितोंकी दृष्टिसे कराया गया है। जिस पवित्र ध्येय और मनोरथोंसे प्रोत्साहित होकर महाराष्ट्रवासी अनेक पीढ़ियोंतक अलौकिक वीरतासे डटे रहे, उनकी गवाही उन विवेकशील दक्ष कार्यकर्ताओंकी कार्यवाही दे रही है,जिन्होंने इस आन्दोलनमें भाग लिया था। इस आन्दोलनमें सम्मिलित होनेवाले आत्म-वीर मुखसे न कहकर

अपनी दक्षतासे अपने उद्देश्योंको जनताके सामने रखते थे; कारण यह था कि वे हिन्दू-जातिके अङ्गोंको पुष्ट करनेमें इतने व्यस्त थे कि उन्हें कुछ कहनेका अवकाश ही नहीं मिलता था; तौभी जो कुछ कहा है उसका प्रभाव उतना ही पड़ा है जितना उनके कार्योंका। इस कथन और कार्योंके द्वारा यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया गया है कि इस स्वतंत्रताके युद्ध और आन्दोलनका लक्ष्य स्वामी रामदासजी और महाराज शिवाजी-के समयतक ही नहीं, बल्कि अन्ततक हिन्दुस्तानको परतंत्रता-की बेड़ीसे मुक्त करने और एक विशाल शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित कर भारतीय सभ्यता और धर्मकी रक्षा करनेका था, जिसमें धर्मोन्मत्त विदेशी अपनी हठधर्मीके कारण भारतका सत्यानास न कर डालें। आरम्भ-कालसे लेकर अन्तिम समयतक इसी लक्ष्यने मरहठोंके जीवनको डांवाडोल कर दिया और वे एकसौ वर्षतक लगातार इसकी पूर्तिके लिये प्रयत्न करते चले गये। सन् १७६५ ई० में गोविन्दराव केलने सब मुस-लमानोंपर स्पष्ट प्रकट कर दिया कि यह हिन्दुओंका देश है, मुसलमानोंका नहीं।

दूसरी परमावश्यक बात, जो हमने अपनी इस पुस्तकद्वारा भारतवासियोंके सामने उपस्थित की है, यह है कि इस कार्यकी पूर्तिके लिये एक या दो मनुष्य, एक या दो पीढ़ी नहीं, वरन् सारी मरहठा-जाति उद्यत हो गई थी। यद्यपि हिन्दू-जातिकी इस परतन्त्रताकी लड़ाईका प्रारम्भ महाराज शिवाजी और स्वामी

रामदासजीने किया था; किन्तु उनकी मृत्युके पश्चात् यह आन्दोलन बन्द न हुआ, वरन् आनेवाली सन्तान उनके सिद्धांतोंका अनुसरण करती हुई इस आन्दोलनकी सफलताके लिये प्राणपणसे प्रयत्न करती चली गई। ज्यों २ समय बीतता गया त्यों २ यह आन्दोलन फैलता गया। बड़े २ वीरताके कार्य्य सम्पादन हुए और उनके द्वारा बड़ी २ सफलतायें भी प्राप्त हुईं। योग्य पुरुषों, स्त्रियों, राजनीतिज्ञों, शूरवीरों, राजाओं और राजाओंको राजा बनाये रखनेवाले सूरमाओं और लेखकोंने सहस्रों और लाखोंकी संख्यामें इस कार्यक्षेत्रमें पदार्पण किया और इनका कार्य एक सौ वर्ष तक यथाक्रम उन्नतिको प्राप्त होता गया। सारे लोग एक सुनहले गेरुआ वस्त्रके झंडेके नीचे कार्य करते रहे।

इसके साथ ही-साथ जब हमारा ध्यान मरहठोंके अद्भुत राजनैतिक ज्ञान और शासन-चातुरीकी ओर जाता है और हम यह देखते हैं कि मरहठे अपने राज्योंको मिलाकर महाराष्ट्र-मण्डलके रूपमें परिणत कर देते हैं तो हम इस सिद्धान्तपर पहुंचते हैं कि मरहठा-आन्दोलन सार्वजनिक आन्दोलन ही नहीं था, वरन् उसने भारतवासियोंके जीवन और राजनैतिक प्रगतिमें एक बड़ा अन्तर पैदा कर दिया। जैसे प्रजातन्त्र राज्यको मरहठोंने स्थापित कर लगभग एक सौ वर्ष तक उसका सुचारु रूपसे प्रबन्ध किया वैसे प्रजातन्त्र राज्यका उदाहरण भारतवर्ष के इतिहासमें एक भी नहीं पाया जाता। इस महाराष्ट्र-मण्डलके शासन-प्रबन्धमें किसी व्यक्तिविशेषका लेशमात्र अधिकार न था। इस आन्दोलनमें

भाग लेनेवाले व्यक्तियोंका ध्येय एक ही था। उनके भीतर प्रजातंत्रराज्य स्थापित करनेके अतिरिक्त और कोई दूसरा भाव न था। महाराष्ट्रमण्डलके प्रत्येक प्रधान कार्यकर्ताका कार्य, उत्तरदायित्व और अधिकार परिमित था। जिन मनुष्योंकी शिक्षा-दीक्षा प्रजातंत्रराज्यकी छत्रछायामें होती है वे एकतंत्रात्मक राज्य-शासनकी अपेक्षा संयुक्तराज्य अमेरिकाकी शासन-प्रणालीकी ओर अधिक झुकते हैं।

प्रजातन्त्रराज्यका दूसरा उदाहरण हमारे वर्त्तमान भारतके इतिहासमें सिक्खोंका भी शासन-विधान मिलता है। किन्तु यह बहुत छोटा राज्य था और इसकी शासनपद्धति भी अनियमित थी, जिसके कारण यह उतने दिनोंतक न ठहर सका जितने समयतक महाराष्ट्रमण्डल कार्य करता रहा; किन्तु यह राज्य भी देशभक्तिके उन्हीं उच्च आदर्शों और सिद्धान्तोंसे भरा था, जिनसे महाराष्ट्रमंडल। इसलिये हम श्रद्धापूर्वक कहते हैं कि सिक्ख-राज्य, हिन्दू-प्रजातन्त्रराज्यका एक दूसरा उदाहरण है।

मरहठा-आन्दोलनके सम्बन्धमें इस पुस्तकमें इस बातपर अधिक जोर दिया गया है कि यह आन्दोलन राष्ट्रीय और समस्त हिन्दूहितके भावोंसे भरा हुआ था। परन्तु जो कुछ ऊपर लिखा गया है उससे प्रकट होता है कि यदि यह धारणा कर ली जाय कि इस आन्दोलनमें भाग लेनेवाला प्रत्येक व्यक्ति सार्वजनिक भावों और हिन्दू-हितोंको ही ध्यानमें रखकर कार्य करता था तो हमारी भारी भूल होगी। इस पवित्र धर्मयुद्धके

साथ-साथ मरहठोंमें गृह-कलह भी वर्तमान था। इसका कारण यह था कि मरहठे पहले हिन्दू थे और इसके पीछे मरहठा। इसी कारण हिन्दुओंके भीतर जो सद्गुण और दुर्गुण, शक्ति और निर्बलता, सामूहिक और व्यक्तिगत हितके भाव वर्तमान थे उनका कुछ-न-कुछ अंश उनमें वर्तमान होना स्वाभाविक था। मुसलमान पहले आक्रमणमें जिन धार्मिक भावों, सामाजिक संगठन और वीरतापूर्ण उत्साहके कारण विजयी हुए थे, वे गुण हिन्दुओंमें बहुत ही कम विद्यमान थे। इस स्थानपर हिन्दू और मुसलमानोंकी त्रुटियों और शक्तियोंके ऊपर विचार करना उचित नहीं जान पड़ता, किन्तु इस बातका प्रकट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है कि उन कारणोंको बतला दें, जिनसे मुसलमान विजयी होते रहे और अपनी राजनैतिक सत्ता, राज्य और धर्म इतना अधिक बढ़ा सके। मुसलमान यह शिक्षा प्राप्त कर निकले थे कि इस्लामधर्मसे भिन्न धर्म नर्कमें ले जानेवाले हैं, इन धर्मोंका जड़से सत्यानास कर देना पुण्य है। चाहे इसके करनेमें कितना ही अन्याय और निर्दयता करनी पड़े, कोई पाप नहीं है। इन भावोंसे प्रेरित होकर कार्य करते हुए वे अपने धर्मको विस्तृत करनेमें समर्थ हुए। इसके विरुद्ध हिन्दू स्वभावसे ही शान्तिप्रिय थे। "अहिंसा परमो धर्मः"का इन्हें उपदेश मिला था, अपनेसे विलग हुए भाइयोंको पुनः गले लगानेमें ये पाप समझनेवाले थे, संगठनशक्तिसे बिल्कुल विहीन थे ; अतएव इनपर विजय पाना भी मुसलमानोंके लिये बहुत ही आसान हो गया। यदि

हिन्दुओंके भीतर भी धार्मिक प्रेम, संगठन और शुद्धिकी प्रथा वर्तमान होती तो उन लोगोंने भी अपनी मातृभूमि और अपने धर्मके गौरवकी रक्षाके लिये ऐसा उत्साह और शक्ति दिखलायी होती कि मुसलमान किसी भी प्रकार उनका सामना न कर सकते।

मुसलमान जब भारतवर्षमें आये तब उन्हें यह अनुभव प्राप्त होने लगा कि वे धर्म और परमात्माके नामपर एक असीम शक्ति पैदा कर सकते हैं। वे लोगोंको यह कहकर अपनी ओर झुकाने लगे कि "हमारा राज्य परमात्माका राज्य है।" हिन्दुओंकी शिक्षा-दीक्षा और व्यवहार इसके विरुद्ध था। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और धार्मिक जीवन-निर्वाह इनका स्वभाव बन गया था। इनकी अवस्था अव्यवस्थित और निरीह बन गई थी। तत्वज्ञानके गूढ़ रहस्योंका उद्घाटन करनेवाले साधारण भ्रमोंमें पड़कर 'किं कर्तव्यविमूढ़' बन रहे थे। ये विदेशयात्राको धर्मविरुद्ध समझकर अपना राज्य-विस्तार करनेमें ही असमर्थ नहीं थे, वरन् सदा इन्हें विधर्मियोंके आक्रमणोंका लक्ष्य बनना पड़ता था। परमार्थकी प्रबल इच्छाने इन्हें राजनैतिक और सामाजिक उन्नतिसे वंचित कर रक्खा था, विशाल साम्राज्य छोटे २ टुकड़ोंमें विभक्त हो गया था और एकही हिन्दू-सभ्यताके अन्दर होते हुए भी पारस्परिक बन्धन-सूत्र ढीले पड़ गये थे। हिन्दूत्वकी वास्तविकताकी ओर इनका ध्यान बहुत ही कम था। इन्हें वर्ण, प्रान्त, सम्प्रदाय आदि विभिन्नताओंने शक्तिहीन बना रक्खा था

भारतके सारे हिन्दुओंको हिन्दू-धर्मके झंडेके नीचे लानेकी कई बार बड़ी चेष्टायें और प्रयत्न किये गये; किन्तु वे सारे एक एक करके असफल होते गये। यदि विचार किया जाय तो व्यक्तिगत एक हिन्दू, उतना ही वीर, बलवान और धर्मपर बलिदान होनेवाला था, जितना कि एक मुसलमान। किन्तु मुसलमान ईश्वर और धर्मके नामपर संगठित, इनपर मरनेके लिये सदैव प्रस्तुत, और पवित्र युद्धके नामपर अन्य धर्माव-लम्बियोंपर आक्रमण कर अपना राज्य बढ़ानेमें प्रयत्नशील थे। हिन्दुओंमें इन गुणोंका सर्वथा अभाव था। किन्तु जब सैकड़ों वर्ष बीत गये, एक ही प्रकारके कष्टसे पीड़ित हुए, तब हिन्दुओंकी आंखें खुलीं और उन्होंने सचेत होकर इस पाठको सीखा और अनुभव करने लगे कि हम एक हैं, एक देशके लाल और एक भारतजननीके पुत्र हैं। वे यह भी सोचने लगे कि पहले हम हिन्दू हैं, पीछे किसी विशेष प्रान्त या सम्प्रदायके। अपनी असंगठित अवस्थाका,जिसके कारण वे निर्बल और शक्तिहीन बन रहे थे, अनुभव कर पश्चात्ताप करने लगे। संगठनका भाव जागृत हो उठा। वे व्यक्तिगत विचारों और कार्योंको घृणाकी दृष्टिसे देखने लगे। जातीय गौरव और अभिमानके ऊपर उत्सर्ग होनेका विचार आने लगा। उन कारणोंके समझनेका प्रयत्न करने लगे जो मुसलमानोंकी सफलताके कारण थे। इस कार्यमें ये सफल भी हुए। शीघ्र ही राजनैतिक स्वतंत्रता और एक हिन्दू-साम्राज्य स्थापनाके निमित्त हिन्दू-आन्दोलन प्रारम्भ

कर दिया गया। उस समयके आन्दोलनों और हिन्दू-जगतकी राजनैतिक अवस्थापर दृष्टि डालनेपर प्रत्येक व्यक्ति यह कहे बिना नहीं रह सकता कि केवल महाराष्ट्रके ही हिन्दू इस योग्य थे, जो इस आन्दोलनके प्रमुख बनकर हिन्दू-धर्मकी स्वतंत्रताकी लड़ाईमें सफल हो सकते थे। स्वामी रामदासजीने,सम्पूर्ण भारत भ्रमण कर महाराष्ट्र लौट आनेपर, मर्मभेदी, परन्तु आशापूर्ण शब्दोंमें कहा था—"सारे देशमें कोई हिन्दू इतना शक्तिशाली और उत्साही नहीं रह गया, जो इस हिन्दू-जाति और भारतमाताको परतंत्रताकी बेड़ीसे मुक्त कर सके। यदि कुछ आशा है तो केवल महाराष्ट्रनिवासियोंसे।" स्वामी रामदासजी और उनके शिष्यगण इसी आधार और विश्वाससे इस निर्णयपर पहुंचे कि महाराष्ट्रोंको एक दृढ़ सुसङ्गठित सेनाद्वारा लड़कर हिन्दू-धर्म, हिन्दू-मंदिरों और हिन्दू-सिंहासनोंको विदेशियोंके पंजेसे मुक्त कर भिन्न २ प्रान्तों और सम्प्रदायोंमें बिखरे हुए हिन्दुओंकी संगठित शक्तिसे एक ऐसे विशाल महाराष्ट्र-राज्यकी नींव डाली जाय, जिससे सर्वदा हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जातिकी रक्षा होती रहे। किन्तु मरहठे या अन्य हिन्दुओंके भीतरसे वे कारण पूर्णतः दूर नहीं किये जा सके थे, जिनसे जातीयताके भावोंका पतन हुआ था। अब भी सर्वसाधारणमें व्यक्तिगत स्वार्थों और आत्म-गौरवकी लालसा किसी-न-किसी अंशमें वर्तमान थी, जो कभी २ गृहकलहका कारण बन जाया करती थी। किन्तु जहांकहीं हिन्दू-राष्ट्र या हिन्दू-जातिके

हितका अनिष्ट होनेकी सम्भावना दिखाई पड़ती थी लोग शीघ्र अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा और स्वार्थके भावको दबा देते थे। इस प्रकार हिन्दू-हितके उत्साह, हिन्दूत्वको पराधीनता और विधर्म्मियोंकी बेड़ीसे मुक्त करनेकी प्रबल इच्छा और देशभक्तिके उन्मादने उनके तुच्छ स्वार्थोंको दबा रक्खा और इन्होंने अपनी स्वाभाविक त्रुटियोंको परित्याग कर दिया। साथ-ही-साथ वे इस योग्य बन गये कि अपने राष्ट्र और धर्मके हितके लिये सार्वजनिक इच्छानुसार कार्य करें। यह गुण बड़ी शीघ्रतासे मरहठोंके भीतर फैला और वे मुसलमानोंसे भी इस गुणमें बहुत अधिक बढ़ गये और सारे भारतवर्षके बीच इस योग्य समझे जाने लगे कि व्यक्तिगत स्वार्थोंको त्यागकर राष्ट्रीय और हिन्दू-जातीय हितकी प्रबल कामना रखनेवाले केवल मरहठे ही ऐसे हैं जो एक हिन्दू-साम्राज्य स्थापित कर उसे भलीभांति चला सकते हैं।

निस्सन्देह हिन्दू-पाद-पादशाहीकी स्थापना मरहठा-जातिकी वीरता और प्रयत्नके कारण हुई, इसलिये इस साम्राज्यको हमें हिन्दू-पाद-पादशाहीके साथ २ मरहठा-पाद-पादशाही भी समझते रहना चाहिये। अन्य हिन्दुओंमें अभीतक इतनी शक्ति और आत्म-बल नहीं आ गया था कि हिन्दूधर्मसे घृणा करनेवालोंके भयानक आक्रमणको रोककर उन्हें पीछे हटा दें और अपनी स्वतंत्रताकी रक्षा विदेशियोंके आक्रमणसे कर सकें; क्योंकि वे अभीतक संगठित नहीं

हुए थे। उन्हें अपनी स्वतंत्रताके लिये अति आवश्यक था कि हिन्दू-पाद-पादशाहोके अन्तर्गत चले जांय। इस समय महाराष्ट्रके अतिरिक्त हिन्दुओंका कोई भी ऐसा दृढ़ केन्द्र नहीं था जो हिन्दू-जातिको दासता और पराधीनताकी बेड़ीसे मुक्त करनेका साहस कर सके। यद्यपि मरहठोंमें अपने देशके प्रति भक्ति और उत्साह, संगठन, राजनैतिक चतुरता और हिन्दूधर्मकी स्वतंत्रताकी लड़ाई लड़नेकी महत्वाकांक्षा भारतकी अन्य जातियोंसे अधिक थी, तिसपर भी अंग्रेजोंकी अपेक्षा उनकी देशभक्तिका आदर्श, जनसमुदायके हितका विचार और संगठन कम था, जिसके कारण उन्हें अंग्रेजोंसे पराजित होना पड़ा। यह सब होते हुए भी मरहठे जो हिन्दू-पाद-पादशाहीकी बागडोर अपने हाथोंमें रक्खे रहे, यह उचित ही किया। सबसे पहले इन्हींमें साहस आया और इन्हींने इतनी सफलता प्राप्त की, इतना स्वार्थत्याग और आत्मसमर्पण किया। इसलिये यदि हम निष्पक्ष होकर विचार करें तो ऐसी दशामें जो उन लोगोंने सारे भारतवर्षको अपने अधीन और अपनी ध्वजाके नीचे लानेका प्रयत्न किया यह बिल्कुल उचित था। उन्होंने अपने ही ऊपर हिन्दू-धर्मकी रक्षाके उत्तरदायित्वके भारको लिया। उनका ऐसा करना हिन्दू-हितकी दृष्टिसे अति-उत्तम था; क्योंकि जो कुछ हम संक्षेपमें लिख आये हैं, उससे सिद्ध होता है कि उनके भीतर हिन्दूधर्मकी रक्षा करनेकी शक्ति वर्तमान थी। यदि हिन्दू-जातिके अन्तर्गत किसी दूसरे सम्प्रदायने साहस करके इतनी सफलता प्राप्त करनेके पश्चात् मरहठोंको

अपनी अधीनता स्वीकार करनेके लिये बुलाया होता तो हिन्दूहित-की दृष्टिसे वह ऐसा करनेमें न्याय ही करता। जिस किसी हिन्दू-साम्राज्य या हिन्दू-पाद-पादशाहीने राजपूत, सिक्ख, तामिल या बंगाली आदि किसीकी अध्यक्षतामें भी रहकर; प्रान्तीय, सामाजिक, जातीय आदि किसी रूपमें हिन्दूधर्मकी रक्षाका प्रण कर, समस्त भारतके हिन्दुओंको एक विशाल हिन्दू-साम्राज्यकी क्षत्रछायामें लानेका प्रयत्न किया होता, वही समस्त भारतीयोंकी कृतज्ञता और श्रद्धाका पात्र अवश्य हुई होती।

दूसरा अध्याय
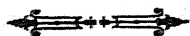
सबसे उत्तम साधन

यदि मरहठोंने, लोगोंको दंड देकर प्रजातंत्रराज्य स्थापित करनेकी जगह, उनके सामने साम्य-भावका आदर्श उपस्थित करके, एक ऐसा हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करनेका प्रयत्न किया होता, जो सर्वसाधारण हिन्दूमात्रके नामसे पुकारा जाता और जिसमें बंगाली, पंजाबी, मरहठा, राजपूत, ब्राह्मण और शूद्र आदिका भेद न रहा होता तो क्या इससे उनके स्वदेशानुरागका अद्भुत् परिचय न मिलता? यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो वास्तवमें यही असली प्रजातंत्र-राज्य होता और इसके द्वारा मरहठोंकी देशभक्ति और भी ऊंची समझी जाती। किन्तु यदि हिन्दुओंके भीतर इस प्रकार एकताके सूत्रमें बंधनेका गुण वर्तमान होता तो मुसलमान सिन्धको पार ही नहीं कर सके होते। हमें प्रत्येक घटनाको उसी दृष्टिसे देखना चाहिये
लिये परिस्थिति हो, और प्रत्येक मनुष्यकी परीक्षा उसके वर्तमान कार्योंहीके द्वारा करनी चाहिये। यह नियम है कि कोई राष्ट्र या कोई व्यक्ति अपने समयकी वर्तमान परिस्थितियोंकी बिल्कुल अवहेलना करके उच्च आदर्शके पालन करनेमें

अवश्य असमर्थ होता है। यदि कोई कहे कि मरहठोंके आदर्शमें किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं थी और उनका आन्दोलन हर प्रकारके भले ध्येयोंसे परिपूर्ण था तो ऐसा कहना केवल भ्रम और भूल है और ऐसा दावा करना सच्चाईका गला घोंटना है। मरहठे भी आदमी ही थे और आदमियोंके बीचमें रहते थे; देव नहीं थे। उनके भीतर भी वेही त्रुटियां वर्तमान थीं जो और हिन्दुओंमें पाई जाती हैं। यही कारण है कि वे अपने उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये कोई और विशेष उत्तम साधन नहीं सोच सके। हिन्दुओंके अन्तर्गत कोई दूसरा सम्प्रदाय तो इतना भी नहीं कर सका, जितना मरहठोंने कर दिखलाया। कहना सरल है, परन्तु किसी कार्यका करना कठिन होता है। किसी मनुष्यको साम्य-भाव दिखलाकर वशमें करनेके लिये यह परम आवश्यक है कि जिस मनुष्यको हम वशमें करना चाहते हैं वह निष्पक्ष होकर हमारी बातोंको सुनकर उसपर ध्यान दे, और यदि उचित समझे तो उसे स्वीकार करे। हम इस बातको ललकारकर कहते हैं कि कोई भी हिन्दू-राजा मरहठोंकी बात माननेके लिये तैयार न था। हिन्दू-राजे, स्वेच्छानुसार अपने छोटे २ राज्यों और पदोंको हिन्दू-पाद-पादशाहीके हितके लिये, जिसमें उनका भी मरहठोंके बराबर ही अधिकार और उत्तरदायित्व था, छोड़कर अपने अस्तित्वको मिटानेके लिये कभी उद्यत नहीं थे। यह स्वदेशानुराग उन राजाओंके भीतर कभी प्रवेश भी नहीं कर सकता था। जिन राजाओंका

राजसिंहासन कई बार गृह-कलहके झगड़ोंसे पैदा हुए रक्त-द्वारा सींचा गया था, जिन्होंने अपने गृह-कलहके निपटारेके लिये मुसलमान और अंग्रेजोंको आमंत्रित किया था, जिन्होंने अपने वेदोंको कुचलनेवाले मुगलोंके सामने अपना सिर झुकाना अपने भाइयोंके सामने सिर झुकानेसे उत्तम समझ रक्खा था, उन हिन्दुओंसे किसी प्रकारकी शुभ कामना चाहना व्यर्थ है। साथ-ही-साथ जिस समय देशकी राजनीति और राष्ट्रीय एकता इतनी नीच दशाको प्राप्त हो गई हो, उस समय किसीसे ऐसी आशा करना कि वह सहसा राजनैतिक विचारों और भावोंके उच्च शिखरपर पहुंच जायगा भूल है। दूसरी बात यह है कि जिस कार्यके पूर्ण करनेका भार सब लोगोंके ऊपर बराबर है उसकी न पूर्ति करनेके लिये अपनेमेंसे किसी एक व्यक्ति या जातिको दोषी ठहराना अन्याय ही नहीं बल्कि अनुचित है। यदि यह कहा जाय कि हिन्दू-साम्राज्यके प्राप्त करनेके आदर्श अच्छे नहीं थे तो इस दोषके अपराधी और उत्तरदायी भारतवर्षके हिन्दूमात्र हैं,न कि कोई व्यक्तिविशेष या समुदाय-विशेष। दूसरे इसके अधिक उत्तरदायी वे लोग हैं जिन्होंने हिन्दू-पाद-पादशाहीके प्राप्त करने और परतंत्रताकी बेड़ीको चूर्ण करनेमें इतना भी नहीं किया जितना मरहठोंने कर दिखलाया।

यह नहीं सोचना चाहिये कि हिन्दूसाम्राज्य स्थापित करनेके लिये दूसरे हिन्दुओंके पास जाकर उनसे इस आन्दोलनमें भाग लेनेके लिये बिल्कुल ही नहीं कहा गया। ऐसा किया गया

और बहुतसे देशभक्तोंने इस पुकारको सुनकर इसमें भाग भी लिया। उत्तर और दक्खिनके कई एक राजपूत, बुन्देला, जाट और दूसरे हिन्दूभाई कार्यक्षेत्रमें उतर पड़े। हम इस प्रकारके उदाहरणोंका वर्णन पहिले कर आये हैं और उनसे जो२ भलाइयां हुई उन्हें भी लिख आये हैं, इसलिये उन्हें पुनः उद्धृत करके हम अपने पाठकोंको थकाना उचित नहीं समझते।

यदि राजनैतिक विचारोंके विकास और शिक्षाको पूर्ण अवकाश मिला होता और इनका प्रचार हिन्दुओंमें भलीभांति हुआ होता तो निस्सन्देह महाराष्ट्रमंडल बढ़कर एक हिन्दू-साम्राज्य या हिन्दू-स्वतंत्र-राज्य बन गया होता। ज्यों २ महाराष्ट्र-मंडल बढ़ता गया धीरे-धीरे उदार बनता गया और उसके भीतर उत्तर और दक्खिनके जो कई छोटे और बड़े राज्य सम्मिलित हो गये थे, उन्हें अपने प्रजातंत्रराज्यमें उचित स्थान और उत्तरदायित्वका भार भी देता गया। वास्तवमें सन् १८००में सारा भारतवर्ष नेपालसे लेकर ट्रावनकोरतक हिन्दू-राजाओंके अन्तर्गत था; जिनका प्रबन्ध कुछ-न-कुछ अंशोंमें महाराष्ट्र-मंडलद्वारा होता था। यदि इङ्गलैंड ऐसे देशने जो राष्ट्रीयता, देशभक्ति और सामाजिक संगठनमें महाराष्ट्रसे बढ़ा हुआ था, ऐसे कुसमयमें भारतवर्षके इतिहासमें हस्तक्षेप न किया होता तो निस्सन्देह हिन्दुस्तानका यह हिन्दू-राज्य प्रान्तिक राज्य न रहकर, एक सुसंगठित और दृढ़ हिन्दू-संयुक्त-साम्राज्य हो गया होता।

जिस प्रकार मरहठे और सिक्खोंने मुसलमानोंसे हारते २

उनके दाँव और उपायोंको समझकर ऐसी नीतिका अवलम्बन किया कि मुसलमान किसी प्रकार उनपर विजय नहीं प्राप्त कर सके और उनके अच्छे-से-अच्छे शस्त्र मरहठोंपर बेकार रहे, उसी प्रकार थोड़ा ही और समय बीतनेपर वे अङ्गरेजोंके सारे गुणोंको सीखकर इस योग्य हो गये होते कि अंग्रेजोंकी दाल हिन्दुस्तान-में न गलने देते और उन्हें हराकर हिन्दुस्तानमें एक ऐसा हिन्दू-साम्राज्य स्थापित किया होता जो वर्तमान जर्मन-राज्यसा होता हम भलीभांति देखते हैं कि महादाजी सिंधिया, बक्षी और दूसरे सेनापतियोंकी अध्यक्षतामें मरहठे-सैनिकोंने हथियार बनाने और चलानेमें अंग्रेजोंसे कम निपुणता नहीं दिखलायी।

हम अब इन सब वादविवादों और तर्कोंको छोड़कर उन बातोंको दिखलाना चाहते हैं जिनके साक्षी इतिहास हैं, और जिन परिस्थितियोंमें पड़े हुए मरहठोंने इतनी सफलता प्राप्त की, उन्हें भी ध्यानमें रखकर हम महाराष्ट्रके इतिहासके गुण और त्रुटियोंका निरीक्षण करेंगे। यदि ऐतिहासिक सिद्धान्तोंपर हम ध्यानपूर्वक विचार करें तो भारतवर्षका कोई भी सम्प्रदाय इसके लिये दोषी नहीं ठहराया जा सकता कि उसने शीघ्र ही स्वतंत्र राज्य स्थापित नहीं किया। यदि हम शिवाजीको दोषी ठहराना चाहें तो केवल उनपर इतना ही दोष आरोपित कर सकते हैं कि वह मोटरपर नहीं चलते थे, और महाराज जयसिंहको इसलिये दोषी ठहरा सकते हैं कि उन्होंने अपने आन्दोलनको समाचारपत्रोंद्वारा नहीं फैलाया। इस प्रकारके अपराधी यातो

भारतवर्षके हिन्दूमात्र हैं या कोई भी नहीं है। यदि हम ध्यान-पूर्वक देखें तो हमें स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि मरहठोंके अतिरिक्त हिन्दुओंके किसी दूसरे सम्प्रदायके लोगोंमें इतना उत्साह नहीं आया था, जो अपने स्वार्थ और प्रान्तिक भेदभावोंको छोड़कर हिन्दूजातिके हितमें लीन हो जायं। केवल मरहठे ही देशको दासताकी बेड़ीसे मुक्त करनेके लिये प्राणपणसे प्रयत्न कर रहे थे और देशभक्ति और राष्ट्रीयतासे भरे हुए थे, किन्तु अभी-तक उन सब गुणोंको भलीभांति नहीं जानते थे जिनका जानना देशभक्तोंके लिये परमावश्यक है। इन गुणोंकी प्राप्तिके मार्गों-पर वे बड़ी शीघ्रतासे जा रहे थे। यदि हम भारतवर्षके भिन्न २ राज्योंकी शक्तियोंपर एक-एक करके विचार करें और उस समयके हिन्दुओंके विचारोंपर ध्यान दें तो हमें भली-भांति विदित हो जायगा कि केवल महाराष्ट्रवासी ही ऐसे हैं जिनमें हिन्दू-जीवन फैला था और केवल महाराष्ट्र-मंडल ही एक ऐसी शक्ति थी, जिसके नीचे भारतकी सारी हिन्दू-शक्तियां एकत्रित होकर बलवान-से-बलवान शत्रुओंको भी परास्त करनेमें समर्थ हो सकती थीं। यदि हम हिन्दू-हितको दृष्टिमें रक्खें तो हम महाराजा शिवाजी और स्वामी रामदासजीके उस विचारसे भी सहमत हैं कि सबसे पहिले एक स्वतंत्र-साम्राज्य दक्खिनमें स्थापित किया जाय और जब वह दृढ़ हो जाय तो हिन्दू-धर्मकी 'स्वतंत्रताकी लड़ाईको महाराष्ट्रके बाहर उत्तरमें नर्मदासे अटक और दक्षिणमें तुंगभद्रासे लेकर समुद्रतक

विस्तृत करें और ज्यों २ हम अपने राज्यको बढ़ाते जायं उनके अन्तर्गत हिन्दू-शक्तियोंको संगठित करते जायं और उसे बढ़ाते२ अन्तमें हिन्दू-साम्राज्य बना दें। वास्तवमें यह कार्यमें लाने योग्य, हिन्दुओंको मुक्त करने और हिन्दू-पाद-पादशाहीके स्थापित करनेका सर्वोत्तम मार्ग मालूम होता है। किन्तु यदि मरहठे इस उपायको काममें लाकर सफलता प्राप्त करना चाहते तो जो कुछ पीछे हम पढ़ आये हैं, उसपर यदि ध्यान दें तो प्रकट हो जायगा कि ऐसा करनेपर उन्हें कुछ और भी हिन्दू-राजाओंसे घोर शत्रुता करनी पड़ी होती। इनमेंसे कुछ लोग अपने गौरवको बिलकुल भूल गये थे और मुसलमानोंकी दासताकी बेड़ीमें रहनेहीमें अपनी प्रतिष्ठा समझते थे। उन्हें नव्वाबों, निजाम और दिल्लीके बादशाहकी अधीनतामें गुलाम और पराधीन रहनेमें कुछ भी चिन्ता नहीं थी; वरन् इसी बातमें वे अपना गौरव समझते थे। वे लोग मुसलमान-शासकोंकी सहायतामें रहकर मरहठोंसे पराजित होकर दंड पानेमें अपनेको धन्य मानते थे, किन्तु मरहठोंको, जो प्राणपणसे हिन्दु-जातिकी रक्षाके लिये लड़ रहे थे। बड़ी घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। मरहठोंके वे लोग उस समयतक शत्रु बने रहते थे जबतक उनके स्वामी मुसलमान-शासक मरहठोंसे हारकर उनकी अधीनता नहीं स्वीकार कर लेते थे। वे अपनी इच्छासे मरहठोंके अधीन होना कभी भी पसंद नहीं करते थे। कुछ ऐसे हिन्दू-राजा भी मरहठोंसे लड़े जो विदेशी शत्रुओंका नाम

भारतवर्षसे मिटा देनेके लिये उतने ही उत्सुक थे जितने कि मरहठे। ये लोग इस बातपर हठ कर रहे थे कि मरहठोंको क्या अधिकार है जो भारतवर्षकी स्वतंत्रताकी लड़ाईके मुख्य कार्य-कर्त्ता बनें और दूसरे राजे मरहठोंकी आधीनतामें क्यों कार्य कर? प्रत्येक व्यक्ति यही सोच रहा था कि प्रयत्न करके हमीं भारतवर्षके सम्राट् क्यों न बन बैठें? इनमें कुछ लोग ऐसे भी थे जिनके पूर्वजोंने हिन्दू-धर्मकी रक्षा भारतवर्षके बहुत बुरे दिनोंमें की थी। इस समय मुगल-राज्यकी अवनति देखकर अपनी योग्यतानुसार अपना २ राज्य फैलाना चाहते थे। इसलिये जब मरहठे अपने लिये एक राज्य स्थापित करना चाहते थे तो वे क्यों न करें? उनका यह सोचना उचितही था, किन्तु मरहठोंका विचार भी कोई अनुचित न था। प्रत्येक हिन्दूको ऐसा करनेका पूर्ण अधिकार था; किन्तु साथ-ही-साथ सबका यह कर्त्तव्य था कि मुसलमानोंको हराकर हिन्दू-साम्राज्य स्थापित कर लेते तो अपनी योग्यतानुसार उसे आपसमें विभाजित कर लेते। लेकिन जब उनके सामने एक बड़े साम्राज्यके रूपमें संगठित होनेका प्रश्न छिड़ा तो वे एक दूसरेकी योग्यता और नेकनीयतीके सम्बन्धमें आशंका करने लगे और आपसहीमें लड़े बिना न रुक सके। मरहठे सोचने लगे कि हमने मुसलमान, अंग्रेजों और पुर्तगीजोंसे लड़कर हिन्दू-धर्मकी रक्षा की है; इसलिये हम शक्तिशाली हैं और हममें यह योग्यता है कि हिन्दुओंके प्रमुख बनकर रहें। दूसरे लोग सोचने लगे कि यद्यपि मरहठोंने विदेशियोंको हराकर

हिन्दू-धर्मकी रक्षा की है, तथापि जो हिन्दुओंसे और विशेषतः हिन्दू-राजाओंसे चौथ वसूल करके उन्हें अपने अधिकारमें रखना चाहते हैं यह उनकी अनुचित और अनधिकार चेष्टा है। दोनों पक्षका ऐसा सोचना स्वाभाविक था। मरहठोंका ऐसा सोचना इसलिये उचित था कि वे इतनी अधिक सफलता प्राप्त कर चुके थे। इस-लिये अब उन्हें यह उचित जान पड़ता था कि हम अपनी ही शक्ति-पर निर्भर होकर एक शक्तिशाली, सुसंगठित महाराज्य स्थापित करें। चूंकि उसी साम्राज्यके द्वारा हिन्दू-धर्मका अस्तित्व और हिन्दुओंकी राजनैतिक और पारिवारिक स्वतंत्रता रह सकती है, इसलिये प्रत्येक हिन्दूका यह कर्तव्य है कि उस बड़े साम्राज्यके हितके लिये उसकी अधीनता स्वीकार करे और अपने व्यक्तिगत स्वार्थोंका परित्याग कर दे। उनका यह सोचना भी उचित ही जान पड़ता है कि जिस हिन्दू-पाद-पादशाहीकी स्थापना उन्होंने विदेशियोंसे लड़कर अपनी वीरता और बाहुबल द्वारा की है उसका प्रबन्ध दूसरेके हाथमें देना उचित नहीं है। सभी लोग इस बातको जानते थे कि हिन्दुओंमें मरहठे सबसे अधिक शक्तिशाली हैं और दूसरोंमें इतनी सामर्थ्य भी नहीं है कि विदेशियोंके आ-क्रमणोंको रोककर इतने बड़े राज्यका प्रबन्ध कर सकें। इसलिये मरहठोंके अधिकारके सम्बन्धमें उनका प्रश्न करना सर्वथा अनु-चित था। जब कि यह परमावश्यक हो गया कि हिन्दुओंमें जो सबसे शक्तिशाली हो वही हिन्दू-साम्राज्यका स्वामी बने तो ऐसी दशामें जो हिन्दू-राजा हिन्दू-हितको दृष्टिमें न रखकर, अपने

स्वार्थवश, मरहठोंसे शक्तिहीन होनेपर भी, हिन्दू-साम्राज्य-पति बनना चाहते थे उनसे मरहठोंकीलड़ाई अनिवार्य हो गई। प्रत्येक राष्ट्रीय संगठन और राजनैतिक एकताके आन्दोलनको सफल बनानेके लिये, देशभक्तिके उत्साहमें उन्मत्त होकर राष्ट्रीय हितके लिये, मनुष्य व्यक्तिगत हितकी ओर ध्यान न देकर ऐसे भी कामोंको करनेके लिये विवश हो जाता है जो उसकी इच्छाके बिल्कुल विरुद्ध हैं।

यदि हम महाराष्ट्रकी परिस्थितिकी ओर ध्यान दें तो हमें यही दशा अनुभव होती है। वहां भी कुछ सरदार और राजकुमार ऐसे वर्तमान थे जो कि दासताकी बेड़ीको काटनेके लिये उत्सुक थे और कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्हें दासताकी दशामें पड़े रहनेमें ही आनन्द आता था। जब महाराज शिवाजीने महाराष्ट्रके संगठनका कार्य प्रारम्भ किया तब ये दोनों ही प्रकारके लोग उनके और उनके साथियोंके विरोधमें उठ खड़े हुए; क्योंकि इन्हें शिवाजीकी नीयतके सम्बन्धमें विश्वास नहीं था। बादको ये लोग यह कहने लगे कि राष्ट्रीय संगठन और हिन्दू-एकताके बहाने भोंसला स्वयं बड़ा बनना चाहता है। वे लोग बहुधा यह प्रश्न किया करते थे कि यदि शिवाजीकी वास्तवमें यही इच्छा थी कि एक हिन्दू-राज्य स्थापित हो तो उन्होंने स्वयं किसी दूसरे राजाको महाराजा स्वीकार करके उसकी अधीनतामें क्यों नहीं काम किया। यदि भोंसलाका भी यह उद्देश्य है तो वह हमारे अधीन क्यों नहीं हो जाता, हमींको क्यों अपने अधीन करना चाहता है।

नीच और दासवृत्तिमें रहनेवाले लोगोंने मरहठोंकी गर्वभरी ललकारका सामना करनेके लिये मुसलमानोंको आमन्त्रित करने या उनकी सेनामें मिल जानेमें तनिक भी लज्जा न की। लेकिन वे लोग, जो इनके समान नीच नहीं थे, बल्कि यह सोचा करते थे कि शिवाजीका इस आन्दोलनका प्रमुख होनेका गर्व करना अनुचित और अन्यायपूर्ण है उन्हें स्वयं उनसे लड़नेमें कोई आपत्ति नहीं सूझी। इन्हीं कारणोंसे महाराज शिवाजीको अपने भाइयोंके विरोधमें अस्त्र उठाना पड़ा। इतिहास शिवाजीको उनके इस कार्यके लिये दोषी नहीं ठहराता और इस कार्यके कारण उसे यह भी साहस नहीं होता कि वह महाराज शिवाजीको हिन्दूधर्मके रक्षक, मरहठा-राज्यका संस्थापक और हिन्दुओंका सुधारक तथा शिरोमणि न कहे। जातीय हितके लिये यह परमावश्यक था कि छोटे २ राजे मिलकर एक बड़े राष्ट्रका निर्माण करते। जिन लोगोंकी यह इच्छा थी कि भारतवर्षके हम प्रमुख बनें, उन्हें यह उचित था कि शिवाजीके विप्लवकारी बननेके प्रथम ही वे लोग मुसलमानोंके विरोधमें उठ खड़े होते, और जिन कामोंको शिवाजीने कर डाला उनको वे लोग पहले ही सम्पादित कर हिन्दू-राज्यकी स्थापना करनेमें शिवाजीसे अधिक अपनेको योग्य प्रमाणित कर देते। ऐसा होनेसे हिन्दू-इतिहास भी शिवाजी और उनके साथियोंकी भांति उन्हें हिन्दू-आन्दोलनका प्रमुख मान लेता। चूंकि अन्य मरहठे-सरदार इस कार्यको न कर सके, अतएव उनके लिये उचित था कि शिवाजीको इस कार्यकी पूर्तिका अवसर देते और इस

आन्दोलनका उन्हें उत्तरदायी बनाकर अपने प्रमुख बननेकी लालसाको भी उन्हींके लिये परित्याग कर देते तथा उन्हें सारे महाराष्ट्रका राजा बना देते।

जिन अनिवार्य कारणोंके उपस्थित होनेसे महाराज शिवाजीको अपने मरहठे-भाइयोंके विरोधमें अस्त्र उठाना पड़ा, जिनके कारण महाराज रणजीतसिंहने कई एक सिक्ख-सरदारोंको दंड देकर अपनी अधीनता स्वीकार कराई उन्हीं कारणोंके उपस्थित होनेपर महाराष्ट्र-मण्डलको भी हठी हिन्दुओंको अपने अधीन करनेमें अस्त्र उठाना पड़ा और जैसे महाराज शिवाजी तथा रण-जीतसिंह अपने किसी कार्यके लिये दोषी नहीं ठहराये जाते, वैसे ही महाराष्ट्र-मण्डल भी इसके लिये दोषी नहीं ठहराया जा सकता। मरहठोंके विरोधियोंमें भी केवल एकही दो ऐसे हैं जोकि मरहठोंसे विरोध करनेके लिये दोषी ठहराये जायं, उनमेंसे बहुतेरे ऐसे थे जो हिन्दू-हितको ध्यानमें रखकर एक स्वतन्त्र-राज्य स्थापित करनेके लिये प्रयत्न कर रहे थे। उनका मरहठोंके प्रति शस्त्र उठाना कोई अनुचित न था। वे स्वयं हिन्दू-हितको दृष्टिमें रखकर एक स्वतन्त्र हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करनेका प्रयत्न कर रहे थे और अपनेको स्वतन्त्र समझते थे। किन्तु हिन्दू-जाति, हिन्दू-सभ्यता तथा हिन्दू-धर्मकी रक्षाके लिये एक विशाल हिन्दू-साम्राज्यकी आवश्यकता थी, चाहे यह राज्य किसी प्रणालीका हो, भारतके किसी प्रांत या किसी जातिद्वारा इसका शासन हो। यदि इस कार्यकी पूर्तिके लिये मरहठे अग्रसर हुए

और उन्हें अपने धर्मावलम्बियोंके प्रति शस्त्र उठाना ही पड़ा तो इसके लिये वे दोषी नहीं ठहराये जा सकते। उन्होंने अपने बाहुबलद्वारा एक शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित किया, इसलिये वे इसके अधिकारी थे कि अन्य हिन्दू-सम्प्रदाय अपनी २ इच्छाओंको छोड़कर उन्हें अपना प्रभु समझें। यदि वे ऐसा करनेके लिये उद्यत नहीं थे तो उनपर विजय प्राप्त कर अपनी अधीनता स्वीकार करानेका मरहठोंको सर्वथा अधिकार था।

तीसरा अध्याय

प्राचीन और वर्तमान इतिहासपर दृष्टिपात

हमारे पूर्वज भारतवर्षमें चक्रवर्ती राज्यका होना परमावश्यक और पवित्र कार्य समझते थे ; कारण यह था कि जो राजा चक्रवर्ती होना चाहता था उसे इस देशके सभी राजाओंसे अपनी अधीनता स्वीकार करानी पड़ती थी। ऐसा हो जानेपर सारे हिन्दुस्तानके शासनकी बागडोर एक प्रभावशाली राज्यके हाथमें आ जाया करती थी। चक्रवर्ती राज्यकी प्रणालीमें कुछ त्रुटियां तो अवश्य थीं, किन्तु इससे लाभ विशेष थे। देशमें जितने धार्मिक पुरुष रहते थे, वे सदैव चक्रवर्ती राजाहीके पक्षपाती होकर रहा करते थे। देशमें धार्मिक और राजनैतिक शिक्षा, इस शासन-प्रणालीद्वारा भलीभांति हुआ करती थी। देशके शासनकी बागडोर लेनेके लिये केवल वे ही लोग अग्रसर हुआ करते थे, जिनमें राजनैतिक निपुणता और संगठन करनेकी दक्षता रहती थी। यदि कोई पुरुष, जिसके द्वारा देश और धर्मके अहित होनेकी सम्भावना रहती थी, राजकुलमें जन्म लेनेके कारण इस पदके लिये प्रयत्न करता था तो देशके धार्मिक और योग्य पुरुष उसका साथ सदा छोड़ दिया करते थे और केवल योग्य व्यक्ति हीको सम्राट् के पदपर सुशोभित करनेके पक्षपाती

रहा करते थे। यही कारण था कि हिन्दू-राजनैतिक शक्तिका केन्द्र हस्तिनापुर, पाटलिपुत्र, उज्जैन, प्रतिष्ठाथान और कन्नौज इत्यादि भिन्न २ स्थानों और प्रान्तोंमें बदलता रहा। जिस राज्य या प्रान्तके निवासियोंने अपने संगठनद्वारा दूसरे राज्योंको परास्त कर दिया, लोग उनकी वीरता और संगठनसे सन्तुष्ट होकर उनके नायकको अपना चक्रवर्ती महाराजा स्वीकार कर लिया करते और अपनी पिछली सारी शत्रुताओंको भूल जाया करते थे, क्योंकि लोगोंको यह दृढ़ विश्वास हो जाया करता था कि इसी सम्राट्के द्वारा भारतदेश और हिन्दूधर्मकी रक्षा हो सकती है। किसी प्रकारकी आपत्ति आ जानेपर हिन्दुओंकी धार्मिक सेनायें इन्हीं हिन्दू-शूरवीरोंके झंडेके नीचे एक होकर धर्म और देशपर बलिदान होनेको उद्यत हो जाया करती थीं।

इस बातको लोग कभी भी ध्यानमें नहीं लाते थे कि एक बार इसने हमें भी परास्त किया है; इसलिये इसका विरोध करना चाहिये, प्रत्युत लोग उसका स्वागत करते थे। उन्हें यह ज्ञान था कि उसने चक्रवर्ती बननेके लिये जो हमें परास्त किया है इससे हमारी और उसकी शक्तिकी परीक्षा हो गयी और यह सिद्ध हो गया कि वह देश और धर्मकी रक्षाके लिये हमसे अधिक उपयोगी व्यक्ति है और उसके द्वारा भारतवासियोंका अधिक कल्याण होगा।

हर्षने उत्तरी भारतमें और पुलकेशिनने दक्षिणी भारतमें जबतक अपने प्रतिद्वंदी हिन्दू-राजाओंको अपने अधीन न किया, किसी

भी प्रकार अपने साम्राज्यकी उत्तम व्यवस्था न कर सके। इनके प्रतिद्वंदी राजाओंमें बहुतसे ऐसे थे जो इनके जाति या कुलके थे। इनके परिवार या जातिवालोंने भी, जो अपनी स्वतंत्रताके लिये लड़े, कोई निन्दित कर्म नहीं किया। इनका आदर्श उच्च नहीं था, किन्तु ये शूरवीर तो अवश्य थे। यही कारण है कि उन्होंने पर-तंत्रताके सामने शिर झुकाना बुरा समझा।

हर्ष और पुलकेशिनने दो शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित करके जो राष्ट्रीय सेवायें अपने देशके प्रति की हैं उनके लिये प्रत्येक हिन्दूको उनके प्रति सदैव कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिये। इन दो राज्योंकी स्थापनाने हिन्दुओंके राजनैतिक विचारोंको दृढ़ और उनके जीवनको कर्मवीर बना दिया। युद्धमें प्रस्तुत हुए हर्ष और पुलकेशिनके युद्धमें कौशलकी तुलना इस प्रकार निष्पक्ष भावसे करनी चाहिये जैसे पिता अपने पुत्रोंकी, अथवा गुरु अपने शिष्योंकी तुलना इस दृष्टिसे करता है कि समय आ पड़ने-पर कौन अपने प्रतिद्वंदीपर विजय पा सकता है।

हिन्दुओंके भीतर जो इस प्रकारके विचार कि हम सब एक-हीके वंशज हैं, हमारी एकही पवित्र मातृभाषा है, हम एकही धर्म और सभ्यताके हैं, अब भी वर्त्तमान हैं, इसका एक मात्र कारण पुराने समयमें चक्रवर्ती राज्योंका होना है; जिन चक्रवर्ती राज्योंकी राजधानी भारतके भिन्न२ प्रान्तोंमें समयानुसार बदलती रही। ये राजधानियां अयोध्या, दिल्ली, हस्तिनापुर, पाटलिपुत्र, कश्मीर, कन्नौज, कांची, मदुरा और कल्यान आदि स्थानोंमें

गई। जिस समय एक प्रान्तसे राजधानी हटकर दूसरे प्रान्तमें जाती थी उस प्रान्तके बड़े और योग्य शूरवीर, विद्वान और सेनापति इत्यादि भी बहुधा वहीं चले जाते थे। इसलिये अपने प्रांतकी रीति, सभ्यता और सद्गुण इत्यादि भी साथ लेते जाते थे और इस प्रकार मिलते-जुलते सारे भारतवर्षकी सभ्यता इत्यादि एक हो गयी और लोग एक दूसरेको भ्रातृभाव-से देखने लगे। चूंकि इन पुराने चक्रवर्ती राज्योंके द्वारा हिन्दुओं-के भीतर संगठन रहता था, इसीलिये हिन्दू-हितकी दृष्टिसे हमें इनकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। जिन लोगोंने वीरता दिखाई और जय पाई और जो पराजित होकर मिट गये, हम उन दोनोंको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। हर्ष और पुलकेशिन भारतके इतिहासके दो सर्वप्रिय नाम हैं और हमें मगध, आन्ध्र, आन्ध्रभृत्य, राष्ट्रकूट, भोज और पांड्य इत्यादि राज्योंके ऊपर गर्व है। इनमेंसे प्रत्येक अपना राज्य चक्रवर्ती बनानेके लिये हिन्दुओंसे ही लड़े और इन लड़ाइयोंमें सहस्रों हिन्दुओंकी जान गई, फिर भी हम इन राज्योंको किसी प्रकारका दोषी नहीं ठहराते। हम इस स्थान-पर इस बातके ऊपर विचारनेके लिये नहीं रुक सकते कि इन्हें अपने राज्यको विस्तीर्ण करके चक्रवर्ती बनानेके लिये कोई दूसरे उपयुक्त साधन थे अथवा नहीं, यदि थे तो लड़ाई न करके उन्हीं-को क्यों प्रयोगमें नहीं लाये? हमें यह भी मालूम है कि इनमेंसे बहुतसे साम्राज्य हमारे ही प्रान्तोंको कष्ट पहुंचाकर बड़े हुए, फिर भी इनके द्वारा जो सारी हिन्दू-जातिको लाभ पहुंचा, उसे

दृष्टिमें रखकर हम किसी प्रकार इन्हें दोषी नहीं ठहराते। मरहठे भी,इस बातको ध्यानमें रखकर कि हमसे भारतवर्षके हिन्दू-मात्रका हित हो एक चक्रवर्ती राज्य स्थापित करना चाहते थे; इसलिये उनकी भी अन्य हिन्दुओं और अन्य प्रान्तवालोंके साथ कहीं-कहीं मुठभेड़ हो गई। इसके लिये उन्हें दोषी प्रमाणित करना भूल है। इसलिये प्रत्येक हिन्दूका कर्त्तव्य है कि जातीय और प्रान्तिक भेद-भावको छोड़कर उनकी उतनी ही प्रतिष्ठा और मान करें जितना पूर्वकालके हिन्दू अपने चक्रवर्ती राजाओंका किया करते थे।

नहीं नहीं, मरहठोंकी हमें अधिक प्रतिष्ठा करनी चाहिये, इसलिये कि जिन आवश्यकताओंके कारण मरहठा-आन्दोलन आरम्भ हुआ वे पहिले आन्दोलनोंकी आवश्यकताओंसे अधिक महत्वपूर्ण थीं और मरहठोंके आदर्श और ध्येय भी हर्ष और पुलकेशिनकी अपेक्षा उत्तम थे, इसलिये उनके युद्ध और विजयका महत्व भी उतना ही उत्तम था। मरहठे केवल वीरता दिखलाने या अपने सुख और भोगोंके प्रलोभनमें पड़कर लड़नेके लिये उद्यत नहीं हुए थे, चक्रवर्ती बनकर प्रतिष्ठाके पात्र बननेके लिये भी वे लालायित नहीं थे; वरन् उनके ऐसा करनेका मुख्य कारण यह था कि हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जातिका अस्तित्व मिटनेसे बचे। महाकवि भूषणने जो वर्णन किया है कि "काशीजीकी कला जाती, मथुरा मसीद होती,शिवाजी न होते तो सुनत होति सबकी"—अत्युक्तिपूर्ण नहीं है। तत्कालमें हुई घटनाओंका उतना

महत्व नहीं होता जितना महत्व उनके कुछ समय बीत जानेपर होता है। भूतकालमें किये गये शुभ कार्योंको लोग विशेष महत्व देते हैं और उन्हें श्रद्धा-भक्तिसे देखते हैं। यह बात महाराष्ट्रके इतिहासके लिये भी चरितार्थ है। मरहठे-शूरवीरोंने देश और धर्मकी जो सेवायें कीं, वे विक्रमादित्य अथवा चन्द्रगुप्तके समयके शूरवीरोंद्वारा सम्पादित कार्यों से किसी तरह कम महत्ता नहीं रखतीं। इतिहास पढ़नेसे ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त-का शासन-काल महत्वपूर्ण और ऐश्वर्ययुक्त था; किन्तु हमें इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि उस समय हिन्दूधर्मपर वे आपदायें नहीं आती थीं जो कि मरहठाकालके समय आ रही थीं। यदि कोई आईं भी तो उन्हें दबानेके लिये चन्द्रगुप्तके पास पूर्ण साधन थे। विदेशी इतिहास सिकन्दर बादशाहके आक्रमण-को बहुत बड़ा बतलाते हैं। किन्तु वास्तवमें देखा जाय तो उसके आक्रमणका प्रभाव केवल पंजाबपर पड़ा और वह उसीको विजय कर सका। हिन्दूशक्तिका केन्द्र उस समय पाटलिपुत्र था, जहांपर उसका प्रभाव कुछ भी नहीं पड़ा। चन्द्रगुप्तकी शक्ति और चाणक्यकी नीतिने नन्दको राजसिंहासन त्यागनेके लिये विवश कर दिया; कारण कि नन्दमें म्लेच्छोंको देशसे निकालने-की शक्ति न थी। चन्द्रगुप्तने स्वयं 'महाराजा'की पदवी धारण कर यूनानवालोंको भारतभूमिसे निकाल दिया। चन्द्रगुप्तके समय-से मरहठोंके समयकी तुलना इसीलिये नहीं हो सकती कि चन्द्र-गुप्तके पास शत्रुओंका सामना करनेके सब साधन वर्त्तमान

थे और हिन्दुओंके ऊपर विदेशियोंका इतना आतङ्क नहीं छाया था और उनके भीतरसे सारी शक्ति और आशायें बिदा नहीं हो चुकी थीं। मरहठोंके समयमें बार बार हारसे अपमानित होनेके कारण हिन्दुओंने सोच लिया था कि मुगल हमलोगोंके ऊपर शासन करनेहीके लिये पैदा हुए हैं, और उन्हें ईश्वरकी ओरसे भारतका शासन करनेका अधिकार मिला है। हिन्दुओंकी तलवारें टूट गई थीं और उनकी ढालें फट गई थीं। फिर भी मरहठे उठे और मुगलोंका सामना करके एक ऐसी लड़ाईमें विजय प्राप्त की जैसी लड़ाईका सामना इसके पूर्व हिन्दुओंको कभी नहीं करना पड़ा था। हूण और शक, यद्यपि भारतवर्षके भीतरी भागमें घुस आये थे, किन्तु वे मुगलोंसा बड़ा राज्य स्थापित न कर सके थे। इसलिये वे सारे भारतवर्षको अधीन करनेमें असमर्थ रहे। हिन्दूधर्मपर जैसा आक्रमण हठधर्मी मुसलमान और पुर्तगीजोंका मरहठोंके समयमें हुआ वैसा आक्रमण हिन्दू-राष्ट्रीय-गौरव और जातीय-जीवनपर तोरामन और रुद्रदमनके शासनकालमें भी नहीं हुआ। जिन शूरवीरोंने अपनी वीरता, स्वार्थत्याग और उत्साहद्वारा अपनी मातृभूमि और अपने धर्मको हूण और शकोंके शासनसे मुक्त किया वे अवश्य प्रशंसाके पात्र हैं और हम हिन्दूमात्र उन योद्धाओं और नीतिज्ञोंके ऋणी हैं। वे हमारे गलोंको विदेशियोंके पंजेसे छुड़ाकर ही शान्त न रहे, वरन् उन्होंने एक शक्तिशाली हिन्दू-साम्राज्य स्थापित किया, जिसे मगध या मालवा कहते हैं।

चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य या शालिवाहनकी अध्यक्षतामें जो साम्राज्य स्थापित हुए, वे यद्यपि हमारे प्रान्तोंको विजय करके और हमारे पूर्वजोंके रक्तपातसे स्थापित किये गये तथापि हममें-से प्रत्येकका कर्त्तव्य है कि जो उपकार उन लोगोंने हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्मके प्रति किये हैं उनके लिये हम उनके नामोंको श्रद्धापूर्वक स्मरण करें और उनके कृत्योंके लिये सदैव कृतज्ञ बने रहें; क्योंकि यह चन्द्रगुप्त, पुष्पमित्र, समुद्रगुप्त या यशोधर्मका पौरुष था कि विदेशी हूण और शकोंके शासनसे भारतवर्षको मुक्ति मिली। महाराज शिवाजी बाजीराव, भाऊ, रामदास, नाना, और जनकोजी इत्यादि शूरवीरोंने उचित साधन न रहनेपर भी ऐसे शूरवीरताके, कार्य किये, जिनके उदाहरण भारतवर्षके पुराने कालके इतिहासमें भी बहुत ही कम पाये जाते हैं। इन लोगोंने ऐसे समयमें, जबकि विक्रमादित्य या चन्द्रगुप्तके समयसे अधिक आपत्तिके बादल हिन्दू-धर्मपर मंडला रहे थे, एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया। क्या प्रत्येक हिन्दू इनके इन कार्योंका स्मरण कर और जो महा-साम्राज्य इन लोगोंने स्थापित किया उसके जातीय गौरव और अभिमानपर ध्यान देकर, उन महापुरुषोंके प्रति श्रद्धासे पूर्ण होकर अपना सिर न झुकायेगा और अपने उस राज्यको प्रेम-दृष्टिसे न देखेगा? इस वैज्ञानिक युगमें प्रचार आदिके अनेकों साधन रहते हुए भी महाशय गेरीबाल्डी और मैज़िनो ऐसे नेता अबतक केवल धार्मिक आन्दोलनका सहारा लेनेके कारण

इटलीके सङ्गठनमें असमर्थ रहे। यद्यपि इन्होंने प्रान्तिक भावोंको दूर हटाकर लोगोंमें राष्ट्रीय भाव पैदा करनेके लिये प्राणपणसे चेष्टा की तथापि उनके कुछ विरोधी खड़े हो ही गये।

नेपोलिटन और रोमन लोग इस रहस्यको नहीं समझते थे कि वे अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताको इटलीके संयुक्तराज्यके हितके लिये क्यों खो दें। जब पाइडमाण्टका राजा और गेरीबाल्डी, क्रोस्पी, कैबूर और दूसरे पाइडमाण्टके नेता एक प्रांतके पश्चात् दूसरे प्रान्तको विजय करके पाइडमाण्ट राज्यमें मिला रहे थे, उस समय उन प्रान्तोंके नेता इन विजयी शूरवीरोंके कार्यों और मनोरथोंके जाननेके लिये नाना प्रकारके प्रश्न करते थ और उन्हें आपत्तिजनक बतलाते थे। वे आस्ट्रिया या फ्रांसके शासनद्वारा बहुत ही दब गये थे। उन्हें विदेशियोंकी परतंत्रता-रूपी बेड़ीकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं था। जिस प्रकार दास अपने मालिककी नीच-से-नीच आज्ञाओंके पालन करनेका अभ्यासी बन जाता है और अपने बराबरकी श्रेणीके लोगोंकी आज्ञाओंके पालन करने या उन्हें अपना बड़ा समझनेमें अपना बड़ा ही अपमान समझता है उसी प्रकार रोमनिवासी पाइडमाण्टके आदेशोंके अनुसार चलनेमें अपना बड़ा ही अपमान समझते थे। इसलिये इटलीवासियोंमें आपसमें एकता स्थापित करनेके लिये गेरीबाल्डी, विजयी इमेनुएल और दूसरे सेनापतियोंको विदेशियोंसे ही नहीं, किन्तु इटलीके लोगोंसे भी लड़ना पड़ा। इतिहास उन्हें इस कार्यके लिये दोषी नहीं ठहराता। वर्त्त-

मान कालके इटलीवासी, जिनमें नेपोलिटन और रोमनोंके भी वंशज सम्मिलित हैं, इन सुधारकोंके नाम श्रवण कर, उनके किये गये उपकारोंका स्मरण कर, भक्ति और श्रद्धासे अपनी टोपियां उतार लेते हैं और भांति-भांतिसे उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। पाइडमाण्टका राजा हो पश्चात्में सर्वसम्मतिसे इटलीका बादशाह स्वीकार कर लिया गया। इसी प्रकार यदि उचित परिस्थिति और समय आ गया होता तो मरहठोंका राजा भी हिन्दुस्तानका सम्राट् स्वीकार कर लिया जाता और इस योग्य पदके लिये उसमें गुण भी वर्त्तमान थे। शत्रु और मित्र सब लोगोंने यह सुना कि विश्वासरावको भाऊने हिन्दुस्तानका राजाधिराज घोषित कर दिया। जर्मनराज्य, उनकी स्वतंत्रता और उनकी एकताका इतिहास मरहठाकालके भारतके राजनैतिक विकाशके इतिहाससे समानता रखते हैं, जिसमें हिन्दू राजे एक होकर मरहठोंके राजाको अपना सम्राट् मानकर काम कर रहे थे। जिस प्रकार पाइडमाण्टका इटलीराज्य, तथा प्रशियाका साम्राज्य राष्ट्रीयताके भावोंसे परिपूर्ण थे, उसी प्रकार महाराष्ट्रके हिन्दूसाम्राज्यमें भी राष्ट्रीयता और हिन्दूहितका उद्देश्य कूट २ कर भरा था; जिसके लिये प्रत्येक हिन्दूका यह धर्म है कि जो लोग इस साम्राज्यकी स्थापनाके लिये लड़कर मर गये, उनका स्मरण आनेपर उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करें।

——

चौथा अध्याय
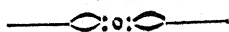
मरहठोंका युद्धकौशल

हम पहले ही लिख आये हैं कि शिवाजीके जन्मने भारतके वर्तमान इतिहासमें जो एक नवीन युग प्रारम्भ कर दिया वह बड़ा ही महत्वशाली और गौरवपूर्ण सिद्ध हुआ। इसकी महानताका मुख्य कारण यह था कि स्वामी रामदासजी और महाराज शिवाजीने धार्मिक और राष्ट्रीय सिद्धान्तोंको बड़ी योग्यताके साथ जनताके सामने रक्खा और युद्धविद्यामें नया कौशल दिखाया। वास्तवमें जिस प्रकार मरहठोंका लड़ाईका ढंग युद्धविद्याकी उन्नतिमें एक विशेष नवीन कौशल हुआ, उसी प्रकार महाराष्ट्रधर्म मृतप्राय होते हुये भी हिन्दूधर्ममें नवीन जीवनका संचार करनेवाला हुआ। जो लड़ाईका ढंग शिवाजाने निकाला वह उस समयके लिये परमावश्यक और महाराज शिवाजीके लिये परमोपयोगी सिद्ध हुआ; और शिवाजीके वंशज भी लड़ाईके उन्हीं ढंगोंको, जिन्हें शिवाजी मुट्ठीभर आदमियोंको लेकर प्रयोगमें लाया करते और बड़ी-बड़ी सेनाओंको परास्त किया करते थे, शत्रुओंकी महान् सत्ताके सामने प्रयोग करके निश्चय ही विजयी हुए। युद्धकी इस कलाको मरहठे सेनापतियोंने, जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं, प्रयोग किया और पूर्ण सफलता पाई। इनके इन प्रयोगोंसे शत्रु किसी प्रकार भी न बच

सके। मरहठोंकी सेनायें शत्रुओंकी बड़ी-बड़ी सेनाओंको देख-कर पहाड़ोंमें तितर-बितर हो जाया करती थीं और पासके पहाड़ों और जंगलोंमें लुक-छिपकर देखा करती थीं। इसको देख-कर शत्रु यह समझ लिया करते थे कि मरहठे डर गये और सामना करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं अतः आगे बढ़ते चले जाते थे। अंतमें वे ऐसी जगह जाकर फंस जाते थे कि जहांसे उनका निकलना असम्भव हो जाता था और कभी-कभी ऐसी जगहपर पहुंच जाते थे कि जहांपर मरहठे उनका रहना अपने लिये अत्यन्त लाभदायक समझते थे। ऐसी दशा उपस्थित हो जानेपर मर-हठे उनपर अकस्मात् एकत्रित होकर बिजलीकी भाँति टूटकर उनका सत्यानास कर देते और शत्रुओंको दमतक लेनेका मौका भी नहीं देते थे।

जब कभी मरहठोंने डटकर लड़ना चाहा, वे ऐसी बहादुरी और वीरतासे लड़े कि शत्रुओंके दिलमें आतंक जमा दिया और मुसलमान किसी प्रकार भी उनका सामना न कर सके। इसका उदाहरण हमीर रावकी लड़ाई और बदायूँ घाटकी लड़ाई तथा और भी कई लड़ाइयोंसे मिलता है। इन लड़ाइयोंसे यह भी प्रकट होता है कि मरहठे जब लड़ना चाहते थे तब तो लड़ते ही थे, किन्तु जब जब वे शत्रुओंके विवश करनेपर भी लड़े तब तब उनके छक्के छुड़ा दिये। लड़ाईकी व्यूहरचना और प्राण-बलिदान कर देनेके लिये उद्यत होनेका कार्य मरहठे स्वामी राम-दासजीके ही आदेशानुसार किया करते थे। स्वामीजीका सिद्धान्त यह था कि:—

"शक्तिसे राज्य मिलता है यदि युक्तिसे कार्य किया जाय।" धार्मिक युद्धको वे पूजते थे, बिना युद्धके स्वतंत्रता और राज्य नहीं प्राप्त हो सकता। स्वार्थत्याग, बलिदान इत्यादि मरहठोंमें मुख्य-मुख्य गुण थे जिनसे ये भारतवर्षके स्वामी बने, लेकिन उन्होंने शक्तिसे अधिक बुद्धिमानी दिखलाई जिसके बिना शक्ति पाशविक समझी जाती है। आत्मसमर्पणकी प्रतिष्ठा तभी होती थी जब कि उसके द्वारा सफलता मिलनी ध्रुव हो जाती थी। जिस बलिदानसे कोई सफलता नहीं प्राप्त होती थी उसे मरहठे आत्मघात कहा करते थे और मरहठा-युद्धकलामें उसके लिये स्थान नहीं है। प्रातःस्मरणीय स्वामी रामदासजी घूम-घूमकर प्रचार करते थे कि शक्ति और बुद्धि दोनोंके काममें लानेसे मनुष्य सफलता प्राप्त कर सकता है।

वे सदैव ऐसे उपाय सोचा करते थे जिनसे अंतमें अपनी अपेक्षा शत्रुओंकी अधिक हानि हो। इन बातोंपर ध्यान रखते हुए मरहठे कभी जमकर लड़ाइयाँ नहीं लड़ते थे। मरहठे शत्रुओंके इधर-उधर घूमा करते और शत्रुओंके सरदारोंको जहाँ अकेला पाते मार डालते और उनकी छोटी टोली देखकर धावा कर देते थे। यदि मरहठोंका पीछा किया जाता तो वे भाग निकलते थे। जब पीछा करनेवाला उनका पीछा छोड़ लौटना चाहता था, तब एक ही क्षणमें मरहठे उसपर वज्रकी भांति टूटकर उसका सत्यानास कर देते थे। इस कौशलको उन्होंने इतना उपयोगी बनाया कि जब वे अपनी सेनायें लेकर निकलते थे

तब शत्रुओंकी बड़ी २ सेनाओंको घेरकर तहसनहस कर देते थे। हुलकर और पटवर्द्धन अंग्रेजों और मरहठोंकी पहिली लड़ाईमें उपरोक्त नीतिका ही अवलम्बन करके सफलीभूत हुए थे मरहठे अपने नेता महाराज शिवाजीके उपायको महादाजी और नानाफड़नवीसके समयतक कार्यमें लाते रहे।

उनकी लड़ाईका दूसरा नियम यह था कि वे लड़ाई आरम्भ होनेके पहिले ही शत्रुओंकी फौजोंपर आक्रमण कर दिया करते थे, जिससे शत्रुओंको सिवाय अपनी रक्षा करनेके लड़नेका अवसर हो नहीं मिलता था। इस प्रकार वे अपने राज्यको सुरक्षित रखते और शत्रुओंके राज्यको उजाड़ देते थे। ये लोग लड़ाइयोंसे बचकर इधर-उधर घूमा करते और शत्रुओंकी रसदें मौका पाकर लूटा करते, विपक्षियोंकी प्रजाओंमें भयका संचार करते तथा अन्तमें शत्रुओंके सैनिकोंमें निराशा फैलाकर उन्हें निरुत्साह कर देते थे। इसका फल यह होता था कि राज्यमें अविश्वासका साम्राज्य फैल जाता, राज्यका सारा प्रबन्ध बिगड़ जाता, लूटपाटके कारण भोजनका भो अभाव हो जाता और देशमें घोर दुष्काल पड़ जाया करता था। एक तरफ ऐसा कठिन अवसर और दूसरी तरफ वे लड़ाईके खर्चेके लिये चन्दा लगाते और अनेक प्रकारके कर बढ़ाकर वसूल करते थे। इस प्रकार शत्रुओंको अपनी ही सेनाकी रक्षा और भोजनका प्रबन्ध नहीं करना पड़ता था, बल्कि मरहठोंके लिये भी। न तो शत्रु उनसे बचकर ही रह सकते थे, न उनका सामना ही कर-

के रह सकते थे। वे निराश होकर चिल्लाया करते थे कि "मरहठोंसे लड़ना हवासे लड़ना या पानीका पीटना है।" इस नीतिको राघोजी भोंसला बंगालमें काममें लाये थे। हम पिछले अध्यायमें लिख आये हैं कि हर साल बंगालपर आक्रमणपर आक्रमण करके मुसलमान-नवाबको भोंसलाने इतना तंग कर दिया कि अन्तमें उसने परेशान होकर उड़ीसा मरहठोंको दे दिया और हिन्दू-पाद्-पाद्शाहीकी अधीनता स्वीकार कर ली। महाराज शिवाजीने जो ऊपर लिखी हुई नीतिका अवलम्बन किया, वह उस समयके लिये उचित था; क्योंकि उस समय उनकी आर्थिक दशा ऐसी नहीं थी कि वे वेतनभोगी सेनायें रखते, किन्तु इस आक्रमणको देखकर जो लोग यह कहा करते हैं कि पेशवाओंके समयमें मरहठे सिवाय लूटपाटके और कुछ नहीं करते थ; क्योंकि वे अपने राज्यकोषसे वेतनभोगी सेना रखनेमें असमर्थ थे, अनुचित करते हैं। भूल या अनुचित इसलिये कहा जा सकता है कि युद्धकी इस प्रणालीको उस समय सब राष्ट्र काममें लाते थे। मुख्यतः मुसलमान-बादशाहोंके समयमें पुर्तगीज, अंग्रेज और दूसरे राष्ट्र, चाहे वे एशियाके हों या यूरपके, इस बातको सब उचित समझते थे कि जिन मुल्कोंको वे विजय करें उनपर लड़ाईका चन्दा लगायें। दूसरा कारण यह भी था कि मरहठे, जिन्हें कई शत्रुओंसे एक ही साथ लड़ना पड़ता था जिनमें अधिकतर विदेशी और अन्यायी थे, सबके मुकाबिलेके लिये बड़ी सेना अपने धनसे किसी भी प्रकार

नहीं रख सकते थे; वे एक ही साथ एक ओर पूना और दूसरी ओर पंजाब तथा आराकाटतक लड़ रहे थे। वे अपनी इस लड़ाईकी प्रणालीको भी नहीं बदल सकते थे; क्योंकि वे इसके द्वारा शत्रुओंकी युद्धनीतिको छिन्न-भिन्न कर देते थे, जिससे शत्रु कभी-न-कभी मरहठोंके आगे झुकनेके लिये बाध्य हो जाया करते थे। मरहठोंकी इसी लड़ाईकी प्रणालीको लोग भ्रमवश लूट या डाकाके नामसे प्रख्यात करते हैं। मरहठे अगर इस अपराधके अपराधी ठहराये जाते हैं तो इस सिद्धान्तके अनुसार सभी राष्ट्रोंको अपराधी मानना पड़ेगा, क्योंकि इसी नीतिको अंग्रेज लोग बोअरों तथा जर्मनोंकी लड़ाईमें,जिसे वे युद्धके सिद्धान्तके अन्दर होनेका बहाना करते हैं, काममें लाये थे। और इसी नीतिका अनुसरण लार्ड डलहौजीने अन्य राज्योंको अंग्रेजी राज्यमें मिलानेमें किया और सन् १८५७ ई० में नीलकी लड़ाईमें भी यही नीति काममें लाई गई। इसलिये वही बात हिन्दू-जातिकी स्वतंत्रता प्राप्त करनेके सम्बन्धमें भी लागू हो सकती है और मुख्यतः उस समयमें जब कि औरंगजेब, टीपू और गुलाम-कादिर ऐसे व्यक्तियोंका सामना करना था। लड़ाईमें विजय पानेके लिये हरएक उपाय उचित ही था। इस कथनकी पुष्टि करनेके लिये कि धार्मिक लड़ाईमें सब कुछ उचित है और दूसरी तरह तरहकी बातें कहकर हम व्यर्थ समय खोना उचित नहीं समझते और शिवाजीके उस उत्तरको लिख देना उचित समझते हैं जिसे उन्होंने अपने शत्रुओंके पास लिख भेजा

था। शिवाजीने लिखा था,—"महाराज, आपने मुझे विवश कर दिया है कि मैं अपने धर्मोपदेश और प्रजाकी रक्षाके लिये सेना रक्खूं। अब इस सेनाका व्यय उसकी प्रजासे अवश्य लिया जायगा।" अंग्रेज लेखकोंने भी शिवाजीके सम्बन्धमें यह लिखा है कि शिवाजी जहाँ-कहीं जाते थे जनताको विश्वास दिलाते थे कि जो मेरी आज्ञाओंका पालन करेंगे उन्हें मैं या मेरे सिपाही किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुंचायेंगे और इस बातपर वे अटल रहे। हम यह भी कह सकते हैं कि उसी तरहकी प्रतिज्ञा मरहठे-सेनापतियोंने निजामके साथ की और अपनी इस प्रतिज्ञाको उन्होंने उसके साथकी अंतिम लड़ाईतक पालन किया, जोकि सन् १७९५ ई० में कुरदालामें हुई थी और जिसमें मरहठे विजयी हुए। यह सच है कि ऐसे हमलोंमें शत्रुकी हिन्दू-प्रजा की भी हानि हुई, किन्तु हमें आवश्यकता नहीं है कि इन निर्दय लड़ाइयोंका वर्णन करें। ऐसी दशामें हमारे लिये असम्भव है कि मरहठोंको किसी प्रकारका अपराधी ठहरा सकें। और ऐसे अवसरपर हमें इसपर विशेष ध्यान देनेकी भी आवश्यकता नहीं है। जैसे मुसलमान और दूसरे शत्रुओंको मरहठोंका हर्जाना देना पड़ा, उसी प्रकार हिन्दुओंको भी देना पड़ा। वास्तवमें जिन्हें दिलसे मरहठोंका साथ देना चाहिये था वे उदासीन होकर ही नहीं रहे, बल्कि मरहठोंके शत्रु बन गये और राष्ट्रीय लड़ाईमें उनका साथ नहीं दिया। इसीलिये उन्हें भी लड़ाईका हर्जाना देना पड़ा। यह लड़ाईका टैक्स था जोकि साधारणतः

सब हिन्दुओंसे हिन्दू-साम्राज्यकी उस सेनाके व्ययके लिये एकत्र किया जाता था, जिसकी वीरताके कारण हिन्दू-धर्म, हिन्दू-मन्दिर, हिन्दू-जाति और हिन्दू-सभ्यता शेष रह गई, नहीं तो सारे हिन्दू मुसलमान बना लिये गये होते और हिन्दुओंका नाम भी शेष रहता या नहीं, यह अनुमान करना असम्भव है । कहीं २ पर मरहठे सिपाहियोंने कुछ-कुछ अनुचित कार्य भी किया है; किन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि वे अपराध उनकी अपेक्षा कुछ भी नहीं हैं जिन्हें मुसलमान, पुर्तगीज और दूसरे राष्ट्रोंने, जिनसे मरहठोंको लड़ना पड़ा, किये और जो क्षमा योग्य समझे गये, और कभी कभी उचित भी माने गये। विधर्मी लोगोंने मौलवियों-को, जो हिन्दुओंको बलात् मुसलमान बनाते थे, कभी भी मना नहीं किया और न रोका। यद्यपि मरहठे भी ऐसा कर सकते थे किन्तु उन्होंने गिरजाघरों और मसजिदोंको जलाकर खाक नहीं किया। यद्यपि वे इस बातको भलीभांति जानते थे कि हमारे देवमंदिर अल्लाहकी शक्ति दिखलानेके लिये गिराये गये हैं, तथापि उन्होंने उसके बदले राम और कृष्णकी शक्ति दिखलानेके लिये मसजिदों और गिरजाघरोंको सत्यानास करना पाप समझा। जहांतक उनके धार्मिक अत्याचारोंका सम्बन्ध है उनका कट्टरसे कट्टर शत्रु भी उन्हें कतलका दोषी नहीं ठहरा सकता। न तो उन्होंने स्त्रियोंके सतीत्व ही भ्रष्ट किये और न हठधर्मी बनकर लोगोंको दुःख ही दिये और न शत्रुओंके धार्मिक ग्रन्थोंहीको जलाया। हाँ, उन्होंने लड़ाईका खर्च शत्रुओंके मुल्कोंसे अवश्य ही वसूल किय

जब शत्रुओंको आते देखा मवेशियोंके खाने और चारेका नाश कर दिया और मुल्कोंको उजाड़ दिया। यद्यपि यह समयके अनुसार युद्धविद्याके लिये आवश्यक था, किन्तु लोग इसीको लूटके नामसे पुकारने लगे। उनके शत्रुओंका भी उनके विषयमें यही कथन है। यह उनके लिये ऐसा आवश्यक शस्त्र था कि वे इस शस्त्रको अपने प्रति भी काममें लानेके लिये उद्यत रहते थे, यदि विदेशियोंद्वारा उनके मुल्कपर आक्रमण होता। औरङ्गजेबका हम्ला महाराज राजारामके समयमें और दो बार अङ्गरेजोंका प्रयत्न पूना ले लेनेका इसी नीतिके कारण बुरी तरह असफल हुआ। मरहठोंने अपने मुल्क छोड़ देने तथा सत्यानास कर देनेमें जरा भी आगापीछा नहीं सोचा; बल्कि यहांतक ठान लिया था कि यदि अंग्रेज पूनातक आ गये तो इसे भी जला देंगे। इसलिये यह भलीभांति स्पष्ट हो गया कि भारतके भिन्न २ हिन्दुओंके हितकी बातका भी ध्यान मरहठोंको था। वे शत्रुओंके राज्यपर इसलिये आक्रमण कभी नहीं करते थे कि उस राज्यके हिन्दुओंको किसी प्रकार कष्ट पहुंचावें। यह भी बात तभीतक रहती थी कि जबतक मरहठोंकी मांग पूरी नहीं होती थी। ज्योंही कोई प्रान्त ठीक प्रकारसे हिन्दू-साम्राज्यमें मिला लिया जाता था, मरहठे आक्रमण करना बन्द कर देते थे। जिस स्थानके लोगोंने मरहठोंको मुसलमान या अंग्रेजोंके बन्धनसे अपनेको मुक्त करनेके लिये बुलाया या जहांके निवासी मरहठोंके साथ विदेशियोंके विरोधमें खड़े हुए, मरहठोंने उनका पूरा साथ दिया तथा उनके साथ सदैव बड़े प्रेमका बर्ताव करते रहे।

कहीं-कहींपर मरहठोंकी अतिके लिये अवश्य क्षमा मांगनी होगी; किन्तु ऐसी घटनायें गेरीबाल्डीके रोमसे लौटनेपर, फ्रांसके राष्ट्रीय विप्लव-आन्दोलनमें, आयरलैंडके सिनफिन युद्ध, अमेरिकाकी लड़ाई और जर्मनीके स्वतन्त्रताके युद्धमें अनेकों पाई जाती हैं। जिस प्रकार उपरोक्त घटनाओंके कारण यूरोपीय देशोंका राष्ट्रीय गौरव कुछ भी कम नहीं हुआ, उसी प्रकार मरहठोंने भी कहीं २ पर जो अनुचित व्यवहार किये हैं, उनके कारण महाराष्ट्रका गौरव कम समझना भूल है। कारण, कुछ तो ऊपर बतला ही दिया गया है और विशेष यह है कि जो अत्याचार विदेशियोंने हिन्दुओं तथा मरहठोंपर किये हैं, उनके सामने मरहठोंद्वारा किये गये अत्याचार कुछ भी नहीं हैं। जिस आन्दोलनने शताब्दियोंसे दासताकी धूलमें पड़े हुए हिन्दुओंकी ध्वजाको उठाकर खड़ा किया; राजाओं, महाराजाओं, नव्वाबों और बादशाहोंका प्रबल सामना करके अटकमें उसे गाड़ा और शत्रुओंको विवश किया कि उसके सामने घुटना टेकें और उसकी प्रतिष्ठा करें, उस आन्दोलन और उस हिन्दू-साम्राज्यके प्रति प्रत्येक हिन्दू-देशभक्त कृतज्ञता प्रकट करता रहेगा।

पांचवां अध्याय

हिन्दू-आन्दोलन।

शास्त्रोंद्वारा देशकी रक्षा होती है, इसलिये शास्त्रोंको
ठीक रखना उचित है।

इस हिन्दू-आन्दोलनने, जो कि मरहठोंकी जागृतिके कारण उठ खड़ा हुआ, पहलेपहल हिन्दुओंमें राजनैतिक और सैनिक जीवन डाला और एक विशाल राष्ट्रीय राज्य स्थापित किया, जो हिन्दुओंको जीवनके भिन्न २ विभागोंमें सदैव उन्नतिकी ओर ले जानेके लिये आवश्यक साधन होगा। थोड़े समय पश्चात् ज्योंही राजनैतिक स्वतन्त्रताका निर्णय हो गया, यह अपने प्रभावको प्रकट किये बिना न रह सका। महाराष्ट्रका हिन्दू-राज्य कई महत्वपूर्ण कार्यों और सुधारोंको, जो इस आन्दोलनके कारण हिन्दुओंमें प्रचलित हुए, अपने हाथोंमें लेकर उनको उन्नतिशील दशामें लाया। शत्रुओंमें जो गुण थे उन्हें अपनाकर, विदेशियोंके आतङ्कके पंजेसे हिन्दू-जीवनको स्वतन्त्र और मुक्त करनेके लिये मरहठोंने बड़ा ही प्रयत्न और परिश्रम किया। हिन्दुओंकी भाषाके ऊपर अरबी और फारसीका इतना अधिकार हो गया था कि वह मृत्युशय्यापर पड़ गई थी। राज्यके सारे कार्य फारसी भाषामें किये जाते थे। उन्होंने पहले अपनी भाषाको शुद्ध करनेका प्रयत्न किया। यदि उन्होंने ऐसा न किया

होता तो उसका अन्त हो जाता और उसके स्थानपर अर्बी या उर्दू का प्रचार हो गया होता जैसा कि पंजाब और सिन्धमें हो गया है। राष्ट्रीय साम्राज्यने राष्ट्रीय भाषाको पुनर्जीवित किया। एक विद्वान पंडित नियुक्त किया गया, जिसने राज्यव्यवहार-कोष बनाया, जिसमें प्रत्येक प्रचलित आवश्यकीय शब्दके लिये शब्द ढूंढ़कर एकत्र किये गये। और भी दूसरे साधन राष्ट्रभाषाकी उन्नतिके लिये कार्यमें लाये गये। इस सुधारका मरहठी भाषापर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। राजनैतिक पत्रोंके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि विदेशी भाषाके बायकाट (Boycott)के लिये पूर्ण परिश्रम किया गया। साहित्य,इतिहास, राजनीति, कविता इत्यादि सब धीरे २ सुधरने लगे और अन्तमें हम मोरेपन्तका बनाया हुआ महाभारत देखते हैं, जिसमें एक दर्जन भी विदेशी शब्द नहीं पाये जाते। बखार भी कोई मध्यम श्रेणीका ग्रन्थ नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि मरहठे-लेखक ऐसे लेख और पुस्तकें मरहठी-भाषामें लिखने लगे, जिनकी भाषा उत्तम और प्रभावशाली होती थी और लोगोंके भीतर नवीन जीवनका संचार कर दिया करती थी। उस समयके राजनैतिक कार्योंने भारतके इतिहासमें, और शूरवीरोंके गुणोंकी कथाने भाषामें जीवन डाल दिया। एक आजका समय आ गया है कि हमलोग बिना वीरताके कार्य किये ही वीर-रसका इतिहास लिखने बैठ जाते हैं, यद्यपि हमें उनका ठीक अनुभव करनेका अवसर प्राप्त नहीं हुआ।

केवल मराठी ही नहीं, वरन् हिन्दुओंकी पवित्र भाषा संस्कृत भी मरहठोंके शासनकालमें बड़ी उन्नत दशाको प्राप्त हुई। वेद, शास्त्र, पुराण, ज्योतिष, वैद्यकशास्त्र, और कवितामें भी नवीन जीवन आ गया। हिन्दुओंकी लगभग बीस राजधानियां भारतके भिन्न २ भागोंमें शिक्षाके केन्द्र बन गईं और हिन्दू-विद्वानों और विद्यार्थियोंकी रक्षाके लिये विद्यालयों और महाविद्यालयोंकी स्थापना कर उनको सुचारु रूपसे चलाने लगीं। धार्मिक शिक्षाकी ओर पूर्ण ध्यान दिया जाता था। साधु-सन्त स्वेच्छा-पूर्वक मरहठोंद्वारा सुरक्षित रहकर हरिद्वारसे रामेश्वर और द्वारिकासे जगन्नाथतक स्त्री-पुरुषोंको धार्मिक शिक्षा देते हुए भ्रमण करते थे। उनके पालन और सहायताके लिये और उनकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये राजे, वाइसराय, गवर्नर और सैनिक बराबर ध्यान देते थे। स्वामी रामदासजीके स्थापित किये गये मठोंके अनुसार देशमें बहुतसे मठ स्थापित हो गये, जिनकी रक्षाका भार राज्यके सिरपर था और उन मठोंके द्वारा राजनैतिक और धार्मिक शिक्षाओंका प्रचार होता था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक वर्ष श्रावणमें भारतवर्षके सम्पूर्ण विद्वान पूनामें एकत्र हुआ करते थे और पेशवाकी संरक्षकतामें उनकी विद्याओंकी परीक्षा हुआ करती थी। लोगोंको पद, पुरस्कार दिये जाते थे और योग्य विद्यार्थियोंके लिये छात्रवृत्ति भी दी जाती थी। हिन्दूधर्मकी शिक्षाके लिये हर वर्ष एक करोड़ रुपयेसे कम नहीं व्यय किया जाता था। इस प्रकार विद्वानोंके

एकत्र हो जानेसे यह लाभ होता था कि लोगोंके भिन्न २ विचार और धार्मिक सिद्धांत एक दूसरेमें परिवर्तित हो जाया करते थे और पश्चात् सर्वसाधारणमें फैल जाते थे। लोग यह अनुभव करने लग जाते थे कि यद्यपि हमारे भीतर धार्मिक और जातीय विभिन्नतायें हैं, किन्तु फिर भी हम सब हिन्दू हैं और एक राष्ट्रीय-ध्वजाके नीचे एकत्र हुए हैं, जिसने शत्रुओंका सत्यानास कर दिया है और जो हमारे देश, धर्म और सभ्यताकी हर प्रकारसे रक्षा कर रही है।

सर्वसाधारणके हितके कामोंपर भी पेशवा और उसके अधिकारी-वर्ग उचित ध्यान देते थे। यदि द्रव्य अटकसे बहकर पूनामें आया तो वह कृपणताके साथ जमा नहीं किया जाता था और न मनमाने भोग विलासोंमें ही व्यय किया जाता था। वरन् अन्तमें उपयोगी नहरोंद्वारा बहकर भारतके तीर्थ और क्षेत्रोंमें जाता था। भारतवर्षमें कोई भी पवित्र नदी नहीं है, जिसपर घाट न बने हों और जहांपर एक बड़ी धर्मशाला न हो, या जहांपर सुन्दर मन्दिर न बने हों और प्रत्येक मन्दिरके लिये वृत्ति न दान की गई हो। लोगोंको अच्छे कार्यांके लिये पुरस्कार देना महाराष्ट्रके हिन्दूराज्यके दानके गौरवका प्रत्यक्ष साक्षी और प्रमाण है। यद्यपि मरहठे रातदिन शत्रुओंका सामना करनेके लिये लड़ रहे थे तथापि ग्वालियरतकका देश जो मरहठोंके शासनके भीतर था, शान्तिका जीवन व्यतीत कर रहा था। राज्यकर भी साधारण था और शासन न्याययुक्त हो रहा था। मरहठोंके

राज्यमें सड़क, डाक-विभाग, जेल, हास्पिटल और इंजिनियरिंग विभागका प्रबन्ध उस समयके अन्य राज्योंके प्रबन्धसे उत्तम था। इन बातोंकी सत्यताके लिये बहुतसे प्रमाण वर्तमान हैं। यद्यपि कभी २ अशान्ति हो जाया करती थी, फिर भी लोग स्वतंत्रताके सुखका अनुभव कर रहे थे और अपने राज्यको केवल प्रेम और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखतेभर ही नहीं थे, वरन् उसके लिये उन्हें अभिमान भी था और उस समयमें उन्हें पैदा करनेके लिये परमात्माको धन्यवाद देते थे। इन बातोंकी सचाई हम उस समयके पत्रव्यवहारों, कविताओं, वीररसकी कथाओं और साहित्योंके द्वारा अच्छी प्रकार देख सकते हैं।

और भी बड़े २ आन्दोलनोंकी कमी न थी। बहुतसी रीतियां या झूठे विश्वास, जिनके कारण राष्ट्रीय उन्नतिमें बाधा पड़ती थी, वे या तो साधारण बना दी गईं या उनका एकदम त्याग कर दिया गया। नये ढंगकी पूजा, भिन्न २ वर्णोंका आपसमें विवाह और सामुद्रिक यात्राका प्रबन्ध किया गया। जो लोग विदेशोंको जानेके कारण जातिच्युत किये गये थे या जिनको पुर्तगीजों या मुसलमानोंने बलपूर्वक या धोखा देकर अपने धर्ममें मिलाया था, फिरसे हिन्दूधर्ममें लाये गये। अन्तिम आन्दोलन अर्थात् शुद्धिका प्रश्न हमारे पूर्वजोंने मरहठा-कालहीमें आरम्भ किया था। पुर्तगीजोंके रिकार्ड (Record) से ज्ञात होता है कि ब्राह्मण संगठित होकर, जिन्हें पुर्तगीज बलपूर्वक ईसाईधर्ममें मिला लेते थे, फिरसे छिपे २ शुद्ध करके अपने हिन्दूधर्ममें ले लिया करते थे। उन्हें

एक बार इस छिपी हुई शुद्धिकी प्रथाका समाचार पुर्तगीज़ोंको मिला। उन्होंने जाकर जहां शुद्धि हो रही थी उस स्थानको घेर लिया और बन्दूकोंके डरसे लोगोंको भगाना चाहा, लेकिन एक साधुनेअपने इस कार्यसे एक इंच भी हटनेसे अस्वीकार किया और मार डाला गया। नीमवालकर नामी सरदारको बीजापुरके नवाबने जबरदस्ती मुसलमान बना लिया और अपनी लड़कीका उसके साथ व्याह कर दिया। लेकिन अन्तमें वह भागकर मरहठोंके पास आया और ब्राह्मणोंके आज्ञानुसार शिवाजीकी माता जीजाबाईकी संरक्षकता और इच्छासे उसे शुद्ध कर हिन्दू-धर्ममें लाया गया और कट्टर सनातनधर्मी रहनेके भावोंको मिटा देनेके लिये उसके बड़े लड़केका विवाह महाराज शिवाजीकी पुत्रीसे हो गया। दूसरी बड़ी मशहूर शुद्धि नेताजी पारकरकी हुई। बहादुर मरहठा-सेनापति, जो दूसरा शिवाजी कहलाता था, मुसलमानोंके हाथमें फंस गया और औरङ्गजेब बादशाहने आज्ञा दी कि इसे मुसलमान बनाकर सीमान्त प्रदेशकी असभ्य जातियोंमें रहनेके लिये भेजा जाय। ऐसा ही हुआ, परन्तु किसी प्रकारसे बहादुर सेनापति भागकर महाराष्ट्र पहुंचा और लोगोंसे प्रार्थना की कि मुझे हिन्दू-धर्ममें स्थान दो। पण्डितोंने उसकी दशाको महाराज शिवाजीपर प्रकट किया और उन्होंने उसे हिन्दूधर्ममें ले लेनेकी आज्ञा दे दी। पेशवा भी इस कार्यको नाना फड़नवीसके समयतक करते आये। पेशवोंकी डायरियोंको देखनेसे प्रकट हो जाता है कि ऐसी बहुतसी घटनायें हुई हैं कि

लोग मुसलमानोंद्वारा निर्दयतापूर्वक मुसलमान बनाये गये, किन्तु प्रायश्चित्त करनेपर उन लोगोंको पुनः हिन्दूधर्ममें शरण दी गई और उनके सजातीय लोग उनके साथ पहिलेकी भांति सामाजिक सम्बन्ध रखने लगे। इसके उदाहरण पुताजी हैं। पुताजी एक सिपाही थे और सूरतके जिलेमें सेनामें काम करते थे। किसी प्रकार वे मुसलमानोंके हाथमें फंस गये और मुसलमान बना लिये गये। लेकिन जब बालाजी बाजीराव दिल्लीसे लौटकर आ रहे थे वह भागकर किसी प्रकार मरहठा-सेनासे मिल गया। उसके सब सजातीय लोगोंने एकत्र होकर उसे अपनी जातिमें ले लेनेका विचार प्रगट किया और पेशवाकी आज्ञा लेकर उसे अपनी जातिमें मिला लिया। तुलाजी भटने, जो मुसलमान हो गया था, ब्राह्मण-मंडलीके सामने खड़े होकर अपने कियेपर पश्चात्ताप किया। अपने अपराधको स्वीकार कर उसके क्षमाकी प्रार्थना की। उसे भी हिन्दूधर्ममें स्थान दिया गया और राजाज्ञा निकली कि चूंकि ब्राह्मणमण्डलीने भटजीको स्वीकार कर लिया है इसलिये उसे सजातीय सब सुविधायें दी जांय। महाराज सम्भाजीके अशान्त शासन-कालमें भी इस प्रकारके उदाहरण पाये जाते हैं। उसके शासनकालमें गङ्गाधर कुलकरनीकी शुद्धि हुई, जो जबरदस्ती मुसलमान बनाया गया था। उसके सम्बन्धमें क्षत्रपति सम्भाजीने यह घोषणा कर दी थी कि गङ्गाधर हिन्दू-धर्ममें सम्मिलित किया जा रहा है। जो मनुष्य उसके साथ खानपानका भेदभाव रक्खेगा वह देवधर्मके सिद्धान्तोंकी अवहेलना करनेका

अपराधी समझा जायगा और वह स्वयं पापी समझा जायगा।

यह स्वाभाविक बात थी कि जिन लोगोंने राजनैतिक बुराइयोंको दूर करनेका कार्य अपने हाथमें लिया था वे उसके साथ-साथ धार्मिक और सामाजिक बन्धनोंको भी ठीक करें, जोकि राजनैतिक बुराइयोंसे अधिक हानिकारक थे। जिस आन्दोलनने राजनैतिक और सैनिक क्षेत्रोंमें इतनी अधिक सफलता प्राप्त की उसने हमारे धार्मिक, सामाजिक पवित्रता और सभ्यता-सम्बन्धी कार्योंको भी,जो शताब्दियोंसे बिगड़ते चले आये थे, ठीक रास्तेपर लानेमें कुछ उठा नहीं रक्खा। मुसलमान लोगोंने केवल एक सौ वर्षके भीतर सारे दक्खिनमें अपने धर्मको और राज्यको फैलाया, लाखों मनुष्योंको मुसलमान बनाया,परन्तु खेदका विषय है कि हिन्दूजाति, हिन्दू-साम्राज्य रहनेपर भी दो-चार सौ भी मुसलमानोंको हिन्दूधर्ममें नहीं ला सकी; किन्तु यदि उन्होंने ऐसा करना चाहा होता और इनके यहां यदि इसकी प्रथा प्रचलित रहती तो वे अवश्य सफलीभूत हुए होते। इसका मुख्य कारण यह है कि मनुष्योंकी दासताकी राजनैतिक बेड़ी कभी कभी शीघ्र तोड़ी जा सकती है, किन्तु अन्धविश्वासको मनुष्योंके भीतरसे हटाना एक बड़ा ही कठिन कार्य है। इसके साथ-ही-साथ इस बातपर भी ध्यान रखना चाहिये कि मरहठोंकी सारी शक्ति पहले हिन्दुओंकी राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करनेमें और हिन्दू-साम्राज्य स्थापित करनेहीमें लग गई, इसलिये उन्होंने यदि सामाजिक

सुधारोंकी ओर, जो परमावश्यक थे, यदि विशेष उन्नति नहीं की तो हमें इसके ऊपर कोई आश्चर्य्य करनेकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु आश्चर्यजनक बात तो यह है कि उन्होंने झूठे-झूठे विश्वासोंको,जो हिन्दुओंके मस्तिष्कोंमें भरे हुए थे,हटाकर उनकी जगहपर शुद्धिकी प्रथाको उनके भीतर स्थान दिलाथा, जिसकी स्थापना करनी उस समय कठिन ही नहीं वरन् असम्भव थी।

छठवां अध्याय

हम कृतज्ञताके ऋणी हैं।

महाशोकका विषय है कि अकस्मात् हमारे इस अन्तिम हिन्दू-साम्राज्य और हमारे पुराने इतिहासके ऊपर परदा गिरता है।

जिस बुरे दिनमें सिन्ध नदीके किनारे हमारे शूरवीर सिन्ध-राज दाहिरकी पराजय हुई, उसी दिन हमारे भाग्यकी भी पराजय हो गई। काबुलके महाराज त्रिलोचनपाल, पंजाबके राजा जैपाल और अनंगपाल, दिल्लीके महाराज पृथ्वीराज और कन्नौ-जके जयचंद, चित्तौरके महाराना सांगा, बंगालके महाराजा लक्ष्मण-सेन, रामदेव और हरपाल देवगिरिके राजा, विजयनगरके सारे राजे और रानियां—राजसिंहासन और मुकुट—एक-एक करके सब मिट्टीमें मिल गये। हठधर्मी और अजेय मुसलमान हमारी प्राण निकलती हुई हिन्दू-जातिकी छातीको अपने घुटनेसे दबाये हुए थे; चित्तौर ही नहीं, किन्तु सारे भारतवर्षकी हिन्दू-राज-धानियां राखकी ढेर बन गई। कभी-कभी उन्हीं राखोंके बीचसे प्राण बलिदान करनेके लिये चिनगारियां उठ-उठकर बुझ जाया करती थीं। बादशाही तख्तताऊसपर औरंगजेब बादशाह निश्चिन्त बैठा हुआ था और लाखों शूरवीर उसके क्रोध प्रकट करनेपर मृत्युके मुंहमें जानेके लिये उद्यत रहते थे।

ठीक उसी समय मरहठोंका एक नवयुवकदल पहाड़की गुफामें एकत्र हुआ और उसने शपथ खाई कि अपने धर्म और ध्वजाके ऊपर किये गये अपमानका बदला शत्रुओंसे अवश्य लेंगे। यदि हारकर देशकी बलिवेदीपर बलिदान भी हो जायेंगे तो हमलोगोंका स्मरण करके आनेवाली संतानें देशको मुक्त करनेका प्रयत्न करेंगी और सदैव दासताकी बेड़ीमें न पड़ी रहेंगी। जिस समय इन नवयुवकोंका झुंड पहाड़से बाहर आया, दुनियाने कहा कि यह व्यर्थका प्रयत्न है; बुद्धिमानोंने कहा कि यह आत्महत्या करना है और औरंगजेबने कहा कि ये प्राण देनेके लिये उद्यत हैं।

बीस वर्ष बीत गये। अब उसका चेहरा मलिन और उसकी आवाज़ धीमी पड़ गई। वह मरहठोंके नवयुवकोंका झुंड जातिका हृदय बन गया। औरंगजेब बादशाहने फिर प्रण किया कि जबतक काफ़िरोंका झुंड पहाड़हीमें है, उसके ही बीच मैं उनका सत्यानास कर दूंगा। सहस्रों चमचमाती हुई तलवारोंके साथ, क्रोधसे भरे हुए औरंगजेब बादशाह ने शिवाजीके छोटे राज्यपर आक्रमण कर ही दिया और इसपर मरहठे बागी हो गये। अब शक्तिशाली मुसलमानका दांत खटखटाने लगा। वह न तो उनको दबा ही सकता था और न बढ़ने देना चाहता था। जितना ही वह दबानेका प्रयत्न करता जाता था, मरहठे उतना ही उभड़ते जाते थे। मरहठोंकी वह छोटी राजधानी औरंगजेबकी राजधानीका सत्यानास करके तब सत्यानास हुई। लेकिन उसी

स्थानपर हिन्दुओंका एक शक्तिशाली साम्राज्य स्था हो गया।

अब मरहठोंके नवयुवकोंका झुंड अपनी गेरुआ ध्वजा लि बाहर निकला और हिन्दू-धर्मकी स्वतंत्रताकी लड़ाईको सा भारतवर्षमें फैला दिया। मरहठे गुजरात, खानदेश, मालवा और बुन्देलखंडमें घुस पड़े और उन्होंने चम्बल, गोदावरी,कृष्णा, तुंग-भद्रा नदियोंको पार किया। उन्होंने जिनगी, नागपुर, उड़ीसाको अधीन किया और धीरे २ बढ़कर एक२ पत्थर जोड़कर जमुनासे तुंगभद्रातक और द्वारिकासे जगन्नाथतक तमाम देशको मुसल-मानोंके शासनसे मुक्त कर मरहठा-राज्यमें मिला लिया। वे जमुना, गंगा और गंडक आदि नदियोंको पारकर पटना पहुंचे, जो महाराज चन्द्रगुप्तकी राजधानी थी और कलकत्तामें कालीजीकी और का-शीमें विश्वनाथजीकी पूजा की। उन दस,बारह नवयुवकोंकी सन्तान अब छिपे हुए स्थानमें शपथ करनेकी जगह, लाखोंकी संख्यामें अपने झंडेको फहराती हुई और बाजा बजाती हुई मुसलमानी बा-दशाहतकी राजधानीकी ओर चल पड़ीं और उसके फाटकपर प-हुंच गईं। उन्हें देखकर मौलवी और मौलाने आश्चर्यमें पड़ गये। अभी वे यही सोच रहे थे कि हम अपनी तलवारद्वारा लोगोंको कुरानका भक्त बना लेंगे। अब वे देखते हैं कि पुराणोंके मानने-वाले हिन्दू, भिन्न २ सम्प्रदाय और जातिमें विभक्त मूर्ति-पूजक और बिना दाढ़ीके होते हुए भी, असीम सेनाके साथ दिल्लीकी ओर बढ़ते आते हैं और आकर अपना गेरुआ झंडा मुसलमानोंकी

राजधानीमें गाड़ देते हैं । इस बार जेबरील हिन्दुओंके सम्मुख लड़नेको न आया। अब यह कोई नहीं कह सकता कि मुसलमान-धर्म सच्चा है, इसलिये उसकी विजय होती रही और हिन्दू-मंदिर गिरा दिये गये और इसलिये उनका धर्म झूठा है । मुसलमानोंका यह दावा, जिसपर वे हिन्दुओंको मुसलमान बनाते थे, अब झूठा प्रमाणित हुआ। अब मंदिरोंकी चोटियां मसजिदोंसे ऊपर उठी दिखाई देने लगीं; चांदकी रोशनी फीकी पड़ गई और उनका झंडा सदैवके लिये उखड़ गया और हिन्दूराज्यका सुनहला झंडा पहाड़की चोटीपर फहराने लगा। दिल्लीपर फिर पृथ्वीराजके वंशज अर्थात् भाऊका शासन हो गया और हस्तिनापुर फिर एक बार हिन्दुओंके हाथमें आ गया। औरंगजेबने शिवाजीको चूहा कहा था, लेकिन उसी चूहेने शेरकी दाढ़ी उसकी मांदमें पकड़ी और उसके पंजे और दांतोंको उखाड़ लिया। गायोंने गो-बधिकोंको मार डाला और जैसा गुरु गोविन्दजीका कथन है कि लवेने बाजोंको टुकड़े २ कर दिया।

वे शूरवीर कुरुक्षेत्रमें स्नान कर अपने विजयी झंडेको लाहौर ले गये। अफ़गानोंने उन्हें रोकना चाहा, पर अटकके पार भगा दिये गये। वहांपर मरहठा-सेना रुक गई, क्योंकि सैनिकगण पूनामें एकत्र होकर काबुल पार हिन्दूकुशके ऊपर आक्रमण करनेका विचार कर रहे थे। फारस, इंगलैंड, पुर्तगाल, फ्रांस, हालैंड और आस्ट्रियाके राजदूत पूनामें पहुंचे और उन्होंने प्रार्थना की कि हमलोग अपने राष्ट्रोंकी ओरसे महाराष्ट्रके शाही दरबारमें राजदूत

बनकर रहना चाहते हैं। बंगालके नवाब, मैसूरके सुल्तान, हैदराबादके निजाम और रुहेलखंड और आरकाट इत्यादिके छोटे-बड़े सरदार अब कर, "चौथ" और "सरदेशमुखी"—मरहठोंको देने लगे। निजाम अब नाममात्रके निजाम रह गये और जो कुछ मालगुजारी अपने राज्यमें एकत्र करते थे, वह किसी न किसी प्रकार मरहठा-राजकोषमें आ ही जाया करती थी। मरहठोंके शत्रु भारतवर्षके यवन ही नहीं थे, वरन् हम देखते हैं कि, ईरानी, काबुली, तुर्क, मुगल, रुहेले और पठान, पोर्तगीज, फ्रेंच, इंगलिश और अबेसीनियन लोग सभी एक-एक करके मरहठोंसे स्थल और जलपर लड़े; किन्तु हिन्दू-सेनाने देश और धर्मके नाम-पर लड़कर उन्हें पराजित कर दिया। रंगाना, विशालगिर, चाकन, राजापुर, बेंनगुली, बारसीनूर, पुरंधर, सिंहाद, साल्हेर, ओम्बरानी, सबनूर, संगमनेर, फोंड़ा, वाई, फाल्टन, जिनजी, सितारा, दिनधोरी, पालखेत, पेटलाद, चिपलन, विजयगाद, श्रीगांव, तिराल, जैतपुर, दिल्ली, दुराई, सेराई, भूपाल, आरकाट, त्रिचनापली, कादिरगंज, फरुखाबाद, उद्गिर, कुंजपुर, पानीपत, राक्षसभवन, उनावली, मोतीताल, धारवाद, सुखराताल, नसीबगाद, बदायूं, भोरघाट, बादामी, आगरा, खुर्दा इत्यादि स्थानोंमें मरहठोंकी ऐसी भारी विजय हुई कि यदि ऐसी विजय हमारे पुराने इतिहासकी हुई होती या किसी दूसरे देशके राष्ट्रकी हुई होती तो वहांपर उन्हें स्मरण करनेके लिये विजय-स्तम्भ खड़ा किया गया होता। हरिभक्तोंकी शिवाजीके जन्मसे नाना फड़नवीसके समयतक, कहीं

पराजय नहीं हुई। ज्योंही वे उन्नति करते गये, छोटी २ जागीरें देते गये, जितने बड़े कि दूसरे देशोंमें बहुतसे राज्य हैं। सितारा, नागपुर, कोल्हापुर, तंजोर, संगोली, मिराज, गुन्ती, बड़ौदा, धार, इन्दौर, झांसी, ग्वालियर, और भी बहुतसे स्थान सूबोंकी राजधानियां थीं, जो कि इतने बड़े २ हैं जितने बड़े यूरपमें बहुतसे राज्य हैं। उन्होंने हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, मथुरा, डाकोर, आबू और अवान्ती, परशुराम और प्रभास, नासिक, त्र्यम्बक द्वारिका, जगन्नाथ, मालिकार्जुन, मथुरा गोकुल, गोकर्ण इत्यादि स्थानोंको विदेशियोंके पंजेसे मुक्त किया। काशी, प्रयाग और रामेश्वरका फिरसे गौरव स्थापित हो गया और परमात्मा-को धन्यवाद है कि एक हिन्दू-राज्य स्थापित हो गया जो कि पुराने समयके मऊखरि, चालूक्य, मालवा, पांड्य, चोल, केराल, राष्ट्रकूट, अन्ध्र, केसारी, भोज, मालवा, हर्ष और पुलकेशिनके राज्य, राथोदा और चयवनके राज्यके बराबर हैं। इनके गवर्नर और सेनापति इतने बड़े देशपर शासन करते थे कि पुराने समयमें उतने बड़े राज्यपर शासन करनेवाला अश्वमेध यज्ञ करता था। पहले और दूसरे चन्द्रगुप्तके राज्योंको छोड़कर कोई हिन्दूराज्य इतना विशाल और विस्तृत नहीं हुआ, न इतनी गौरव प्राप्त कर सका। जातीय सेवाओंमें इतने कठिनाइयोंका सामना करते रहनेपर भी कोई भी राज्य मरहठा राज्यकी तुलना नहीं कर सकता।

हमारे इतिहासोंमें जो मनुष्य सब राजाओंको परास्त कर देता था, वह चक्रवर्त्ती कहलाता था और जो विदेशियोंसे देश

और धर्मकी रक्षा करता था उसे विक्रमादित्य कहा करते थे। पहले विक्रमादित्यने सीदियन लोगोंको देशसे निकाला, दूसरेने शक लोगोंको और तीसरेने जिन्हें यशोधर्मा कहते हैं, हूण लोगों-को हटाकर उनके राजाको मार डाला। यदि हम मरहठोंके इति-हासकी ओर ध्यान दें तो स्पष्ट विदित हो जाता है कि उनके कार्य ऐसे थे कि उनको प्रमुख चक्रवर्त्ती और विक्रमादित्य दोनों पदोंसे विभूषित किया जाय और प्रत्येक हिन्दूका धर्म है कि हम उनके प्रति वही भाव रक्खें जो पुराने भारतवासी अपने चक्रवर्ती और विक्रमादित्य राजाओंके प्रति रखा करते थे। मरहठोंने दाहिर, अनंगपाल, जैपाल, पृथ्वीराज, हरपाल, प्रताप इत्यादि राजाओं और चित्तौर और विजयनगरकी राजधानियोंपर किये गये अत्याचारोंका बदला अच्छी तरह लिया।

मरहठोंने छः शताब्दियोंमें प्राप्त की हुई मुसलमानोंकी विजयको एक शताब्दीमें मिटा दिया। यदि वे पूर्ण रीतिसे जगे होते तो अर्द्ध-शताब्दी भी न लगी होती।

अब हम हिन्दुओंको उचित है कि इन शूरवीरोंके द्वारा किये गये हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जातिके उपकारोंके लिये सदैव उन्हें श्रद्धाभक्तिकी दृष्टिसे देखते रहें, सदैव कृतज्ञता प्रकट करते रहें और जिस बड़े राज्यको उन्होंने स्थापित किया था उसपर एक बार दृष्टिपात कर लें, क्योंकि शीघ्र ही और अकस्मात् इस विशाल साम्राज्यके ऊपर परदा पड़नेवाला है और यह हमलोगोंके सजल नेत्रोंसे ओझल हो जानेवाला है।

सातवाँ अध्याय

पटाक्षेप

ग्रंथकर्त्ता अपने सिंहावलोकनको सन् १७६५ ई० अर्थात् कुरदाकी लड़ाईतक लाया है। पहलेके सब बयान इसी कालसे सम्बन्ध रखते हैं। ग्रन्थकर्त्ताका ध्यान केवल इसी बातकी ओर रहा है कि मरहठोंके मुख्य २ आदर्शों और सिद्धान्तोंको जनताके सामने लाये और उनके उन मनोरथों और उद्देश्योंका पता लगाये जिनके लिये मरहठे देशकी धर्मवेदीपर वलिदान होनेके लिये प्रस्तुत हुए। उसका विचार घटनाओंकी गणना करनेका नहीं था। और दूसरा ध्यान इस ओर था कि भारत-के इतिहासमें मरहठोंके इतिहासका क्या स्थान है। यह कार्य समाप्त हो गया। तिसपर भी सन् १७६५ ई० से लेकर १८१८ ई० तकका समय, जिसमें महाराष्ट्रराज्य विध्वंस हुआ, अभी शेष रह गया है और ऐसा रोमाञ्चकारी है कि बिना आंसू बहाये उसका वर्णन नहीं हो सकता।

हम ऊपर देख आये हैं कि मरहठे, मुसलमानोंके छः शताब्दियोंके बढ़े हुए प्रभावको सत्यानास करके थके हुए हैं और आराम करनेके लिये जा रहे हैं। ठीक इसी समय एक शक्तिशाली राष्ट्र इसपर आक्रमण करता है जो पहले दो बार नीचा देखकर चुप हो गया था।

मरहठे तीसरी बार भी उनपर विजयी हुए होते या उन्हें अवश्य भगा दिया होता, किन्तु अभाग्यवश उसी समय नाना-फड़नवीस मर गया और बाजीराव दूसरा मरहठोंका पेशवा हुआ जो कि शत्रुओंका निस्सन्देह दास था। बाजीराव दूसरा अति स्वार्थी पेशवा था और किसी प्रकार और मरहठोंसे मेल और सहानुभूति नहीं रखता था। ज्योंही शासनकी बागडोर इसके हाथमें पहुंची, इसपर एक विदेशी राष्ट्रके द्वारा आक्रमण हुआ। यदि वह राष्ट्र भारतवर्षका होता या एशिया महाद्वीपके अन्तर्गत किसी राष्ट्रका होता तो मरहठे अवश्य विजयी हुए होते, क्योंकि एशियाके राज्योंमें मरहठे सबसे संगठित थे। यह शत्रु इंगलैंड था। अब इस युद्धका फल पहलेसे जान लेना उचित है।

उस समय इंगलैंडके पास, मरहठोंकी अपेक्षा राज्योंके विजय करनेके साधन अधिक हो गये थे। उनके देशमें बड़ी-बड़ी लड़ाइयां हुई थीं, जिनके कारण उनमें युद्ध-सम्बन्धी उन्नति अधिक हो गई थी। मरहठोंमें आज्ञा-पालन, शासन करना, अपने देश और राजाके प्रति भक्ति रखना, अपने झंडेपर अभिमान करना, जातीय-मिलाप, और दृढ़ विचार इत्यादि गुण एशिया-वासियोंके अन्य लोगोंसे अधिक थे, किन्तु अंग्रेजोंकी अपेक्षा बहुत ही कम था।

तिसपर भी वे बड़ी वीरतासे लड़े, क्योंकि वे भलीभांति जानते थे कि इस समय जीवन-मरणका प्रश्न है। किसी-किसी देश-भक्त

जैसे बापू गोकुलने प्रण कर लिया था कि मर जाऊंगा, किन्तु हथियार नहीं रखूंगा। उसने अंग्रेजी सेनापतिसे कह दिया कि हम अपने कफ़नको अपने सिरोंपर लिये हुये हैं और प्रण कर लिया है कि हाथमें तलवार लिये लड़कर मर जायंगे। जिस समय सारे योग्य राजनीतिज्ञ सेनापति महादाजी, नाना फड़नवीस, राघोजी, तुकोजी और फाड़के काम करते-करते मृत्युकी भेंट हो चुके थे, उस समय निकम्मा बाजीराव दूसरा मरहठोंका सेनापति था और इंगलैंड ऐसा शक्तिशाली शत्रु था, इसलिये युद्धका फल पहलेहीसे ज्ञात हो गया था। मरहठे पराजित हुए, उनके साथ-साथ भारतके अन्तिम हिन्दू-साम्राज्यका अन्त हुआ। केवल पंजाबमें सिक्ख हिन्दू-स्वतंत्रताके चिरागकी बत्तीकी भांति टिमटिमा रहे थे, पर वह भी इन्हीं कारणोंवश बुझने ही वाली थी।